मनचाही सन्तान.

मनचाही सन्तान.

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्ख शतैरपि ।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणैरपि ।।
“कुलहि प्रकासै एक सुत, नहि अनेक सुत निन्द ।
चन्द एक सब तम हरै, नहि उडुगणके वृन्द ।।”

दाम्पत्य-ग्रन्थावली—पांचवाँ पुष्प ।

Man-Cha-Li-Santan

मनचाही सन्तान ।

लेखक— Shive Sharma

पण्डित शिवशंकर मिश्र ।

प्रकाशक—

सरस्वती सदन
७२ बी, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता ।

सोल एजण्ट्स
पाठक एण्ड कम्पनी,
७२ बी, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता ।

प्रथमवार] १९२८ [
रेशमी जिल्द

SPS
610 S 40 M
8170
Sri P

प्रकाशकः—

पण्डित शिवशंकर मिश्र।

प्रोप्राइटर—

सरस्वती सदन

७३ बी, वाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता।

पुस्तक मिलनेका पता—

पाठक एण्ड कम्पनी,

७३ बी, वाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता।

मुद्रक—

चन्द्रशेखर पाठक

"महाराष्ट्र प्रेस"

७३ बी, वाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता।

विषय-सूची

विषय ... पृष्ठ

वक्तव्य ७
१ सन्तान महिमा ९
२ सन्तानोत्पत्ति ईश्वराधीन है या मनुष्याधीन ? २१
३ सन्तान न होनेका कारण ३१
४ मनचाही सन्तान कैसे उत्पन्न हो सकती है ? ४७
५ गार्हस्थ्य जीवनकी तैयारी ५८
६ विवाह ९२
७ विवाह किस अवस्थामें करना चाहिये ? ... १००
८ वर-वधूकी पसन्दगी ११४
९ संयमी जीवन १३६
१० सन्तानोत्पादनकी योग्यता १५५
११ गर्भाधानकी तैयारी १६६
१२ गर्भाधान १७६
१३ गर्भ-सञ्चार १८९

विषय-सूची।

१४ इच्छानुसार पुत्र या कन्या उत्पन्न करनेका तरीका २०१

१५ सुन्दर सन्तान उत्पन्न करनेका तरीका ... २२७

१६ स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करनेका तरीका ... २४८

१७ किसी खास गुणवाली सन्तान उत्पन्न करनेका तरीका २५६

१८ सन्तान पर दाम्पत्य-प्रेमका प्रभाव ... २७३

१९ सन्तान पर कौलिक गुण दोषका प्रभाव ... २८७

२० सन्तान पर गर्भावस्थाका प्रभाव ... २९७

२१ सन्तान पर स्तनंधयावस्थाका प्रभाव ... ३३०

२२ सन्तान पर गृह-शिक्षाका प्रभाव ... ३४२

उपसंहार ३५१

वक्तव्य।

परम कृपालु परमात्माकी अनन्त कृपासे आज दाम्पत्य-ग्रन्थावलीकी पांचवीं पुस्तक प्रकाशित हो रही है। इसका नाम है "मनचाही सन्तान"। आधुनिक विज्ञानने सिद्ध कर दिया है, कि इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न करना और उसे भली या बुरी बनाना मनुष्य हीके अधिकारकी बात है। प्रस्तुत पुस्तकमें इसी विज्ञानके विभिन्न सिद्धान्तोंको पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करनेकी चेष्टा की गई है।

मातृ-भाषा हिन्दीमें इस विषयकी छोटी मोटी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, किन्तु फिर भी हमें सन्तोष न हुआ। हमने देखा, कि इस विषयकी जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उनमें वैज्ञानिक बातोंकी इतनी भरमार है, कि साधारण पाठकोंका उनसे कुछ भी उपकार नहीं हो सकता। हम ऐसी पुस्तकोंमें विज्ञानकी उलझनें उपस्थित करना उचित नहीं समझते। साधारण पाठकोंको सरल भाषामें उपयोगी बातें बतला देना ही

मनचाही सन्तान

किसी नवबधूकी गोद सन्तानसे नहीं भर जाती, तो उसके संरक्षकोंको चिन्ता होने लगती है। उसके सास-ससुर और माता पिता दुःखित होते हैं और पति अधीर हो उठता है। स्वयं बधू भी अपने मनमें न जाने कितना दुःख अनुभव करती है और मन ही मन सन्तान-प्राप्तिके लिये मिन्नतें मनाने लगती है। यह क्यों? बात यह है कि अन्यान्य इच्छा और आकांक्षाओंकी भांति ईश्वरने प्राणी मात्रमें सन्तान-प्रेम भी यथेष्ट परिमाणमें उत्पन्न कर रक्खा है। उसी प्रेमके कारण मातृ और पितृ-हृदय सन्तानके लिये लालायित बने रहते हैं। उसी प्रेमके कारण सन्तानके लिये वे अपना सर्वस्व त्याग करनेको तैयार रहते हैं और उसी प्रेमके कारण आवश्यकता पड़नेपर वे अपने लाड़ले बच्चोंके लिये तन मन धन—यहां तक कि प्राण भी न्यौछावर कर देते हैं।

बच्चे अंधेरे घरके उजाले हैं। उनकी उपस्थितिसे घर और घरके प्रत्येक मनुष्यका हृदय आलोकित हो उठता है। वे मानव-हृदयको विनम्र और पवित्र बनाते हैं। पत्थर जैसे कठोर हृदय भी उनके संसर्गसे मोम जैसे मुलायम हो जाते हैं। निर्मम कहलानेवाले मनुष्य भी बच्चोंको देखकर पसीज उठते हैं और शुष्क हृदय भी

वात्सल्य भावके कारण द्रवित हो जाते हैं। बच्चोंकी उपस्थितिसे मानव-हृदयमें नवीन भावोंका उदय होता है। वे प्रकाशकी राशि और प्रेमके भण्डार होते हैं। इसीलिये उनकी उपस्थितिसे धराधाम प्रकाशित एवं प्रेममय हो उठता है। इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं, कि यदि संसारमें बच्चे न हों तो वह ऐसा ऊजड़ प्रतीत हो कि उसमें हमलोगोंके लिये रहना भी कठिन हो जाय। बच्चोंसे रहित घरकी तुलना स्मशानसे की जाती है। कौन कह सकता है कि इसमें लेशमात्र भी अत्युक्ति है?

किसी विद्वान्‌ने बच्चोंको रत्न कहा है—'गृह रत्नानि बालकाः'। हम इस कथनकी वास्तविकता स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते। संसारमें बच्चोंसे बढ़कर कोई धन नहीं है। बच्चोंसे धन उत्पन्न हो सकता है; परन्तु धनसे बच्चे नहीं उत्पन्न हो सकते। एक निर्धन माता अपनी सन्तान पर गर्व करती है और सन्तानके सम्मुख संसारके समस्त वैभवोंको तुच्छ समझती है। वह जिस समय अपनी गोदीमें बैठाल कर सन्तानका मुंह देखती है, उस समय यह भूल जाती है, कि मैं एक झोपड़े में रहती हूँ, मुझे अन्न और वस्त्रोंका कष्ट है या मेरे पास धन नहीं है। परन्तु एक राजरानी जो गगनचुम्बी

अट्टालिकाओंमें रहती है, जिसकी आज्ञा शिरोधार्य करनेके लिये दासदासियाँ हाथ बांधे खड़े रहते हैं और जिसको पानी मांगनेपर दूध मिलता है, वह यदि सन्तान-हीना है—उसकी गोद बच्चोंसे खाली है—तो वह ऐश्वर्यका अभिमान कदापि नहीं कर सकती। वह मन ही मन उस पुत्रवती भिखारिनकी ईर्ष्या करती है और अपने मनमें इस भावका पोषण करती है, कि मुझसे यह भिखारिन हजार दरजे सुखी है। लाखों रुपयेकी दौलत लुट जाने पर, किसी नृपतिका समूचा राज्य छिन जानेपर और किसी प्राणप्रिय वस्तुके खो जानेपर भी शायद उतनी ग्लानि और उतना विषाद नहीं होता, जितना एक नन्हेसे बच्चेके मर जाने पर होता है। संसारमें ऐसा उदाहरण शायद एक भी न मिलेगा, कि किसीने धन नष्ट हो जाने पर प्राण त्याग दिया हो, परन्तु पुत्र-वियोग होने पर—ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे कि लोगोंने प्राण त्याग दिये हैं। कैकेयीकी इच्छानुसार भरतको समूचा राज्य दे देनेपर दशरथको उतना दुःख न हुआ था, जितता पुत्र-वियोगकी कल्पनासे। उन्होंने रामचन्द्रका वियोग होनेपर तत्काल हो प्राण त्याग दिये थे। श्रवणके माता पिताको अपनी दरिद्रता और नेत्र-हीनताके कारण उतना विषाद न हुआ था

जितना श्रवणकी मृत्युके कारण। उन्होंने भी उसके वियोगमें प्राण त्याग दिये थे। समूचा महाभारत देख डालिये, परम पुरुषार्थी अर्जुन राज्य चले जानेपर, कौरवों द्वारा उत्पीड़ित और अपमानित होनेपर तथा वन वन भटकने पर भी शायद उतने दुःखित, उतने व्यग्र, उतने अधीर और उतने निरुत्साह न हुए थे जितना अभिमन्युका मृत्यु-संवाद सुनने पर। परम प्रतापी द्रोणाचार्य, कि जिनके सम्मुख बड़े बड़े महारथियोंका ठहरना कठिन हो रहा था, जो अकेले समस्त पाण्डव सेनाको परास्त करनेके लिये पर्याप्त थे और जो धनुर्धर अर्जुनकी प्रबल शस्त्रवर्षा से भी विचलित न हुए थे, वे पुत्रका मृत्यु-संवाद सुनते ही आकुल व्याकुल हो उठे, तत्काल ही उनके हाथसे धनुष-बाण छूट पड़े और वे रणसे विमुख हो गये। चाहे जिस देशका इतिहास, चाहे जिस प्रजाके धर्मग्रन्थ और चाहे जिस देशके पुराण देखिये—पुत्रके पीछे प्राण खोनेवालोंके उदाहरणोंकी कमी न रहेगी, परन्तु धनके पीछे प्राण खोनेवालेका शायद एक भी उदाहरण न मिलेगा। क्या इससे सन्तानकी महिमा नहीं प्रकट होती ?

धन खो जानेपर पुनः मिल सकता है, किन्तु सन्तान खो जाने पर पुनः नहीं मिल सकती। यदि किसीकी रत्नजड़ित

अंगूठी या रत्नहार नदीमें गिर पड़ता है, तो वह तुरन्त पानीमें नहीं कूद पड़ता, परन्तु बच्चा नदीमें गिर जानेपर यह अनेक बार देखा जाता है; कि उसके माता पिता भी पानीमें कूद पड़ते हैं और बहुधा उसे बचानेकी चेष्टामें आप भी अपना प्राण खो बैठते हैं। पशु और पक्षी जैसे अज्ञान प्राणी भी अपने बच्चोंके लिये प्राण देते हुए देखे गये हैं। गाय बहुत ही गरीब और सीधीसादी होती है, किन्तु जंगलमें यदि उसके बच्चे पर बाघ या भेड़िया जैसा हिंसक प्राणी भी आक्रमण करता है, तो वह उससे लड़ने को तैयार हो जाती है। उस समय उसके मनमें यह विचार भी नहीं आता, कि बच्चेको बचानेमें मेरा प्राण भी जा सकता है। बिल्ली जिस वक्त बच्चा देती है, उस समय ऐसा उग्र रूप धारण करती है, कि एकाएक उसके निकट जानेकी हिम्मत नहीं पड़ती। बच्चोंके पीछे कौवे तक बाजसे मुकाबला करते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य पशु पक्षी भी बच्चोंकी रक्षा करते समय अपने प्राणकी परवाह नहीं करते। माता पिताके इन भावोंको देखकर हम इसी सिद्धान्त पर पहुंचते हैं, कि ईश्वरने न केवल मनुष्य ही, बल्कि पशुपक्षियोंके हृदयमें भी ऐसा वात्सल्यभाव भर रक्खा है कि बच्चोंके सुख दुःखके सम्मुख उन्हें अपने

सुख दुःखका ख़याल भी नहीं रहता। दूसरे शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं, कि माता पिताको अपने बच्चे प्राणसे भी अधिक प्यारे होते हैं। यदि ऐसा न होता तो संसार में उपरोक्त बातें क्यों दिखाई देतीं?

पाठक महोदय हमें पिष्टपेषणके लिये क्षमा करें, क्योंकि हम एक बार नहीं, अनेक बार कहेंगे, कि सन्तानकी महिमा अपरम्पार है। यदि आप सन्तानकी महिमा देखना चाहते हैं, तो किसी दरिद्र किन्तु सन्तानहीन दम्पतिके घरमें जाइये। आप देखेंगे कि उन्हें अन्न वस्त्रका कष्ट है, वे दिन भर मजूरी करनेपर भी शामको भरपेट भोजन नहीं पाते, ग्रीष्ममें लूकी लपटें, शीतकालमें कड़ाकेका जाड़ा और वर्षामें वज्रपातके समय भी वे शांति पूर्वक घरमें नहीं बैठ सकते, किन्तु उन्हें इसका ध्यान नहीं है। सन्तान-कामनासे उनका चित्त रात दिन अधीर रहता है। यदि आप सन्तान-महिमा देखना चाहते हों, तो किसी बन्ध्या स्त्रीके मनोभावोंका अध्ययन करिये। आप देखेंगे कि उसके हृदयमें कितना दुःख, कितना उद्वेग, और कितना संताप भरा हुआ है। जब कोई उसे 'बांझ' कह कर ताना मारता है, तब उसका हृदय टूक टूक हो जाता है। उस समय उसके हृदयमें जो यन्त्रणा और जो पीड़ा उत्पन्न

होती है, उसकी शायद हमलोग कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि आप सन्तान-महिमा देखना चाहते हैं तो ऐसे धनी मानीके यहाँ जाइये, जिसे किसी बातकी कमी न हो, किन्तु उसके सन्तान न हो। आप देखेंगे कि वह सन्तानकी चिन्तासे रात दिन व्याकुल रहता है। इस व्याकुलताका कारण हम यह कदापि नहीं मान सकते कि वह अपने धनके कारण चिन्तित रहता है और यह सोचता है कि मेरे बाद इसका उपभोग कौन करेगा? यह सभी जानते हैं कि धन किसीके साथ नहीं जाता और मरनेके बाद वह चाहे जिसके हाथ जा पड़े, उससे मरनेवालेका कुछ बनता बिगड़ता नहीं। उसकी व्याकुलताका वास्तविक कारण उत्तराधिकारीकी चिन्ता नहीं, बल्कि सन्तानका अभाव होता है। ईश्वरने प्राणीमात्रके हृदयमें सन्तानप्रेमका जो स्थान निर्धारित कर रक्खा है, उसको रिक्त देखकर, अपने जीवनमें उस सुखकी कमी या त्रुटि देख कर ही वह व्याकुल होता है। यदि आप सन्तान-महिमा देखना चाहते हैं, तो एकबार उन दृश्योंका ध्यान कीजिये, जब दशरथ पुत्र-प्राप्तिके लिये यज्ञ कर रहे थे अथवा जब राजा दिलीप नन्दिनीके पीछे वन वन भटक रहे थे। क्या दशरथ किंवा राजा दिलीपको किसी

बातकी कमी थी? यदि कमी थी तो केवल सन्तानकी और उसीके लिये उन्होंने इन महान अनुष्ठानोंका आयोजन किया था।

सन्तान + उत्पत्ति

सन्तान महिमाके सम्बन्धमें भारतवासियोंको—खास कर हिन्दू किंवा आर्य-सन्तानोंको—इससे अधिक बतलाने की आवश्यकता नहीं है। हमारे यहां सन्तानोत्पत्तिका कार्य धर्मका एक अंग माना गया है। कहा गया है, कि मनुष्यमात्रके शिरपर देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण—यह तीन ऋण रहते हैं। यज्ञद्वारा देवऋण, स्वाध्याय द्वारा ऋषिऋण और सन्तानोत्पत्ति द्वारा मनुष्य पितृऋणसे मुक्त होता है। यह भी कहा गया है कि इन ऋणोंसे मुक्त होनेके बाद ही मनुष्य मोक्ष-साधनमें लीन हो सकता है—बिना इसके नहीं। अतएव सन्तानोत्पत्ति मनुष्यका धर्मानुमोदित परमावश्यक कर्तव्य है।

सन्तानोत्पत्तिका कार्य धर्मानुमोदित होनेके अतिरिक्त ईश्वरीय आदेशके समान भी है, क्योंकि अनादि कालसे इस संसारमें पुरुष और प्रकृति—यह दो शक्तियां काम कर रही हैं और इन्हींसे इस सृष्टिका कार्य अविच्छिन्न रूपसे चल रहा है। बिना इन दोनों शक्तियोंके एकत्र हुए सृष्टिकार्या आगे नहीं चलता। प्राणीमात्रमें

परमात्माने यह दोनों शक्तियां नियोजित की हैं। इन शक्तियोंको संसारमें हम नर और मादाके रूपमें देखते हैं। जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज इन चारों प्रकारके जीव-धारियोंमें नर और मादासे ही सृष्टि-कार्य्य होता है। परमात्माने हमें भी यह शक्तियाँ प्रदान की हैं। हमें भी उसने सृष्टिकार्य्य चलाने और बच्चोंको पोषण करने योग्य अंग प्रदान किये हैं। इससे सिद्ध होता है कि यह ईश्वरीय आदेश है, कि हम सन्तानोत्पत्ति कर उसके सृष्टिकार्यको अनन्तकालतक बराबर चलाते रहें। जो इस कार्य्यसे इच्छापूर्वक विमुख होता है, वह एक प्रकारसे इस ईश्वरीय आदेशको भंग करता है। शायद इसी बातको ध्यानमें रखकर हमारे धर्मशास्त्रोंने इस सामाजिक प्रश्नको धार्मिक बना कर उसको विशेष महत्वपूर्ण बना दिया हैं। मनुष्यके आचार विचारोंको नियन्त्रित रखनेके लिये धार्मिक नियमोंसे बढ़कर और कोई नियम नहीं हो सकते। अतएव सन्तानोत्पत्तिकी आवश्कता जब धर्मने भी स्वीकार की हैं, तब हमें मान लेना चाहिये कि यह हमारे लिये अवश्य एक श्रेयस्कर विषय है।

परन्तु ध्यान रहे, सन्तानसे जो सुख, जो आनन्द या

जो शान्ति प्राप्त होती है, वह अच्छी ही सन्तानसे, बुरी सन्तानसे नहीं। बुरी सन्तानसे तो सुखके स्थान पर दुःख, आनन्दके स्थानपर शोक और शान्तिके स्थानपर अशान्तिकी ही प्राप्ति होती है। बुरी सन्तान होनेकी अपेक्षा सन्तान हीन रहना अच्छा है। किसी रमणीके लिये कुपुत्र की माता होनेकी अपेक्षा बांझ कहलाना अच्छा है। किसी पुरुषके लिये कुपुत्रके पिता होनेकी अपेक्षा निःसन्तान मर जाना अच्छा है। कारण स्पष्ट है। सन्तान यों ही नहीं हो जाया करती। सन्तानके लिये माता पिताको बड़े बड़े त्याग करने पड़ते हैं। अन्न और वस्त्रका कष्ट सहन करना पड़ता है। अनेक प्रकारके मनःकष्ट उठाने पड़ते हैं। सन्तानके पीछे उन्हें अपना स्वास्थ्य और यौवन नष्ट करना पड़ता है। यह वे चीजें हैं जो एकबार चली जानेपर फिर दुबारा नहीं मिलतीं। इनको खोकर वे पराधीन और सहायहीन बन जाते हैं। बतलाइये, ऐसे मंहगे मोलकी सन्तान बुरी निकल जानेपर क्या कोई माता पिता सुख और शांति अनुभव कर सकते हैं? क्या फिर कभी उन्हें अपने जीवनमें किसी प्रकारका आनन्द मिल सकता है? जिस सुखकी आशा पर वे सन्तानका लालन पालन करते हैं, जिस उमीद पर वे सन्तानको

सूखेमें सुलाकर आप गीलेमें सोते हैं, जिस विश्वास पर वे अपने हाथकी रोटी सन्तानको खिला देते हैं, उस आशा और विश्वास पर पानी फिर जानेपर किसे सुख-शान्ति मिल सकती है ? निःसन्देह ऐसे मनुष्य जीवन्मृत हो जाते हैं। ईश्वर ऐसे अभागोंको सन्तान हीन रक्खे किन्तु बुरी सन्तानके माता पिता न बनाये। माता पिता-को सुखी बनानेके लिये—अपने माता पिता, कुल और देशका मुखोज्ज्वल करनेके लिये, यह आवश्यक नहीं हैं, कि दर्जनों बच्चे उत्पन्न हों। इसके लिये एक ही सुसन्तान पर्याप्त है। कहा भी है, कि :—

> वरमेको गुणीपुत्रो न च मूर्ख शतैरपि।
> एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणैरपि॥

अर्थात्‌एक गुणी पुत्र सौ मूर्खोंसे अच्छा है। क्योंकि एक चन्द्र समस्त संसारके अन्धकारको दूर कर देता है किन्तु अनेक तारोंका समूह साथ मिलकर भी वही कार्य नहीं कर सकता। इसलिये, आओ, हमलोग विचार करें कि भली सन्तान—वह सन्तान कि जिसके द्वारा मातापिता सुख और शांति पा सकते हैं—कैसे उत्पन्न हो सकती है और इस कार्यमें हम अपने उद्योग द्वारा कितनी सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

२

सन्तानोत्पत्ति ईश्वराधीन है या मनुष्याधीन ?

गत अध्यायमें यह बतलाया जा चुका है, कि सन्तानोत्पत्तिसे मनुष्यको सुख और शांति मिलती है तथा ईश्वरके सृष्टि-कार्यमें सहायता पहुंचती है। सन्तानकी आवश्यकता बतलाते हुए यह भी बतलाया गया है, कि सन्तान उत्पन्न करना मनुष्यका एक मुख्य कर्त्तव्य है। किन्तु यह पढ़नेके बाद हमारे पाठकोंके मनमें यह प्रश्नावली उत्पन्न होकर उन्हें अशान्त बना देगी कि सन्तानोत्पत्ति ईश्वराधीन है या मनुष्याधीन ? क्या मनुष्य अपनी इच्छासे सन्तान उत्पन्न कर सकता है? यदि उत्पन्न कर सकता है, तो फिर यह क्यों कहा जाता है, कि सन्तान ईश्वरकी देन है ? यदि यह मनुष्यके ही अधिकारकी बात है, तो फिर अनेक मनुष्योंको निःसन्तान

क्यों रहना पड़ता है? अनेक धनी मानी लोगोंके यहाँ लाखों रुपये खर्च करने पर भी सन्तानके दर्शन क्यों नहीं होते? क्यों नहीं प्रत्येक मनुष्यका घर सन्तानोंसे भर जाता और क्यों अनेक स्त्री पुरुषोंको आजीवन एक साथ रहने पर भी एक भी सन्तान उत्पन्न नहीं होती?

निःसन्देह यह प्रश्नावली बड़ी कठिन है। इन प्रश्नों का उत्तर देनेके लिये हमें वैद्यक शास्त्र और प्राकृतिक नियमोंकी छानबीन एवम् आलोचना करनी होगी। पाठकों को भी हठ और मिथ्यातर्क छोड़ कर गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा। ऐसा करनेसे यह बात आसानीसे उनकी समझमें आ जायगी, कि सन्तानोत्पत्ति मनुष्याधीन है, न कि ईश्वराधीन।

संसारकी गतिविधि देखनेसे हमें स्पष्ट मालूम होता है, कि इस सृष्टिके समस्त कार्यों का संचालनभार किसी एक महान शक्तिके हाथमें होनेपर भी, वह शक्ति प्रत्यक्ष रूपसे कोई कार्य नहीं करती। उसने प्रत्येक कार्यके लिये अचल और अटल नियम बना दिये हैं और उन्हीं नियमोंके अनुसार इस सृष्टिका कार्य सुचारु रूपसे चला करता है। उपरोक्त महाशक्तिको हम ईश्वर या प्रकृतिके नामसे सम्बोधित कर सकते हैं और जिन नियमोंके

8170.

अनुसार सृष्टि-कार्य चलता है, उन नियमोंको ईश्वरी या प्राकृतिक नियम कह सकते हैं।

हमें रोज सुबह सूर्य भगवानके दर्शन होते हैं। वे पूर्वमें उदय होकर धीरे धीरे ऊपरको चढ़ते हैं। मध्याह्न के समय सिरपर आ जाते हैं। बादको अस्ताचलकी ओर प्रस्थान करते हैं। शामको पश्चिममें हम उन्हें अस्त होते देखते हैं। क्रमशः रात पड़ती है। रातके बाद फिर दिन और दिनके बाद फिर रात होती है। बरसोंसे यह क्रम चला आ रहा है। इसमें किञ्चित् भी अन्तर नहीं पड़ता। सूर्य किसी दिन पूर्वके बदले दक्षिणमें उदय नहीं होते। सुबहके बदले किसी दिन मध्य रात्रिमें ही नहीं निकल पड़ते। सभी काम ठीक नियमानुसार होते रहते हैं। विचार करनेपर बुद्धि चक्कर खा जाती है और बड़े बड़े नास्तिकोंको भी अन्तमें स्वीकार करना पड़ता है कि इनका सञ्चालन किसी महाशक्ति द्वारा अवश्य होता है। किन्तु वह महाशक्ति रोज उठकर इन कार्योंका सञ्चालन करने नहीं बैठती। वह आज एक तो कल दूसरे नियमके अनुसार काम नहीं लेती। अनादि कालसे उसका एक ही नियम चला आ रहा है और उसी नियमके अनुसार सूर्यका उदय और अस्त हुआ करता है। महा-

शक्तिको इसके लिये नित्य आज्ञा-पत्र प्रकाशित नहीं करना पड़ता।

चन्द्रका उदाहरण लीजिये। शुक्ल पक्षमें नियमित रूपसे शनैः शनैः बढ़ना और कृष्णपक्षमें घटना यह उसका निर्दिष्ट कार्य है। इसमें न किसी दिन अन्तर ही पड़ता है न भूल ही होती है। पूर्णिमाके दिन पूरा ही चाँद निकलता है, भूलसे दूजका चाँद नहीं दिखाई देता। कौन कह सकता है कि यह कार्य किसी महाशक्तिके आदेशानुसार नहीं होता? किन्तु यह निर्विवाद है, कि वह महाशक्ति इसके लिये नित्य नया आदेश नहीं देती। उसने जो नियम बना दिया है, उसीके अनुसार चन्द्रको अपना कर्तव्य पालन करना पड़ता है।

हमलोग अपने खानेके लिये अन्न, फलफूल और कन्दमूल उत्पन्न करते हैं। इसके लिये हमें खेतमें बीज बोना पड़ता है। मिट्टी और पानीके संयोगसे बीज अंकुरित होता है। बादको यथा नियम पालने पोसनेपर उसी बीजसे पौधा या वृक्ष उत्पन्न होता है। निःसन्देह यह सभी कार्य हमारे ही यत्नसे सिद्ध होते हैं, किन्तु लक्ष्य करनेकी बात यह है, कि बीजके विकास और पौधेकी वृद्धिका यह समस्त क्रम किसी नियम विशेषके अनुसार

हो सम्पादित होता है। यह हम कभी नहीं देखते, कि जमीनमें अंकुरित होनेवाला बीज कागजोंके ढेरमें दबा कर रख देनेपर अंकुरित होता हो या पानीके बदले आग बरसा देनेपर उसकी वृद्धि होती हो।

इसी तरह संसारके समस्त कार्य सम्पादित होते हैं। ईश्वरने किसी भी कार्यको अपने हाथमें नहीं रक्खा। उसने जो नियम बना दिये हैं, उनके अनुसार ही समस्त कार्य होते रहते हैं। ऐसी अवस्थामें यह हम कैसे मान सकते हैं, कि सन्तानोत्पत्तिका अधिकार—मनुष्यको सन्तान देने न देनेका अधिकार उसने अपने हाथमें रख छोड़ा है। यह बात उस समय और भी निःसार मालूम होती है, जब हम देखते हैं, कि उसने प्रत्येक मनुष्यको—मनुष्य ही क्यों प्राणी मात्रको—सन्तानोत्पत्तिकी समस्त सामग्रीसे सजाकर इस संसारमें भेजा है। ईश्वरने उसे वे इन्द्रियां और वे अंग प्रदान किये हैं, जिनके द्वारा संतान की नीव पड़ती है, उसका पालन पोषण और उसकी वृद्धि होती है। हम देखते हैं कि स्त्री पुरुषका संयोग होनेपर स्त्रीको गर्भ रहता है, गर्भ रहनेपर गर्भाशयमें बच्चा बढ़ता हैं और बादको जन्म होनेपर स्तनोंके दूध-द्वारा उसका पालन पोषण होता है। ईश्वरने मनुष्यको न केवल यह

शक्तिको इसके लिये नित्य आज्ञा-पत्र प्रकाशित नहीं करना पड़ता।

चन्द्रका उदाहरण लीजिये। शुक्ल पक्षमें नियमित रूपसे शनैः शनैः बढ़ना और कृष्णपक्षमें घटना यह उसका निर्दिष्ट कार्य है। इसमें न किसी दिन अन्तर ही पड़ता है न भूल ही होती है। पूर्णिमाके दिन पूरा ही चाँद निकलता है, भूलसे दूजका चाँद नहीं दिखाई देता। कौन कह सकता है कि यह कार्य किसी महाशक्तिके आदेशानुसार नहीं होता? किन्तु यह निर्विवाद है, कि वह महाशक्ति इसके लिये नित्य नया आदेश नहीं देती। उसने जो नियम बना दिया है, उसीके अनुसार चन्द्रको अपना कर्तव्य पालन करना पड़ता है।

हमलोग अपने खानेके लिये अन्न, फलफूल और कन्दमूल उत्पन्न करते हैं। इसके लिये हमें खेतमें बीज बोना पड़ता है। मिट्टी और पानीके संयोगसे बीज अंकुरित होता है। बादको यथा नियम पालने पोसनेपर उसी बीजसे पौधा या वृक्ष उत्पन्न होता है। निःसन्देह यह सभी कार्य हमारे ही यत्नसे सिद्ध होते हैं, किन्तु लक्ष्य करनेकी बात यह है, कि बीजके विकास और पौधेकी बृद्धिका यह समस्त क्रम किसी नियम विशेषके अनुसार

ही सम्पादित होता है। यह हम कभी नहीं देखते, कि जमीनमें अंकुरित होनेवाला बीज कागजोंके ढेरमें दबा कर रख देनेपर अंकुरित होता हो या पानीके बदले आग बरसा देनेपर उसकी वृद्धि होती हो।

इसी तरह संसारके समस्त कार्य सम्पादित होते हैं। ईश्वरने किसी भी कार्यको अपने हाथमें नहीं रक्खा। उसने जो नियम बना दिये हैं, उनके अनुसार ही समस्त कार्य होते रहते हैं। ऐसी अवस्थामें यह हम कैसे मान सकते हैं, कि सन्तानोत्पत्तिका अधिकार—मनुष्यको सन्तान देने न देनेका अधिकार उसने अपने हाथमें रख छोड़ा है। यह बात उस समय और भी निःसार मालूम होती है, जब हम देखते हैं, कि उसने प्रत्येक मनुष्यको—मनुष्य ही क्यों प्राणी मात्रको—सन्तानोत्पत्तिकी समस्त सामग्रीसे सजाकर इस संसारमें भेजा है। ईश्वरने उसे वे इन्द्रियां और वे अंग प्रदान किये हैं, जिनके द्वारा संतान की नीव पड़ती है, उसका पालन पोषण और उसकी वृद्धि होती है। हम देखते हैं कि स्त्री पुरुषका संयोग होनेपर स्त्रीको गर्भ रहता है, गर्भ रहनेपर गर्भाशयमें बच्चा बढ़ता हैं और बादको जन्म होनेपर स्तनोंके दूध-द्वारा उसका पालन पोषण होता है। ईश्वरने मनुष्यको न केवल यह

अंग ही दिये हैं, बल्कि उसके मस्तिष्कमें वह इच्छा शक्ति या वृत्ति भी भर रक्खी है, जिसे हम कामवृत्ति कहते हैं और जिसके कारण किसी न किसी तरह मनुष्य अपने इन अंगोंका उपयोग करना—इनसे काम लेना सीखता है। यदि ईश्वरकी यही इच्छा होती, कि किसी स्त्री या पुरुषको सन्तान-हीन रक्खा जाय, तो वह उनको उन अंगोंसे ही क्यों न वञ्चित रखता? क्यों न वह किसीको जननेन्द्रिय हीन, किसीको स्तन हीन और किसीको गर्भाशय हीन बना कर भेजता?* क्या उसके लिये यह कोई कठिन बात थी? सच बात तो यह है, कि ईश्वर किंवा उस महाशक्तिने, जिस तरह किसी भी कार्य्यको अपने हाथमें नहीं रक्खा, किन्तु उसके लिये अमुक नियम बनाकर छोड़ दिये हैं, उसी प्रकार सन्तानोत्पत्तिका कार्य्य भी उसने अपने हाथमें नहीं रक्खा। मनुष्यको उसने इस कार्य्यके लिये आवश्यक सामग्रियाँ और उन्हें काममें लानेका ज्ञान

---

* संसारमें कभी कभी ऐसे मनुष्य अवश्य दिखाई देते हैं, किन्तु चिकित्सा और विज्ञान-शास्त्रसे यही सिद्ध होता है, कि यह माता-पिता किंवा अपने ही किसी दोषके कारण होता है—ईश्वरका इसमें कोई हाथ नहीं रहता।

देकर, यह अधिकार पूर्णरूपसे उसीको सौंप दिया है। किन्तु जिस प्रकार वह प्रत्येक कार्यके लिये अटल और अचल नियम बना देता है, उसी प्रकार इसके लिये भी उसने नियम बना दिये हैं। जो लोग उन नियमोंके अनुसार चलते हैं, उनके सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें कोई बाधा नहीं पड़ती और जो अज्ञानता किंवा उद्दण्डताके कारण उन नियमोंके प्रतिकूल आचरण करते हैं, उन्हें इस सुखसे वञ्चित रहना पड़ता है।

जब किसानको कोई अच्छी चीज उत्पन्न करनी होती है, तो उसे उसके समस्त साधनोंपर ध्यान रखना होता है। उसे एक ओर यदि अच्छीसे अच्छी जमीन और अच्छेसे अच्छा बीज पसन्द करना पड़ता है, तो दूसरी ओर ऋतु, आबोहवा और परिचर्यापर ध्यान रखना पड़ता है। यदि जमीन या बीज अच्छा न हुआ, यदि खेतकी अच्छी तरह जुताई न हुई, यदि यथानियम और यथा समय बीज न बोया गया, यदि बीज अंकुरित होनेके बाद सिंचाई और निकाई आदि परिचर्याओंपर ध्यान न रक्खा गया, तो किसानको सुफलकी प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। जिस किसानको कृषि शास्त्रका ज्ञान होता है, जो किसान अनुभवी होते हैं, वे इन समस्त बातोंपर

ध्यान रखते हैं, फलतः उन्हें कभी विफल नहीं होना पड़ता।

सन्तानोत्पत्तिके सम्बन्धमें भी यही बात है। जैसे बीज से फल उत्पन्न करनेके लिये कृषि शास्त्रका ज्ञान आवश्यक हैं, वैसे ही सन्तानोत्पत्ति के लिये सन्तान-शास्त्रका ज्ञान आवश्यक है। हमारे पाठक यह प्रश्न कर सकते हैं, कि जो लोग सन्तान पर सन्तान उत्पन्न करते रहते हैं, उनमेंसे कितने लोगोंको इस शास्त्रका ज्ञान रहता है? उत्तरमें बतलाया जा सकता है, कि संसारके अधिकांश मनुष्य निःसंदेह इस शास्त्रको नहीं जानते, किन्तु उनके द्वारा ईश्वरके सन्तान विषयक नियमोंका पालन होता रहता है, इसीलिये उनके सन्तान पर सन्तान उत्पन्न होती चली जाती है। किंतु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि सन्तान-शास्त्र कोई वस्तु हो नहीं हैं या उसका जानना निरर्थक हैं। जो लोग इसके नियमोंको जानकर इस कार्यमें प्रवृत्त होंगे, वे निःसंदेह इस शास्त्रकी जानकारी न रखनेवाले लोगोंकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी सन्तान उत्पन्न कर सकेंगे।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि अनेक बार इस शास्त्र के नियम जानने और ईश्वर प्रदत्त सन्तानोत्पत्तिके अंगों

तथा उनके सञ्चालन विषयक ज्ञानको भली भाँति काममें लाने पर भी सन्तान क्यों नहीं उत्पन्न होती ?—यथा नियम संयोग करने पर भी गर्भ क्यों नहीं रहता ? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता, कि सन्तानोत्पत्ति का अधिकार ईश्वर के ही आधीन है और भाग्यमें जो बदा होता हैं, वही होता है ?

इस सम्बन्धमें हम अपने पाठकोंको स्पष्ट बतला देना चाहते हैं, कि अन्यान्य बातोंमें भाग्य भले ही कुछ काम करता हो, किन्तु सन्तानके सम्बन्धमें भाग्य जैसी कोई चीज नहीं है। यदि पुरुषका संयोग होनेपर भी स्त्रीको गर्भ नहीं रहता, तो उसका कारण कोई रोग किंवा सन्तान-शास्त्रके नियमोंकी अज्ञानता होती हैं, न कि भाग्य! ऐसे अनेक रोग हैं, जिनके कारण स्त्री-पुरुषका वीर्य या तो दूषित हो जाता है या सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें आनेवाले अङ्गोंमें बिगाड़ पैदा हो जाता है। इन रोगोंमें अनेक रोग ऐसे होते हैं, जिनकी हस्तीका हमें बिलकुल पता ही नहीं चलता और हमें यही मालूम होता है, कि हम पूर्ण-रूपसे स्वस्थ हैं, किन्तु वास्तवमें इन रोगोंके ही कारण सन्तान उत्पन्न नहीं होती। अगले अध्यायमें हम इन रोगों तथा ऐसे ही अन्यान्य कारणोंका उल्लेख करेंगे।

मनचाही सन्तान

इन्हें जान लेने पर हमारे पाठकोंको विश्वास हो जायगा कि सन्तानोत्पत्ति ईश्वराधीन नहीं बल्कि मनुष्याधीन ही है और मनुष्य अपनी इच्छा व चेष्टासे न केवल सन्तान ही उत्पन्न कर सकता है बल्कि उसे मनचाही—इच्छानुसार बलवान या गुणवान भी बना सकता है।

2

३

सन्तान न होनेके कारण।

गत अध्यायमें यह बतलाया गया है, कि सन्तानोत्पत्ति मनुष्याधीन है, ईश्वराधीन नहीं। यदि दाम्पत्य-जीवन बिताने—यथाविधि संयोग करने पर भी, किसीको सन्तान नहीं होती, तो उसका कारण बहुधा कोई रोग होता है। इसके लिये ईश्वर या भाग्यको दोष नहीं दिया जा सकता। इन रोगोंमेंसे कुछ रोग असाध्य भी होते हैं, किन्तु अधिकांश रोगोंकी चिकित्सा करायी जा सकती है और चिकित्सा द्वारा वे निर्मूल भी हो सकते हैं। दुर्भाग्यवश इन रोगोंकी संख्या इतनी अधिक है, कि यदि उनका पूर्णरूपसे वर्णन किया जाय, तो इस पुस्तक जैसी कमसे कम दो पुस्तकें तैयार हो सकती हैं। साथ ही उनमेंसे बहुत रोग ऐसे भी हैं, जिन्हें केवल सुयोग्य चिकित्सक किंवा डाक्टर ही समझ सकते हैं। ध्यान रखनेकी बात

यह है, कि यह रोग भयानक तो इतने होते हैं, कि इनके कारण सन्तानका उत्पन्न होना तक बन्द हो जाता है, किन्तु साथ ही दूसरी ओर यह इतने सूक्ष्म होते हैं, कि अपढ़ लोगोंकी कौन कहे, अच्छे पढ़े लिखे लोग भी इनको समझ नहीं सकते। उनके ध्यानमें भी यह बात नहीं आती, कि मेरे अथवा मेरी स्त्रीके शरीरमें कुछ ऐसे रोगोंने घर कर लिया है, कि जिनके कारण हमलोग सन्तानोत्पादन करनेमें असमर्थ हो गये हैं। इसीलिये वे भाग्य किंवा ईश्वरको दोष दिया करते हैं। ऐसे लोगोंको हम इन रोगोंका संक्षेपमें दिग्दर्शन करा देना उचित समझते हैं। किन्तु यह रोग बहुधा उन अङ्गोंमें हुआ करते हैं, जिनसे सन्तानोत्पत्तिका कार्य सम्पादित होता है, अतएव उन रोगोंका वर्णन करनेके पहले स्त्री और पुरुषके प्रजनन अङ्गोंका परिचय अंकित कर देना अधिक आवश्यक है। इन अंगोंके सम्बन्धकी आवश्यक बातोंको जाने बिना उन रोगोंका समझना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है।

पुरुषके प्रजनन अङ्ग—पुरुषके मुख्य प्रजनन अङ्ग पांच हैं (१) अण्डकोष (२) अण्ड (३) शुक्रजनक ग्रन्थी (४) शुक्राशय और (५) शिश्न। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

अण्डकोष—यह वह अंग है जो सारे शरीरसे वीर्यको एकत्र करता है। मैथुन करनेपर इसके द्वारा वीर्य तैयार होता है। बाहरसे इसकी शकल एक लटकती हुई थैली की तरह होती है। इस थैलीके भीतर दो अण्डाकार अण्ड होते हैं। एक थैलीकी दाहिनी और दूसरा बाईं ओर लटका करता हैं। प्रौढ़ावस्थामें यह २½ इञ्च लम्बे १ इञ्च चौड़े और आध इञ्च मोटे होते हैं। यह एक प्रकारकी बहुत ही सूक्ष्म रेशेदार वस्तुसे ढके रहते हैं और उसकी बनावट ऐसी होती है, कि वह अण्डको कई भागोंमें विभक्त कर देती है। एक भागमें शुक्रजनक ग्रन्थि होती है और दूसरेमें अतिसूक्ष्म लपेटे हुए सूत्रके समान एक बहुत लम्बा तन्तु होता है, जिसमें शुक्रकीट उत्पन्न होते और रहते हैं। इन्हीं शुक्रकीटोंसे सन्तानोत्पत्ति होती है।

शुक्राशय—ये एक प्रकारकी दो थैलियां हैं जिनका कुल अंश लपेटे हुए सूतकी सी वस्तुका बना होता है। ये मूत्राशयसे बिलकुल मिली हुई होती हैं। इनमें अण्डों द्वारा उत्पादित वीर्य इकट्ठा होता है, जो मूत्रमार्गसे बाहर निकलता है।

मूत्रमार्ग मूत्राशयके नीचेवाली नलीको कहते हैं।

प्रौढ़ावस्थामें इस नलीकी लम्बाई ८ या ९ इञ्च होती है। इस नलीका आरम्भ मूत्राशयके नीचेसे होता है और यह शिश्नके नीचेसे होती हुई लिङ्ग-मुण्डमें समाप्त हो जाती है। शिश्नके सिरे पर जो छिद्र होता है वह इसी मूत्रमार्गकी नलीका अन्त है। इसी नलीके मार्गसे मूत्र और शुक्र बाहर निकलते हैं।

शिश्न—यह तीन बेलनाकार मांस तन्तुओंसे बना होता है। बढ़कर अपने पूर्ण प्रमाणमें आना और फिर सिकुड़कर छोटा हो जाना इसका गुण है। इसके अन्तमें शिश्नमणि या सोपारी होती है, जो छुछड़ी नामक चमड़ेसे ढकी रहती है। ये शिश्न और अण्डकोष सारे शरीरके स्नायु-मण्डलसे मिले रहते हैं। ज्ञान या कर्मेन्द्रियोंके कार्यसे शिश्नमें आप ही आप उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। स्नायु किंवा ज्ञान-तन्तुओं द्वारा खबर पहुंचते ही रक्तकी नाड़ियोंसे तीनों बेलनाकार मांस तन्तुओंमें रक्त उमड़ पड़ता है, तब शिश्नमें बड़ी तीक्ष्ण उत्तेजना उत्पन्न हो जाती हैं और वह एकबारगी बढ़ जाता है।

स्त्रियोंके मुख्य प्रजनन अंग चार हैं—(१) जननेन्द्रिय (२) गर्भाशय (३) अण्डाशय और (४) फलवाहिनी। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

जननेन्द्रिय—युवतियोंमें इसकी गहराई लगभग ३ इञ्च होती हैं। इसमें दो छिद्र होते हैं—एक छोटा और दूसरा बड़ा। छोटे छिद्रसे मूत्रमार्गकी नली मिली होती है। बड़े छिद्रका लगाव गर्भाशय आदिसे रहता है। इसे योनिद्वार कहते हैं। यही मासिक स्रावका मार्ग है और इसी मार्गसे बच्चेका जन्म होता है। इसके ऊपर दो मुलायम गद्दियां होती हैं, जिन्हें भगोष्ठ कहते हैं। इसके अन्दर एक चन्द्राकार पड़दा रहता है, जो बहुधा पुरुषका संग होनेपर फटता है।

गर्भाशयका आकार अमरूद, नासपाती या बैंगनके समान होता है। यह अन्दरसे पोला परन्तु बाहरसे चिपटा होता है। जिन स्त्रियोंको एक भी बच्चा न हुआ हो, उनके गर्भाशयकी लम्बाई २ इञ्च, मोटाई १ इञ्च और वजन २½ से ३½ तोले तक होता है। जिन स्त्रियोंके बच्चे हो जाते हैं, उनके गर्भाशयका आकार कुछ बड़ा होता है। स्त्री-पुरुषका संयोग होनेपर इसी गर्भाशयमें सन्तानकी नींव पड़ती है और ९ मास तक इसीमें बच्चेका पोषण होता है।

गर्भाशयकी दाहिनी और बाईं ओर जरासे फासले पर एक एक अण्डाशय होता है। इन अण्डाशयोंका आकार

बादामके समान होता है। इन दोनोंके अन्दर अगणित डिम्ब किंवा अण्डे भरे रहते हैं। इन डिम्बोंमेंसे प्रतिमास प्रायः रजोदर्शनके समय एक डिम्ब निकलता है। इसी डिम्बसे पुरुषके वीर्यका योग होने पर गर्भ-संचार होता है। यह डिम्ब दोनों अण्डाशयोंसे बारी बारीसे निकलते हैं। पहले महीनेमें यदि दाहिने अण्डाशयसे निकलता है तो दूसरेमें बायें से। यही क्रम आजीवन चला करता है।

गर्भाशय और अण्डाशयके बीचमें फलवाहिनी नलियां होती हैं। डिम्ब भली भाँति परिपक्व होकर जब अण्डाशयसे बाहर निकलता है, तब इन्हीं प्रनालियों द्वारा गर्भाशयमें पहुंचता है। इन नालियोंकी लम्बाई ४ इञ्च के करीब होती है। इनका एक सिरा गर्भाशयसे मिला हुआ और दूसरा अण्डाशयके पास रहता है। अण्डाशयकी ओरका सिरा गुच्छेदार होता है और उसका कुछ अंश अण्डाशयसे जुड़ा रहता हैं। इसीके सहारे डिम्ब अण्डाशयसे निकलते ही इस प्रनालीमें चला जाता है। गर्भाशयके पास इनकी मोटाई $\frac{१}{६}$ इञ्च और अण्डाशयके पास $\frac{१}{३}$ इञ्चके करीब होती है। यह भीतरसे बहुत तंग होती हैं। गर्भाशयके पास नलीका भीतरी व्यास $\frac{१}{२४}$ इञ्च और डिम्ब ग्रन्थिके पास $\frac{१}{१२}$ इञ्चके करीब होता है।

अपने पाठकोंको स्त्री-पुरुषके प्रजनन-अङ्गोंका यह संक्षिप्त परिचय करानेके बाद, अब हम उन रोगोंके सम्बन्धमें लिखेंगे, कि जिनके कारण अनेक स्त्री पुरुषोंको दाम्पत्य-जीवनके नियमानुसार आचरण करने पर भी सन्तान-सुखसे वञ्चित रहना पड़ता है। इन रोगोंका बहुधा इन प्रजनन अङ्गोंसे ही सम्बन्ध होता है, किन्तु कभी कभी यह केवल स्त्रीमें ही, कभी कभी पुरुषमें ही और कभी कभी दोनोंमें हुआ करते हैं। इन तीनमेंसे किसी भी अवस्थामें सन्तान नहीं होती। इन रोगोंका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

स्त्रियोंके रोग।

(१) योनिच्छद—ऊपर बतलाया जा चुका है, कि स्त्रियोंकी जननेन्द्रियमें एक चन्द्राकार झिल्ली या पड़दा रहता है। उसीको योनिच्छद कहते हैं। कभी कभी यह पड़दा बहुत कड़ा, चिमड़ा या मुलायम होनेके कारण अथवा पुरुषाङ्गकी उस तक पहुंच न होनेके कारण वह ज्योंका त्यों बना रहता है। इसके कारण पुरुषका वीर्य गर्भाशय तक नहीं पहुंच सकता, फलतः स्त्रियाँ गर्भ-धारण नहीं कर सकतीं।

(२) अण्डाशयके रोग—स्त्रियोंको अण्डाशय सम्बन्धी ऐसी अनेक बीमारियाँ हो जाया करती हैं, जिनके कारण उनकी गर्भ-धारणकी क्षमता नष्ट हो जाती है। अण्डाशयोंका न होना, अण्डाशयोंका पूर्णरूपसे न खिलना, अण्डाशयोंका सूज जाना, अण्डाशयोंका पक जाना, अण्डाशयोंका भ्रंश हो जाना, अण्डाशयोंमें गांठे पड़ जाना, आदि ऐसी ही बीमारियाँ हैं। इनमेंसे कई जन्मसे कई माता-पिताके दोषसे और कई स्वयं अपने दोषसे उत्पन्न होती हैं। इन बीमारियोंके कारण रज दूषित हो जाता है, अतएव गर्भ नहीं रहता।

(३) दूषित रज—स्त्रियोंका रज वात, पित्त, कफ और रक्त किंवा इनके सम्मिलित दोषोंसे दूषित हो जानेके कारण बेकार हो जाता है, अतएव स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

(४) प्रदर रोग—आहार विहारकी अनियमिततासे स्त्रियोंको प्रदरकी व्याधि हो जाया करती हैं। इस व्याधिमें उन्हें लाल, पीला, नीला, सफेद या किसी दूसरे रङ्गका स्राव हुआ करता है। इससे गर्भाशय और जननेन्द्रियमें विकार उत्पन्न हो जानेके कारण न केवल रज ही दूषित हो जाता है; बल्कि यह स्राव शुक्रकीटोंको भी नष्ट कर

देता है। अतएव इस रोगमें स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

(५) गर्भाशयके रोग—गर्भाशयके रोग भी अनेक प्रकारके होते हैं यथा, गर्भाशयका मुख छोटा पड़ जाना, गर्भाशयमें सूजन होना, गर्भाशयका फट जाना, गर्भाशयका फूल जाना, गर्भाशयसे रस-स्राव होना, गर्भाशयके मुखका सूज जाना, गर्भाशयमें जलन होना, गर्भाशयका मोटा हो जाना, गर्भाशयमें जल भर जाना, गर्भाशयमें गांठे पड़ जाना, गर्भाशयका मुख बन्द हो जाना, गर्भाशयमें अर्बुद हो जाना, गर्भाशयमें जख्म हो जाना, गर्भाशयमें रसौली हो जाना, गर्भाशयमें नासूर होना, गर्भाशयका टेढ़ा हो जाना, गर्भाशयका टल जाना, गर्भाशयका उलट जाना, गर्भाशयका मुख अधिक खुल जाना, गर्भाशयमें मस्से हो जाना, गर्भाशयका दग्ध हो जाना, गर्भाशयमें रक्त जमकर सूख जाना, गर्भाशयमें वीर्य न ठहरना, गर्भाशयमें मांस बढ़ जाना, गर्भाशयमें कीड़े पड़ जाना इत्यादि। इन रोगोंके कारण अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न हो जाते हैं, अतएव स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

(६) रजोदर्शनके रोग—रज-स्रावका न होना, कम होना, अधिक होना वा कष्टपूर्वक होना आदि भी

ऐसी बीमारियाँ हैं, कि जिनके कारण गर्भाशय और अण्डाशय तकमें विकार उत्पन्न हो जाता है, फलतः गर्भ नहीं रहता।

(७) वन्ध्यत्व—प्रजनन अङ्गोंका न होना, गर्भाशयका नष्ट हो जाना, अण्डाशयोंका न होना, चरबी या स्थूलताका बढ़ जाना, निर्बलता, छोटी उम्रमें संयोग करनेके कारण गर्भाशयका दग्ध हो जाना, जननेन्द्रियमें वीर्यका न ठहरना, गर्भाशयका मुंह छोटा हो जाना, सदा रक्त-स्राव या किसी दूसरे प्रकारका स्राव होते रहना, गर्भाशयमें वीर्यका सूख जाना आदि विकार वन्ध्यत्व रोगमें परिगणित किये जाते हैं। इनके कारण स्त्रियोंमें गर्भ-धारणकी क्षमता नहीं रहती।

(८) योनि रोग—वात, पित्त और कफका अलग अलग या एक साथ बिगड़ जाना, रक्त-पित्तका दूषित हो जाना, गन्दगीके कारण कीड़ोंका पड़ जाना, अत्यन्त मैथुन, छोटी उम्रमें पुरुषका संयोग, कफ उत्पन्न करनेवाले आहार, कय, स्वासका रोकना, छींक और डकारका रोकना, अधोवायुको रोकना, छोटी उम्रमें गर्भ रहना, रक्त निकलना भोजनके जाद बेढंगी तरह संयोग करना, संयोगके समय मलमूत्रके वेगको रोक रखना; विपरीत रति करना, प्रभृति

कारणोंसे स्त्रियोंकी योनिमें ऐसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे उन्हें गर्भ नहीं रहता। योनिमें सूजन, सड़न, गांठें पड़ जाना, जख्म हो जाना, योनि भ्रंश होना आदि भी इसी प्रकारके रोग हैं। इनमें स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

(९) सोम रोग—इस रोगमें स्त्रियोंके मसाने अत्यन्त दुर्बल हो जाते हैं। रज बिगड़ जाता है और मूत्र बहुत अधिक परिमाणमें होने लगता है। इस रोगमें भी स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

(१०) फलवाहिनी नलीके रोग—फलवाहिनी नलीमें सूजन, उसका टेढा हो जाना या उसमें रक्त जम जाना प्रभृति फलवाहिनी नलीके रोग हैं। इन रोगोंमें गर्भाशय तथा अण्डाशयमें विकार उत्पन्न हो जाता है, अतएव गर्भ नहीं रहता।

(११) गर्मी या उपदंश—गर्मी या उपदंशकी बीमारी बहुत ही भयंकर होती है। व्यभिचार करने या व्यभिचारी पुरुषका संग करनेसे स्त्रियोंको यह रोग हो जाया करता है। इसमें नाना प्रकारके विकार उत्पन्न होते हैं, यहां तक कि गर्भाशय आदि प्रजनन अंग पूर्णरूपसे नष्ट हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

पुरुषोंके रोग।

(१) पुरुषाङ्गका छोटा होना—इससे वीर्य गर्भाशय तक नहीं पहुंचता अतः गर्भ नहीं रहता।

(२) दुर्बल शुक्रकीट—शुक्रकीट दुर्बल और निस्तेज होनेसे वे गर्भाशयकी ओर अग्रसर नहीं हो पाते अतः गर्भ नहीं रहता।

(३) अण्डकोषमें दोष—अण्डकोषोंका पूर्ण विकास न होने या उनकी वनावटमें कोई दोष रह जानेसे विशुद्ध वीर्य तैयार नहीं होता।

(४। हस्त-मैथुन—किशोरावस्थामें अज्ञानताके कारण यह बुरी आदत लग जानेसे पुरुषाङ्ग शिथिल और वीर्य दूषित हो जाता है, अतएव स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

(५) कोष-वृद्धि—अण्डकोषमें पानी या मांस बढ़ जानेसे उनका आकार अपेक्षाकृत बहुत अधिक बढ़ जाता है, फलतः वे यथा नियम वीर्य प्रस्तुत नहीं कर सकते। ऐसी अवस्थामें संयोगका कोई फल नहीं होता।

(६) गर्मी व सूजाक—इन रोगोंके कारण वीर्य और प्रजनन अंग दूषित हो जाते हैं, अतएव इन रोगोंकी प्रबलताके समय गर्भ नहीं रहता।

(७) वीर्य-स्राव या प्रमेह—इस रोगमें मलमूत्र और

स्वप्नमें अथवा किसी अन्य प्रकारसे वीर्य-स्राव हुआ करता है। इससे शुक्रकीट निस्तेज हो जाते हैं फलतः स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

(८) शुक्रकीटोंकी कमी—अतिविहारके कारण वीर्यमें कीटोंकी कमी हो जाती है। इस अवस्थामें भी संयोगसे कोई फल नहीं होता।

(९) शिथिलता—वीर्य-दोष, पुंमैथुन, हस्त-मैथुन किंवा अतिविहारके कारण पुरुषाङ्ग शिथिल हो जाता है। इससे वीर्य गर्भाशय तक नहीं पहुंचता।

(१०) नपुंसकता—किसी भी कारणसे पुरुष नपुंसक हो जानेसे उसकी संयोग-शक्ति आंशिक किंवा पूर्णरूपसे नष्ट हो जाती है। आंशिक रूपसे नष्ट होनेपर संयोग भी आंशिक रूपमें ही हो पाता है अतएव गर्भ नहीं रहता।

(११) दूषित वीर्य—वात, पित्त, कफ और रक्तके पृथक पृथक किंवा सम्मिलित दोषोंके कारण वीर्यमें ऐसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं, कि उसमें गर्भ धारण करनेकी क्षमता नहीं रहती।

(१२) पुरुषाङ्गकी स्थूलता या वक्रता—इस दोषके कारण वीर्य गर्भाशय तक नहीं पहुंचता अतः स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

स्त्री-पुरुषके सम्मिलित रोग।

(१) अतिमैथुन—स्त्री और पुरुषमें यह दोष होनेसे वे दोनों निकम्मे हो जाते हैं। इससे उनके प्रजनन अङ्गोंमें अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न हो जाते हैं और उनके रज तथा वीर्यमें कीटोंकी इतनी कमी हो जाती है, कि संयोग करने पर भी गर्भ नहीं रहता।

(२) अप्राकृतिक संयोग—उल्टे, टेढ़े या करवट होकर संयोग करने या बेहूदे आसनोंके फेरमें पड़ जानेसे स्त्रियोंके गर्भाशय आदि अङ्गोंमें विकार उत्पन्न हो जाता हैं अतएव उन्हें गर्भ नहीं रहता।

(३) अपूर्ण मैथुन—स्त्रियोंके पहले पुरुषका वीर्यपात हो जाने अथवा वीर्यपातके समय एकायक स्त्रीसे पृथक हो जानेको अपूर्ण मैथुन कहते हैं। इस अवस्थामें भी स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता।

इनके अतिरिक्त ऋतुकाल (रजोदर्शनके पहले दिनसे सोलह दिन तकका समय :ऋतुकाल कहलाता है) के व्यतीत हो जानेपर संयोग करना, बहुत छोटी अथवा बड़ी उम्रमें संयोग करना, गर्भाशयका मुख अधिक खुल जानेसे रज-वीर्यका बाहर निकल पड़ना आदि भी ऐसी बातें है, जिनसे स्त्रियोंकी गर्भस्थितिमें बाधा पहुंचती है।

इन अवस्थाओंमें यदि सम्मिलित जीवन व्यतीत करते हुए भी गर्भ न रहे, तो किसीको आश्चर्य न करना चाहिये और उसके लिये ईश्वरको दोष न देना चाहिये। हमने ऊपर जिन जिन रोगोंका उल्लेख किया हैं, उनकी परीक्षा करनेमें अच्छे अच्छे चिकित्सक भी धोखा खा जाते हैं। ऐसी अवस्थामें यह सम्भव नहीं है, कि हमलोग स्वयं उनका निर्णय कर सकें। इसीलिये हमने इन रोगोंका विस्तार-पूवक वर्णन नहीं किया। किन्तु जो कुछ किया है, वह केवल इसी विचारसे, कि हमारे पाठक और पाठिकायें अपने मस्तिष्कसे इस भ्रान्त धारणाको निकाल दें, कि सन्तानका होना न होना भाग्य किंवा ईश्वर पर निर्भर करता है। यद्यपि उपरोक्त रोगोंमें अनेक रोग ऐसे भी हैं, जो जन्म ही से होते हैं या जो असाध्य होते हैं, किन्तु अधिकांश रोग ऐसे हैं, कि जिनकी चिकित्सा करायी जा सकती है। सुयोग्य चिकित्सक द्वारा चिकित्सा करानेसे यह रोग निर्मूल हो सकते हैं और सन्तानोत्पादनकी क्षमता पुनः प्राप्त की जा सकती है। अनेक रोग तो ऐसे भी हैं, जिनमें रोगकी अवस्थामें भी सन्तान होना बन्द नहीं होता। बन्द केवल उसी अवस्थामें होता है, जब रोग चरमसीमामें पहुंच जाता है। ऐसी अवस्थामें

किसीको निराश न होना चाहिये और यदि सन्तान न होती हो, तो उसका कारण खोज निकालना चाहिये। God helps those who help themselves ईश्वर भी उन्हींको सहायता करता है, जो अपने आपको सहायता करते हैं। यदि पाठकगण कारणोंको खोजनेके बाद उन्हें निर्मूल करनेकी चेष्टा करेंगे, तो वे देखेंगे कि ईश्वर और भाग्य भी अनुकूल हो गया है और उनकी गोद बच्चेसे परिपूर्ण हो गयी है। फिर उन्हें ईश्वर या भाग्यको दोष न देना होगा। हां, यदि यत्न करने पर भी सफलता न मिले, तो पाठकगण केवल सन्तोषके लिये ईश्वर या भाग्य किसीको भी दोष दे सकते हैं।

४

मनचाही सन्तान कैसे उत्पन्न हो सकती है ?

संसारमें बिना चेष्टा और बिना उद्यमके मनुष्य किसी भी कामको पार नहीं उतार सकता। एक छोटेसे छोटे कार्यसे लेकर बड़ेसे बड़े कार्य तकके लिये उसको समुचित चेष्टा अवश्य करनी पड़ती है। चेष्टा ही सफलताका मूलमन्त्र है। उसीका दूसरा नाम साधना है। बिना साधनाके सिद्धि नहीं मिलती। जो काम जितना कठिन होता है, उसकी सिद्धिके लिये—उसमें सफलता प्राप्त करनेके लिये वैसी ही कठिन साधना करनी पड़ती है। प्रकृतिका यह भी एक अटल नियम है। प्राणीमात्रको इस नियमके अनुसार ही काम करना पड़ता है।

सन्तानोत्पादनका कार्य भी इस नियमसे मुक्त नहीं है। इसके लिये भी मनुष्यको कुछ चेष्टा, कुछ यत्न और

कुछ साधना करनी पड़ती है। मनचाही सन्तानका उत्पन्न करना तो और भी कठिन है। उसके लिये तो और भी कठिन साधना करनी पड़ती है। किन्तु यह बड़े सन्तोषकी बात हैं, कि यह साधना कभी निष्फल नहीं जाती। जिस प्रकार सन्तान उत्पन्न करना मनुष्यके अधिकारकी बात है, उसी तरह उस सन्तानको मन पसन्द बनाना भी मनुष्य हीके अधिकारकी बात हैं। वह इच्छानुसार अपनी सन्तानको भली या बुरी बना सकता है। वह अपनी सन्तानमें जैसा चाहे वैसा गुण उत्पन्न कर सकता है। वह चाहे तो अपनी सन्तानको हरिश्चन्द्रके समान सत्यवादी, दधीचिके समान त्यागी, अर्जुनके समान विक्रमी, रामके समान आदर्श, प्रतापके समान प्रतापी और ऋषि मुनियोंकी भांति साधु प्रकृतिकी बना सकता है। सन्तानको गणितज्ञ, वैज्ञानिक, आविष्कारक या कला-कुशल बनाना भी उसके हाथकी बात है। इसके लिये आवश्यकता है केवल साधना की।

किन्तु साधना बड़ी टेढ़ी खीर है। सीधे सादे और साधनायुक्त जीवनमें जमीन आसमानका अन्तर है। साधारण जीवनकी तुलना उस नौकासे की जा सकती है, जो बहावकी ओर हवा और जलकी गतिके अनुसार

सुगमतापूर्वक बही जा रही हो। इसे आगे बढ़ानेके लिये मल्लाहको डांड नहीं चलाने पड़ते, न उसे इसी बातपर विचार करना पड़ता है, कि हम निर्दिष्ट स्थान तक कैसे पहुंचेंगे। किन्तु एक साधकका जीवन उस नौकाके समान होता है, जिसे बहाव और हवाकी रुखके विरुद्ध—कभी कभी तूफानमें भी—अपना रास्ता तय करना होता है। ऐसी नौकाके मल्लाहोंको बड़ी चतुराईसे काम लेना होता है। उन्हें प्रत्येक क्षण इस बात पर ध्यान रखना होता है, कि कहीं नौका उलट न जाय या उसकी गति इतनी मन्द न हो जाय, कि वह निर्दिष्ट स्थानको यथा-समय न पहुंच सके। इसके लिये उसे कितनी चेष्टा करनी पड़ती है, यह वही समझ सकते हैं, जिन्हें कभी इसका अनुभव प्राप्त हुआ हो।

एक साधककी भी ठीक यही दशा रहती है। उसे भी अपनी जीवन-नौकाको बड़ी बड़ी कठिनाइयां, बड़ी बड़ी प्रतिकूलतायें और बड़े बड़े संकटोंके बीचसे आगे बढ़ाना होता है। एक ओर तो उसे आत्म-संयमसे काम लेना होता हैं, निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार आचरण करना होता है, दूसरी ओर संसारके प्रलोभन, विषय-वासना और दुर्व्यसन उसे अपनी ओर खींचते हैं। जिनमें कुछ मनोबल होता

है, जो दृढ़ प्रतिज्ञ होते हैं, वे इन प्रलोभनोंके फेरमें नहीं पड़ते। उनके मनमें जब इन दोनों शक्तियोंका संघर्ष होता है, तब वे अपनी दृढ़ताके कारण निर्दिष्ट पथसे विचलित नहीं होते। ऐसे ही मनुष्योंकी साधना सफल होती है। ऐसे ही मनुष्योंको सिद्धि प्राप्त होती है। ऐसे ही मनुष्य इच्छित वस्तु प्राप्त कर सकते हैं।

मनचाही सन्तान प्राप्त करनेके लिये भी इसी तरहकी साधना करनी पड़ती है। जिस तरह योगकी साधना करनेवालेको योग-शास्त्रके नियमोंका पालन करना पड़ता है, भिन्न भिन्न यौगिक क्रियायें करनी पड़ती हैं, तन मन पवित्र रखना होता है, ठीक उसी तरह मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको सन्तान शास्त्रके नियमोंका पालन करना होता है। उन्हीं नियमोंके अनुसार भिन्न भिन्न क्रियायें करनी होती हैं और उन्हीं नियमोंके अनुसार अपनी जीवनचर्या बनानी होती है। यद्यपि यह साधना बहुत कठिन नहीं है, तथापि इसके लिये कुछ न कुछ चेष्टा अवश्य करनी पड़ती है। जो लोग चाहते हों, कि हमारी जीवन-धारामें किञ्चित् भी परिवर्त्तन न हो और अनायास ही मनचाही सन्तानकी प्राप्ति हो जाय, उनके लिये हमारे पास कोई उपाय या साधन नहीं है। ऐसे लोगोंके लिये यह उत्तम

होगा कि वे इस पुस्तकको यहीं तक पढ़कर रख दें और किसी ऐसे महात्माकी खोज करें जो अपनी दैवी शक्तिसे उन्हें बिना किसी कष्टके मनचाही सन्तानका माता-पिता बना दे। किन्तु जिन लोगोंमें कुछ दृढ़ता हो, जो मनचाही सन्तानके नामपर कुछ त्याग और आत्म-संयम कर सकते हों, जो आवश्यकतानुसार जीवन-धाराको पलटनेके लिये तैयार हों, वे इस पुस्तकको आगे पढ़ें और इसमें बतलाये हुए नियमोंके अनुसार आचरण करें। इस साधनामें वे जितने ही अग्रसर होंगे, उतनी ही उन्हें सफलता होगी।

अस्तु, अब हम अपने पाठकोंको यह बतलायेंगे, कि मनचाही सन्तान किस प्रकार उत्पन्न हो सकती है और इसके लिये दम्पतियोंको किन साधनोंसे काम लेना पड़ता है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि माता-पिता अपनी सन्तानको उत्तम बनानेके लिये यदि थोड़ा सा भी यत्न करते हैं, तो वह कभी निष्फल नहीं जाता और सन्तानमें कुछ न कुछ सुधार अवश्य हो जाता है, किन्तु एक सन्तानको पूर्णरूपसे उत्तम बनानेके लिये बहुत समय और बहुत बड़े यत्नकी आवश्यकता पड़ती है। कभी कभी तो इस कार्यके लिये इतने अधिक समयकी आवश्यकता पड़ती है,

कि सन्तानको सुधारते सुधारते दो तीन पीढ़ियाँ बीत जाती हैं, तब कहीं अन्तमें सन्तान पूर्णरूपसे उत्तम हो पाती है। किन्तु सबके सम्बन्धमें यह बात नहीं कही जा सकती। सर्वसाधारणके लिये इस सम्बन्धमें यही नियम स्थिर किया जा सकता है, कि वे जिस समय जिस अवस्थामें हों, उसी समयसे इसकी चेष्टामें लग जायँ। इतना करनेसे भी वे देखेंगे, कि उनकी सन्तान पहलेकी अपेक्षा बहुत कुछ सुधर चली है।

मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये लोगोंको जो साधना करनी पड़ती है और उसमें जो समय लगता है वह पांच भागोंमें बांटा जा सकता है यथा—(१) तैयारी (२) गर्भाधान (३) गर्भावस्था (४) स्तनंधयावस्था और (५) शिक्षा-दीक्षा। इन पांचोंके सम्बन्धमें विशेष ध्यान रखने योग्य बातें यह हैं :—

(१) तैयारी—मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये मनुष्यको बहुत पहलेसे तैयारी करनी पड़ती है। समय और सुविधा न हो, तो बात ही अलग है, अन्यथा यह तैयारी किशोरावस्थासे आरम्भ होनी चाहिये। बाल्यावस्था और युवावस्थाके बीचकी अवस्था किशोरावस्था कहलाती है। बच्चोंको बारहवर्षसे लेकर

~मनचाही सन्तान~

पन्द्रह सोलह वर्ष तककी अवस्थाको हम किशोरावस्था कह सकते हैं। किशोरावस्थाके पहले बच्चोंको अपने प्रजनन अङ्ग उनकी रचना, उनके व्यवहार और उनकी विशेषताका वास्तविक ज्ञान नहीं होता। किन्तु किशोरावस्थामें पदार्पण करनेके बाद उनके अंगोंमें उत्तेजना उत्पन्न होने लगती है और वे धीरे धीरे इन अंगोंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करने लगते हैं। यह ध्यानमें रखनेकी बात है, कि लड़के और लड़कियां इसी अवस्थामें अप्राकृतिक उपायों द्वारा अपनी वह शक्ति नष्ट करने लगते हैं, जो भविष्यमें उन्हें मनचाही सन्तानकी सृष्टि करनेमें सहायक होती हैं। हस्त-मैथुन आदिकी भयङ्कर बुराइयां किसीसे छिपी नहीं हैं। इन बुराइयोंके कारण न जाने कितनोंका जीवन भाररूप हो जाता है और न जाने कितने सन्तानोत्पादनकी क्षमता खो बैठते हैं। बच्चोंको यह शक्ति नष्ट करनेसे बचाना या स्वयं बचना मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेकी प्रधान तैयारी है। इस अवस्थामें ब्रह्मचर्यका पालन, विद्या और कलाओंका सम्पादन, शारीरिक एवम् मानसिक शक्तियोंका विकासप्रभृति विषयोंकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेमें इन सभी बातोंसे पर्याप्त सहायता मिलती है। इसके बाद

युवावस्थामें विवाह करना चाहिये। विवाह करते समय उन सभी बातों पर ध्यान रखना चाहिये, जिनसे भविष्यमें मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेमें सहायता मिल सके। विवाहके बाद सन्तानोत्पत्तिकी योग्यता पर विचार करना चाहिये और यदि यह विश्वास हो जाय, कि सन्तानोत्पत्ति करनेमें किसी प्रकारकी अड़चन है, तो गर्भाधानके पहले कमसे कम एक मास तक उसके लिये तैयारी करनी चाहिये। यही मनचाही सन्तानके लिये तैयारीका वक्त है। इसके सम्बन्धमें आगे चलकर हम अपने पाठकोंको पर्याप्त बातें बतलानेकी चेष्टा करेंगे।

(२) गर्भाधान—प्राचीनकालमें गर्भाधानकी क्रिया एक संस्कारमें परिगणित की जाती थी, किन्तु आजकल इसके सम्बन्धमें यहां कोई नियम दृष्टिगोचर नहीं होता। चाहे जिस समय, चाहे जिस अवस्थामें यह कार्य करनेके लिये हम स्वतन्त्र हैं। परन्तु मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा रखनेवालोंको इस समय कुछ विशेष नियमोंका पालन करना पड़ता है। माता तो गर्भाधानके बाद भी गर्भावस्थामें सन्तान पर प्रभाव डाल सकती है और उसमें मनचाही विशेषतायें उत्पन्न कर सकती है, किन्तु पिताकी ओरके यत्नकी प्रायः यहीं समाप्ति हो जाती

है, अतएव उसे इस अवस्थामें विशेष सावधान रहना पड़ता है।

(३) गर्भावस्था—गर्भस्थितिके बाद प्रायः ४० सप्तांह तक बच्चा गर्भमें रहता है। उस समय माताके आहार विहार और आचार विचारका उसपर गहरा प्रभाव पड़ता है। सन्तानको सर्वाङ्ग-सुन्दर और सर्वगुण-सम्पन्न बनानेके लिये यही सबसे अधिक महत्वपूर्ण समय होता हैं। इस समय सन्तानको उत्तम बनानेके समस्त प्रयोग माता द्वारा काममें लाये जाते हैं और पिताको अपनी ओरसे उसके इस काममें भरसक सहायता पहुंचानी पडती है।

(४) स्तनंधयावस्था—जन्म होनेके बाद प्रायः एक वर्ष तक बच्चे माताके ही दूध पर जीते हैं। उस समय माताके ही दूधसे उनका परिपालन होता है। माताका यह दूध उसके आहारसे प्रस्तुत होता है। अतएव बच्चे पर माताके आहारका प्रभाव पड़ना तो स्पष्ट ही है, किन्तु वैज्ञानिकोंने सिद्ध किया है, कि उस दूध पर माताके आचार विचारोंका भी प्रभाव पड़ता है, अतएव सन्तानको उत्तम बनानेकी अभिलाषा रखनेवालोंको इस बात पर ध्यान रखना होता है, कि बच्चा जिस समय दूध पी रहा

५

गार्हस्थ्य-जीवनकी तैयारी।

मनुष्य उत्पन्न होनेके साथ ही सन्तानोत्पत्ति करने योग्य नहीं हो जाता। यों तो दस वर्ष तककी बालिकाओंको गर्भ रहते और चौदह वर्ष तकके बालकोंको पिताका स्थान ग्रहण करते देखा गया है, किन्तु ऐसा क्वचित् ही होता है। चौदह पन्द्रह वर्षकी स्त्री और सोलहसे अट्ठारह वर्ष तकके पुरुष तो प्रायः सन्तानोत्पत्ति करते देखे जाते हैं, किन्तु स्त्री और पुरुषोंकी यह अवस्था वास्तवमें सन्तानोत्पादनकी अवस्था नहीं कही जा सकती। सन्तति-शास्त्र, धर्म-शास्त्र और वैद्यक-शास्त्र—किसीसे भी इस अवस्थाको अनुमोदन नहीं मिलता।

मनुष्य सन्तानोत्पत्ति करने योग्य किस समय होता है, सन्तति-शास्त्र स्त्री और पुरुषोंको किस समय इस कार्यमें प्रवृत्त होनेकी आज्ञा देता है तथा धर्मशास्त्र और

वैद्यक शास्त्रका इस सम्बन्धमें क्या आदेश है, यह सब बातें हम किसी स्वतन्त्र अध्यायमें आगे चलकर बतलायँगे। यहां तो हम केवल इसी बातपर विचार करना चाहते हैं, कि मनुष्यको सन्तानोत्पत्ति करनेके पहले कौन कौन सी तैयारियां करनी होती हैं, जिनके बिना उसका यह कार्य सुचारुरूपसे सम्पादित नहीं हो सकता और वह कौन सी बातें हैं, जिनके अनुसार आचरण न करनेसे मनचाही सन्तान उत्पन्न होना तो दूर रहा, उलटे उसे अपना जीवन भी भार रूप मालूम होने लगता है।

यह तो हम सभी जानते हैं, कि स्त्री पुरुषका विवाह होनेके बाद वे दाम्पत्य-जीवनमें पदार्पण करते हैं। इसी समयसे सन्तानोत्पत्तिके कार्यका श्रीगणेश होता है। संसारकी प्रायः समस्त जातियोंमें ऐसा ही नियम है। इस नियमके विरुद्ध यदि कोई सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें प्रवृत्त होता है, तो उससे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह जारज सन्तान कहलाती है। विवाह होनेके बाद यदि कोई पुरुष अपनी स्त्रीसे किंवा स्त्री अपने पुरुषसे सन्तानोत्पत्ति करे तो वह दोषावह नहीं समझा जाता। यदि कोई चाहे कि उन्हें यह कार्य करनेसे रोक दिया जाय, तो जैसा भी नहीं किया जा सकता। स्त्री और पुरुषका

विवाह कर देना उन्हें सन्तानोत्पत्तिके लिये स्वतन्त्र बना देनेके समान है। विवाह हो जानेके बाद मनुष्य सहर्ष सन्तानोत्पत्ति कर सकता है। उसके इस कार्यमें कोई बाधा नहीं दे सकता। चाहे उसका यह कार्य सन्तति-शास्त्र, धर्म-शास्त्र किंवा वैद्यक-शास्त्रके विरुद्ध ही क्यों न हो। किन्तु यह ध्यानमें रखनेकी बात है, कि मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा रखनेवालोंको न केवल विवाहके पहले ही बल्कि विवाहके बाद भी अनेक तैयारियाँ करनी होती हैं। बिना इन तैयारियोंके मनचाही सन्तान नहीं उत्पन्न हो सकती। विवाहके पहलेकी तैयारियाँ तो उनके लिये भी उतनी ही उपयोगी और अनिवार्य होती हैं, जो बिना किसी उद्देशके सन्तान उत्पन्न करते हुए साधारण रूपसे अपना जीवन बिताना चाहते हैं। शायद हमारे कुछ पाठक यह जानकर क्षुब्ध हो उठेंगे, कि उन्हीं तैयारियोका प्राचीन नाम "ब्रह्मचर्यका पालन" है। ब्रह्मचर्यका पालन किये बिना गार्हस्थ्य जीवनमें प्रवेश करना युद्ध-शिक्षा प्राप्त किये बिना समर-क्षेत्रमें कूद पड़नेके समान है।

मनुष्यको विवाह किस समय करना चाहिये—सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें-उसे किस अवस्थामें प्रवृत्त होना

चाहिये—इस विवादग्रस्त प्रश्नपर हम इस समय विचार नहीं चलाना चाहते। हम इस समय केवल स्त्री और पुरुषोंकी उस अवस्थाके कर्त्तव्यों पर विचार चलाना चाहते हैं, जिस अवस्थामें उन्हें मजबूरन सन्तानोत्पत्तिके कार्यसे अलग रहना पड़ता है। स्त्रियोंकी कमसे कम तेरह और पुरुषोकी सोलह वर्ष तककी आयु इस अवस्थामें परिगणित की जा सकती है। विवाह हो जाने पर भी वे इस अवस्थामें सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते। प्रकृति प्रायः उन्हें इस समय तक उस महाशक्तिसे वञ्चित रखती है, जिसके द्वारा सन्तानोत्पत्तिका कार्य सम्पादित होता है। यदि कोई इसके विरुद्ध आचरण करता है, तो वह अप्राकृतिक कार्य समझा जाता है। उसकी मूर्खता गिनी जाती है। प्रकृति इसके लिये उसे कठिनसे कठिन दण्ड भी देती है।

यौवनावस्थाके प्रलोभन बहुत ही प्रबल होते हैं। दाम्पत्य-जीवनका अनिर्वचनीय सुख सबको उन्मत्त बना देता है, अतएव हमें भय है, कि यदि हम अपने पाठकोंको यौवनकालमें आत्म-संयम जैसी कोई शिक्षा दें, तो शायद वे उसे अव्यवहारिक बताकर ठुकरा देंगे। जिस समय शरीरके प्रत्येक अंगसे स्वर्गीय सुखोंका अनुभव प्राप्त

किया जा सकता है, नेत्रों द्वारा ललनाओंके सौन्दर्यका अवलोकन, श्रवणों द्वारा उनके मधुर वचनोंका श्रवण और करों द्वारा उनके कोमलाङ्गोंका स्पर्श किया जा सकता है, जिस समय मानव-मन प्रत्येक क्षण इन कार्यों-के लिये लालायित बना रहता है, उस समय कोई उन बातोंपर ध्यान नहीं दे सकता, जो उन्हें इन सुखोंसे वञ्चित रखती हों, किन्तु जिस समय इन इन्द्रिय-सुखोंकी अनुभूति नहीं होती, जिस समय मानव-मनकी यह समस्त इच्छायें सुप्तावस्थामें पड़ी रहती हैं, जिस समय इच्छा करने पर भी मनुष्यको इन सब बातोंमें मजा नहीं आता, उस समय यदि उसके भावी-जीवनको सुखमय बनानेवाली कुछ बातें बतलायी जायें तो हम नहीं समझते, कि उसे कोई विशेष आपत्ति हो, किंवा वह उनकी जानबूझ कर उपेक्षा करे।

स्त्रियाँ तेरहसे पन्द्रह वर्ष तककी अवस्थामें और पुरुष पन्द्रहसे अठारह वर्षकी तक की अवस्थामें किशोरा-वस्था अतिक्रमण कर यौवनकी सीमामें पदार्पण करते हैं। इसी समयसे उनके हृदयमें कामोद्रेक होता है, इसी समयसे उनकी इन्द्रियां चञ्चल बनती हैं और इसी समयसे वे इन्द्रिय-जनित सुखोंको उपभोग करनेके लिये उत्कण्ठित

होते हैं। इसके पहले उनके हृदयमें यह सब बातें अधिक जोर नहीं करतीं। अतएव इस अवस्था तक वे उन नियमोंका सहर्ष पालन कर सकते है, जो उनके भावी-जीवनको सुखमय बनानेमें साधनभूत सिद्ध हो सकें। इन नियमोंका पालन ही भावी-जीवनकी तैयारी है। इन नियमोंका पालन ही मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेकी सबसे पहली साधना है। इन नियमोंका पालन ही स्त्री-पुरुषोंको इस योग्य बनाता है, कि वे अपना जीवन चैनसे बिता सकें।

भावी-जीवन चैनसे बितानेके लिये शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका बढ़ाना नितान्त आवश्यक है। ब्रह्मचर्य और यमनियम आदिका पालन करनेसे यह दोनों शक्तियां बढ़ती हैं। इससे गार्हस्थ्य-जीवनमें प्रवेश करने पर न केवल मनचाही सन्तान ही उत्पन्न करनेमें सहायता मिलती है, बल्कि संसारके उन समस्त कार्यों और उन समस्त प्रवृत्तिओंमें सफलता मिलती है, जो श्रम किंवा बुद्धि साध्य होती हैं। माता-पिताकी शारीरिक शक्ति चढ़ी बढ़ी रहनेसे सन्तानको शारीरिक शक्ति विरासतमें मिलती है और वह देखनेमें हृष्टपुष्ट, सुन्दर, सुडौल तथा निरोगी होती है। इसी तरह मानसिक शक्ति सम्पन्न

माता पिताओंके बच्चे मेधावी, बुद्धिमान और सदाचारी होते हैं। अतएव मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंके लिये शारीरिक और मानसिक शक्तिका सम्पादन नितान्त आवश्यक है। साथ ही इस अवस्थामें विद्याध्ययन भी अनिवार्य है। विद्याध्ययनसे न केवल मानसिक शक्तियोंका ही विकास होता है, बल्कि भविष्यमें अर्थोंपार्जनमें भी सहायता मिलती है। अर्थोंपार्जन मनुष्यमात्रके लिये कितना उपयोगी हैं, वह शायद ही किसीको बतलानेकी आवश्यकता हो। बिना अर्थके सारा मजा किरकिरा हो जाता है। न जीनेमें ही मजा आता है, न सन्तानोत्पतिमें ही तबियत लगती है। संसारकी समस्त बातें निरानन्दमय और जीवन भार रूप मालूम होने लगता है। निराशा, उद्वेग और खेदसे हृदय पूरित हो जाता है। यह कहना व्यर्थ है, कि संसारमें कोई भी मनुष्य इस अवस्थाको पसन्द नहीं कर सकता। नाना प्रकारके व्यवसाय, कृषि किंवा सेवा-वृत्ति द्वारा धनोपार्जन कर लोग इस अवस्थासे मुक्ति लाभ करते हैं, किन्तु यह सभी कार्य जीवनके आरम्भ कालमें विद्याध्ययन करनेसे सरल हो पड़ते हैं। जो इस अवस्थामें विद्याध्ययन नहीं करता, उसे निःसन्देह भविष्यमें

पश्चात्ताप करते हुए दुःखमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

इस प्रकार गार्हस्थ्य जीवनमें प्रवेश करनेके पहले मनुष्यके लिये जो तैयारियां आवश्यक हैं, वे तीन भागोंमें बांटी जा सकती हैं—(१) शारीरिक शक्ति बढ़ानेकी साधना किंवा शारीरिक तप (२) मानसिक शक्ति बढ़ानेकी साधना किंवा मानसिक तप (३) आर्थिक शक्ति बढ़ानेकी साधना किंवा विद्याकला-सम्पादन। इन तीनोंके सम्बन्धमें ज्ञातव्य बातोंका उल्लेख अब हम नीचे करते हैं।

शारीरिक तप।

(१) ब्रह्मचारीको सूर्योदयके कमसे कम दो घण्टे पहले, भगवानका गुण कीर्त्तन करते हुए, प्रातःकृत्य सम्पादनके लिये अग्रसर होना चाहिये।

(२) मलमूत्रका स्वाभाविक वेग मालूम होनेपर आँख, मुँह, नाक, कान तथा मस्तक कपड़ेसे ढक कर, मौन भावसे मलत्याग करना चाहिये। मलत्यागके स्थान पर अधिक समय बैठना व थूकना मना है। इन सतर्कताओंके कारण मलमूत्रकी दुर्गन्धि लोमकूप तथा इन्द्रिय-

छिद्रों द्वारा शरीरमें प्रवेश नहीं करती, फलतः कोई रोग नहीं होता। रास्तेमें, राखमें, गोशालामें, जोते हुए खेतमें श्मशानमें, ईंटोंके ढेरमें, पुराने देवालयमें, चिउँटियोंके निवासस्थानमें, जन्तुपूर्ण गढ़ेमें, चलते चलते, खड़े होकर किंवा नदीके तटपर मलत्याग करना निषिद्ध है।

(३) मल-त्यागके बाद पहले शुद्ध सूखी मिट्टी मल-मूत्रके द्वारमें लगा, फिर जलसे अच्छी तरह उन अङ्गोंको धो देना चाहिये। पैरके तलवे और हाथ इसी तरह साफ करना चाहिये। नाखूनोंको सींक द्वारा साफ कर देना भी उचित हैं। चिउँटी या चूहेके बिलकी, जलमें पड़ी हुई, शौचावशिष्ट, कीड़े पड़ी, हलसे जोती हुई तथा कीचड़वाली मिट्टी हाथ पैरकी सफाईके काममें लाना मना है।

(४) विशुद्ध सूखी जमी हुई मिट्टी अथवा दन्तशोधनचूर्ण द्वारा धीरे धीरे दांत, जीभकी जड़ इत्यादि अच्छी तरह साफ करने चाहिये। जीभी द्वारा भी जीभ साफ की जा सकती है। किन्तु इस अवस्थामें दतून करना मना हैं। दतूनसे दांतकी कोमल जड़ें कट जाती हैं। प्रौढ़ावस्थामें मसूढ़े मजबूत हो जानेपर दतून करनेसे कोई हानि नहीं होती।

(५) शौचादिसे निवृत्त हो व्यायाम करना चाहिये। हाथ पैरोंका सञ्चालन, आसनोंका अभ्यास, मिट्टी कोड़ना, साग सब्जी लगाना, तेजीसे चलना, डण्ड बैठक करना, कुश्ती लड़ना आदि स्वास्थ्यवर्धक व्यायाम हैं। किन्तु यह व्यायाम बलके आधे परिमाणमें ही करने चाहिये। व्यायाम करते करते जब पसीना आ जाय और सांस जोरमें चलने लगे, तब समझना चाहिये, कि अर्धबलके परिमाणमें व्यायाम हो चुका। व्यायामसे शरीरकी दृढ़ता और बलकी वृद्धि होती है। वायु, पित्त और कफ समान अवस्थामें रहते हैं, मन प्रफुल्ल रहता है, मस्तिष्क स्वच्छ रहता है और तेज, उत्साह, कर्मपटुता, स्थिरता, कष्ट-सहिष्णुता, आत्म-निर्भरता, संयम, उदारता प्रभृति नाना प्रकारकी दैहिक और मानसिक शक्तिका विकास होता है।

रक्त पित्त-रोगी, शोष रोगी, श्वास, कास और क्षत रोगी, अजीर्ण रोगी और क्षुधार्त मनुष्यके लिये व्यायाम निषिद्ध है। भोजनके बाद भी व्यायाम करना मना है। घरकी सफाई, बागवानी, गोपालन आदि श्रमसाध्य कार्योंसे भी व्यायामका बहुत कुछ काम निकल जाता है। अतएव व्यायाम न हो सके तो ऐसे काम भी सहर्ष किये जा

सकते हैं। व्यायामके बाद कुछ समय तक विश्राम करना चाहिये, जिससे पसीना सूख जाय, किन्तु ध्यान रहे, व्यायामके बाद एकाएक चुप होकर बैठना मना है। इससे तेजीसे दौड़ता हुआ रक्त एकाएक बाधा पाकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न कर देता है।

(६) विश्रामके बाद सूर्योदयके कमसे कम एक घण्टा पहले ब्रह्ममुहूर्तमें प्रातः स्नान करना चाहिये। पासमें यदि जलाशय न हो, तो रात्रिमें जल भर रखना चाहिये और उसीसे स्नान करना चाहिये। ब्रह्मचर्यावस्थामें तेल लगाना मना है, किन्तु खास खास अवस्थाओंमें यह कार्य किया जा सकता है। जहाँ मेलेरिया या प्लेग फैला हो, जो स्थान वात प्रधान हो वहाँ खालिस सरसोंका तेल मालिश करनेसे स्वास्थ्य सुधरता है।

स्नानसे लोमकूप परिष्कार होते है, थकावट दूर होती है। शरीरमें बल बढ़कर शुक्र ओज धातुमें परिणत होता है। बीच बीचमें शुद्ध मिट्टी, गोमय, सोडा, बेसन और खली इत्यादिसे माथा मलना और शरीर परिष्कार कर डालना चाहिये। लोमकूप बन्द होनेपर शरीरमें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। ज्वर, सर्दी, खांसी या अजीर्ण रोग होनेपर स्नान न करना चाहिये।

(७) प्रातः स्नानके बाद शुद्ध स्थानमें, कुशासन पर स्वस्तिकासनसे बैठ कर सरल मनसे भक्ति सहित भगवानकी आराधना करनी चाहिये।

(८) उपासनाके बाद त्रिफलाका जल, भिंगोया हुआ कच्चा मूँग या अदरख सेंधा नमकके साथ खाना चाहिये। इसके बाद दूध या हलवा अथवा थोड़ी सी रोटी मक्खन व चीनीके साथ खानी चाहिये।

(६) जलपानके बाद विद्यार्थीको पद्मासन या स्वस्तिकासनसे सीधी गर्दन कर बैठकर, एकान्तमें मनोयोग पूर्वक विद्याध्ययन करना चाहिये।

कुशासनपर बैठना ही अच्छा है, वह यदि न मिले तो शतरंजी या कम्बल पर कपड़ा बिछा कर बैठना चाहिये। आसन पर सीधे बैंठ, सामने एक छोटा टूल या डेक्सपर पुस्तक रखकर पढ़ना चाहिये। कुर्सीपर बैठनेसे, शरीरके निचले भागमें—कमरसे पैरतक रक्तका चलाचल अच्छी तरह नहीं होता। पढ़नेके समय टेढ़े होकर बैठनेसे, फुसफुसकी क्रिया ठीक ठीक नहीं रहती और मेरुदण्डमें मज्जाका प्रवाह बन्द होकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। पढ़नेके समय किसीसे बात न करनी चाहिये।

पढ़नेवाला कमरा साफ सुथरा रहना बहुत आवश्यक

है और यहां अच्छी हवाका रहना भी ज़रूरी है। इस कमरेमें विख्यात विद्वानोंकी मूर्त्ति रहनी चाहिये। विद्यार्थियोंको सदा इस कमरेमें धूप, धोना आदि जलाना चाहिये, झाड़ू देना चाहिये, गोबरसे लीपना चाहिये और उसे सदा स्वच्छ और सजाया हुआ रखना चाहिये। इस पाठगृहमें कभी कोई दूसरी बात न करनी चाहिये। अध्ययन समाप्त होनेपर फिर स्नान करना अथवा सिर धो डालना चाहिये, नहीं तो माथेमें दर्द हो सकता है।

(१०) माध्यान्हिक स्नान और उपासनाके बाद दोनों हाथ पैर, आँखें, मुँह और कान ठण्डे पानीसे धोकर पोंछ डालना चाहिये और सानन्द चित्तसे, पवित्र स्थानमें, उपयुक्त आसनपर बैठ, भक्तिपूर्ण हृदयसे; भोजन करना चाहिये।

(११) विद्यार्थीका भोजन सात्विक, शुद्ध और शक्तिवर्द्धक होना चाहिये। चावल, दूध, फल, कन्दमूल आदि पदार्थोंको भोजनमें प्रधानता देनी चाहिये। मांस मछली, प्याज, लहसुन, नशीले पदार्थ, सरसोंका तेल, अधिक खटाई और अधिक मिठाई खाना मना है। राजसिक और तामसिक भोजन करनेसे चित्तमें चञ्चलता उत्पन्न होती है फलतः शरीर और मन दोनों ही दुर्बल हो जाते है

क्योंकि शरीरसे मनका घनिष्ट सम्बन्ध है। इसी तरह किसीके जूठे पदार्थ भी न खाना चाहिये। नित्य ठीक समय पर आहार और जलपान करना चाहिये। जब तब भोजन करनेसे परिपाक यन्त्रके काममें बाधा पड़ती है।

जिस समय दाहिनी नाकसे सांस चलती हो, उस समय भोजन या जलपान करना स्वास्थ्यवर्द्धक हैं। यदि बाईं ओरसे सांस चलती हो, तो बाईं बगलको घुटनेसे दबा कर कुछ क्षण बैठनेसे सांस दाहिनी नाकसे चलने लगती है। यह योग-शास्त्रका प्रयोग है। भोजन करते समय गला व अन्ननाली सीधी रहनी चाहिये और भोजन खूब चिबाकर करना चाहिये। भोजनके बाद मुँह और दांत साफ पानीसे अच्छी तरह साफ कर देने चाहिये। इसके बाद हाथ पैर, मुँह, आँखें इत्यादि धोकर पोंछ डालने चाहिये।

(१२) भोजनके बाद मुख-शुद्धिके लिये हड़, अजवायन या आँवला काममें लाना चाहिये। इन्हे चबाकर इनका रस पीनेसे मुख शुद्धिके साथ साथ स्वास्थ्य-वृद्धि भी होती है। पान या सुपारीका व्यवहार करना मना है। भोजनके बाद कुछ देरतक आसन बांधकर विश्राम करना चाहिये—लेटकर नहीं।

(१३) विद्यार्थीको अपनी पोशाकके सम्बन्धमें भी विशेष सतर्क रहना चाहिये। दूसरोंका व्यवहार किया हुआ छाता, खड़ाऊँ, कपड़े, कूर्त्ते, चादर, रूमाल इत्यादि कभी व्यवहारमें न लाना चाहिये। क्योंकि एक शरीरका संक्रामक विष, पहिने हुए वस्त्रके व्यवहारसे, दूसरेके शरीरमें घुसकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करता है। देह रक्षाके लिये पोशाक की आवश्यकता हैं। विलासिताके लिये नहीं। इसीलिये विद्यार्थियोंको वृथा बहुतसे वस्त्र इत्यादि व्यवहार न करना चाहिये। धनी सन्तान होनेपर भी छात्र-जीवनमें नितान्त आवश्यक वस्त्रोंसे ही सन्तुष्ट रहना चाहिये। नहीं तो चित्त चञ्चल हो, व्रतमें विघ्न पड़ता है। सुगन्धित पदार्थ एसेन्स आदि कभी व्यवहार न करना चाहिये।

(१४) विश्रामके बाद पाठशाला या घरमें करीब चार बजेतक विद्याध्ययन करना चाहियो। शामको फिर सुबहकी तरह व्यायाम, परिभ्रमण और बागवानी आदि कार्य्य करने चाहिये। व्यायामके बाद पर्य्याप्त बिश्राम और विश्रामके बाद सूर्यास्तके समय पुनः स्नान करना चाहिये। स्नानके बाद उपासना और भूख लगी हो, तो डेढ़ घण्टा रात्रि व्यतीत होनेपर भोजन भी किया जा सकता है।

(१५) इसके बाद मुख-शुद्धि और विश्राम करना चाहिये। दिन भरके कामकी आलोचना करनी चाहिये। कौन कौन काम हो गये, कौन बाकी रह गये, आदि बातों पर अच्छी तरह विचार करना चाहिये।

(१६) इसके बाद भक्तिपूर्ण हृदयसे, अपने इष्ट देवताको सम्पूर्ण आत्म-समर्पण कर, सानन्द चित्तसे सोना चाहिये। बैठे बैठे सोना विशेष उपकारी है; इससे शरीरमें आलस्य नहीं भरता; परन्तु विश्राम हो जाता है। कुशासन पर शयन करना अच्छा है। कुशासन न मिले तो शतरञ्जी, चटाई या कम्बल बिछाकर सोना चाहिये। दूसरेकी व्यवहार की हुई शय्यापर कभी न सोना चाहिये। बहुत शुद्ध और निर्जन स्थानमें सोना चाहिये। सदा और सब जगह अकेले सोना चाहिये। तोशक, गद्दी, लेहाफ या तकियाकी आवश्यकता नहीं। मसहरी व्यवहार करिये। एक बिछावन पर दो तीन मनुष्योंको एकत्र न सोना चाहिये। इससे स्वास्थ्य बिगड़ता है। शयनगृह शुद्ध वायुसे पूर्ण रहना चाहिये।

सन्ध्याके बादसे छः घण्टे सोना चाहिये। इस समय सोना स्वाथ्यकर है। रात्रिके प्रथम भागका एक घण्टाका सोना पिछली रातकी दो घण्टेकी नींदके समान है।

दिनमें सोना एकदम मना है। रोग होने या रातमें जागनेके कारण अवस्थानुसार उसकी व्यवस्था हो सकती है।

(१७) नींदसे उठकर ठण्डे पानीसे आँख मुँह धो पढ़नेको वैठा चाहिये। हरएक गृहस्थके मकानमें रात्रिके प्रथम भागमें बहुत कुछ गोलमाल रहता है। विद्यार्थियों-को इस समय सो जाना चाहिये :और पिछली रातमें जब सब सोते रहें, तब उठकर पढ़ना चाहिये। पढ़कर फिर न सोना चाहिये। दूसरे दिनके आवश्यक काम इसी समय लिख रखने चाहिये।

विद्यार्थी नित्य रात्रिके समय थोड़ा गौका घी (सेंधा नमक और गोलमिर्चके साथ) गर्म कर सेवन करे। नित्य सवेरे नीम, बेल और तुलसीका पत्ता अन्दाजसे चबाकर खाय। माथेके केश और नख छोटे रक्खें। दाढ़ी मूँछें मुड़ा देनी चाहिये। भूख मालूम हुए बिना भोजन न करें, तेज झरनेके जलमें स्नान न करें। नख न खोटें, दाँतसे दाँत न कटकटायें। एकादशीके दिन उपवास करें और पूर्णिमा तथा अमावस्याको अन्न न खायें। उपवाससे रक्तका जलीय अंश घटकर रक्त :शुद्ध और गाढ़ा होता है और पाकस्थलीको भी विश्राम मिलता है। विद्यार्थियों

को इन सब बातोंपर ध्यान रखते हुए अपनी जीवनचर्या निश्चित कर लेनी चाहिये। यही शारीरिक तप है। इसका अवलम्बन करनेसे विद्यार्थीके शारीरिक स्वास्थ्यकी वृद्धि होगी और युवावस्थामें पदार्पण करने पर वह अपनेको मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये सर्वथा उपयुक्त पायेगा।

मानसिक तप।

जिस प्रकार शारीरिक शक्तियोंका विकास करनेके लिये विद्यार्थीको ब्रह्मचर्य धारणपूर्वक शारीरिक तप करना पड़ता है, उसी तरह मानसिक शक्तियोंका विकास करनेके लिये मानसिक तप किंवा यमनियमका पालन करना पड़ता है। जिस प्रकार शरीर और मनका घनिष्ट सम्बन्ध है उसी प्रकार ब्रह्मचर्य और यम नियममें घनिष्टता है। जिस प्रकार मानसिक शुद्धताके बिना शारीरिक शुद्धता नहीं रक्खी जा सकती उसी तरह यम नियमके बिना ब्रह्मचर्य अखण्डित नहीं रक्खा जा सकता।

यम पाँच हैं—(१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य और (५) अपरिग्रह। नियम भी पांच है यथा—(१) शौच (२) सन्तोष (३) तप (४)

स्वाध्याय और (५) ईश्वर-प्रणिधान। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

अहिंसा—कायमनोवाक्यसे किसीको कष्ट न देना—अहिंसा है। विद्यार्थी बड़े यत्नसे दूसरोंको कष्ट देनेसे अपनेको बचाय। चित्त हिंसा शून्य होनेपर, दूसरोंकी बात दूर रहे, हिंस्रजन्तु भी उस व्यक्तिकी हिंसा किसी तरह नहीं कर सकते।

सत्य—कायमनोवाक्यसे दूसरोंके हितके लिये जो सरल वाक्यका प्रयोग या काम लिया जाय—वही सत्य साधन है। स्वप्नमें भी असरल या मिथ्या भावकी छाया हृदयमें स्थान न पाये। विद्यार्थियोंके सत्यपरायण होनेपर उनके मनमें कभी मिथ्या-भाव उदय न होगा। ऐसे ही मनुष्योंका वाक्य सिद्ध हो जाता है। वाक्-संयम किये बिना और अनुचित कर्मको त्यागे बिना सत्यकी साधना नही होती।

अस्तेय—कायमनोवाक्यसे दूसरोंका द्रव्य ले: लेनेकी इच्छा जिससे मनमें भी न आये—छात्र इसी विषयकी साधना करें।

ब्रह्मचर्य—कायमनोवाक्यसे वीर्य धारणकी चेष्टा ब्रह्मचर्य है। वीर्यका निरोध कर उद्ध्वरेता होनेपर छात्र-

गण न केवल महा पुरुष ही हो सकते हैं, बल्कि देवत्व तक प्राप्त कर सकते हैं।

अपरिग्रह—कायमनोवाक्यसे कभी किसी अभावका न मालूम होना। विषय-भोग त्यागनेसे ही अभावका मालूम होना कम हो जायगा। यह अभाव-बोध मनसे एकदम निकल जानेपर, विद्यार्थी जीवनमें उन्नति और अवनतिका कारण विचार कर उन्नतिके पथपर अग्रसर होनेमें समर्थ होंगे।

शौच—दो प्रकारके हैं। वाह्यशौच या शारीरिक शुद्धि-विधान और मानसिक शौच या मनका मालिन्य दूर करना। इससे अनेक पापोंसे रक्षा मिल सकती है।

सन्तोष—समस्त विषयोंकी दुराकांक्षा त्याग देनी होगी। भोग विलास, यश आदिकी आकांक्षा हृदयमें स्थान न पाये। अपना कर्त्तव्य सम्पादन कर स्थिर भावसे जीवन पथपर अग्रसर होना पड़ेगा। सन्तुष्ट चित्त पुरुष एक अनिर्वचनीय सुख अनुभव करते हैं। कामना शून्य होनेवालोंका चित्त स्थिर भाव धारण करता है।

तपस्या—नियम, उपवास इत्यादि द्वारा शारीरिक तप साधन और प्रत्याहारका अभ्यास अर्थात् मनोवेग धारण कर मानसिक तप साधन करना पड़ता है। इस

विषयमें कृतकार्य होनेपर मनुष्य सूक्ष्म विषयोंको अनुभव करनेमें समर्थ होता है।

स्वाध्याय—षड़ङ्गवेद अध्ययन और ऋषि ज्ञान भाण्डार आयत्व करना ही स्वाध्याय है। इसके साथ ही जगतका ज्ञान भाण्डार भी यथासाध्य आयत्त करना होगा। इससे विद्यार्थी ज्ञानवान होंगे और इष्ट-लाभमें समर्थ होंगे।

ईश्वर प्रणिधान—सरल भक्तिके साथ भगवानकी आराधना ही ईश्वर प्रणिधान है। इससे ब्रह्मचर्यमें सिद्धि प्राप्त होती है और मनुष्य ईश्वरको हृदयमें धारण करनेमें समर्थ होता है।

यम और नियमको साधन करनेपर छात्रगण मनः संयम कर सकेंगे। मन जीत लेनेपर सब इन्द्रियाँ जय हो जायँगी। फलतः किशोरावस्थामें जो अधःपात होता है वह न होकर शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका विकास होगा और यही शक्तियाँ अपने माता पिता द्वारा विरासतमें पाकर उनकी सन्तान हृष्ट-पुष्ट, निरोग सदाचारी, सद्गुण सम्पन्न तथा आदर्श होकर उनका व अपने देशका मुख उज्वल करेगी।

सदाचार और विद्यार्थियोंके कर्त्तव्यका दिग्दर्शन कराते

हुए हमारे कतिपय ऋषि-मुनियोंने बहुत ही शिक्षाप्रद बातें अंकित की हैं। अपने पाठकोंके हितार्थ हम यहां आत्रेय अग्निवेश मुनिके उपदेशोंको अंकित कर देना उचित समझते हैं। उन्होंने ब्रह्मचारियोंके लिये निम्नलिखित बातें अङ्कित की हैं :—

विद्यार्थियोंको विनय, बुद्धि और विद्यामें जो बड़े हैं, जो वयोवृद्ध, सिद्ध और आचार्य हैं, उनके पास जाना और उनका सम्मान करना चाहिये। जो स्वस्थ चित्त, मिष्ट-भाषी और सब जीवोंके प्रति शान्त तथा शुद्धाचारी, सन्मार्ग प्रदर्शक, पुण्यश्रवण और पुण्य-दर्शन हैं, उनका सहवास करना चाहिये।

निश्चिन्त, निर्भीक, लज्जाशील, उत्साही, दक्ष, क्षमा-वान, आस्तिक और प्रसन्नमना होना चाहिये। सब प्राणियोंपर बन्धुभाव दिखाना चाहिये।

अतिथियोंकी सेवा करनी चाहिये। आगन्तुक पुरुषसे पहिले बात करनी चाहिये। मिष्टभाषी होना चाहिये। सदा साधुवेश होना चाहिये। सदा मङ्गल आचरण करना चाहिये। सदा आत्म प्रकृतिको स्मरण करना चाहिये। समय देखकर हितकर और परिमित तथा मधुर अर्थयुक्त बातें करनी चाहिये। प्रशस्त गुणदर्शी

हो, दोष परित्याग कर गुण ग्रहण करना चाहिये। अपने मनुष्योंके साथ वास करना चाहिये।

पापाचारी, पापालापी, पापमना, मिथ्यावादी, कलह-प्रिय, लोभी, परस्त्री-कातर, शठ, परनिन्दा-परायण, निर्दय और धर्मत्यागी लोगोंको त्याग देना चाहिये।

पूज्य मनुष्योंकी छायाको पैरों से न दबाना चाहिये। उनकी ओर मुँह कर थूकना अथवा मल-मूत्र न त्याग करना चाहिये।

अधार्मिक या राजद्वेषी मनुष्योंके साथ न रहना चाहिये। पापाचारी मित्र और भृत्यका साथ छोड़ देना चाहिये। अच्छे आदमियोंसे विरोध न करना चाहिये। अनार्यका आश्रय न लेना चाहिये। वालक, वृद्ध, लुब्ध, मूर्ख, क्लिष्ट और क्लीव पुरुषोंके साथ मित्रता न करना चाहिये।

जिस कारणसे किसीकी उन्नति हुई है, उस कारण पर ईर्ष्या करनी चाहिये। किन्तु कारणोंके मूलसे ईर्षा न करनो चाहिये अर्थात् किसीकी उन्नति देखकर उससे द्वेष न करना चाहिये, परन्तु उसकी चेष्टा, यत्न और उद्यमका अनुकरण करना चाहिये। कार्य-सिद्धिसे अत्यन्त आनन्दित और असिद्धिसे अति दुःखित न होना चाहिये।

जो करना था, वह कर चुके यह विचार कर निश्चिन्त न हो जाना चाहिये। कार्य-फल-लाभके सम्बन्धमें हताश हो, उद्यमहीन न होना चाहिये। अत्यन्त दीर्घसूत्री भी न होना चाहिये।

चलनेके समय कमसे कम चार हाथकी दूरी पर दृष्टि रखकर चलना चाहिये। मैला, हड्डी, कांटा, अपवित्र केश, शराब, कूड़ा और खोपड़ी इन पदार्थोंके पास होकर न जाना चाहिये। साँप, दांतवाले जीव, सींगवाले जीव, इनके पाससे न जाना चाहिये। मुँह ढके बिना जँभाई न लेना चाहिये। खाँसना और हँसना भी उचित नहीं। शरीर कुत्सित भावसे फैला या सिकोड़कर कोई कार्य न करना चाहिये। ऊर्द्धजानु होकर देरतक न बैठना चाहिये। शरीर टेढ़ाकर छींकना या सोना न चाहिये।

अत्यन्त साहस, अति जागरण, अति स्नान, अति पान और अति भोजन निषिद्ध है। पूर्वी हवा, सामनेकी धूप, वर्फ और बहुत हवा बचाना चाहिये। मल आदिका वेग होने पर, बिना त्यागे दूसरा काम न करना चाहिये। रात्रिके समय अपरिचित स्थानमें न घूमना चाहिये। संध्याके समय भोजन करना या पढ़ना अथवा सो जाना चाहिये। थकावट मालूम होनेके पहले काम छोड़ बैठना ठीक नहीं।

क्रोधियोंके आगे विनय और डरे हुओंको आश्वासन देना चाहिये। दरिद्रोंपर दया करनी चाहिये। बचन पालन करना चाहिये। दूसरोंके कठोर वाक्यपर सहिष्णुता दिखानी चाहिये। परन्तु स्वयं कठोर न होना चाहिये।

राग द्वेषका कारण त्याग देना चाहिये। वैर करनेकी इच्छा न करनी चाहिये। अधीर और उद्धत न होना चाहिये। क्रोध और हर्ष होने पर उसके अनुसार काम न करना चाहिये। पद पद पर विचार किये विना न चलना चाहिये। वक्र रुचिका अनुसरण न करना चाहिये। किसीको डर न दिखाना चाहिये। किसीका अपमान न करना चाहिये। अपकारीका भी अपकार न करना चाहिये। दूसरोंका अपवाद स्मरण न करना चाहिये। पाप न करना चाहिये। अविश्वास न करना चाहिये। जिसका तिसका विश्वास करना भी ठीक नहीं। जिस तिससे डरना भी न चाहिये। गुप्त बातें प्रकाशित न करनी चाहिये। दूसरोंका भेद भी प्रकट न करना चाहिये। अपरीक्षित विषयमें मन न लगाना चाहिये। चञ्चल मनको और भी अधिक चञ्चल न करना चाहिये। ज्ञानेन्द्रियसे बहुत अधिक काम न लेना चाहिये और

ऐसा कार्य कभी न करना चाहिये जिससे नियमका भङ्ग हो।

महर्षि चरक विद्यार्थीका कर्त्तव्य निर्धारित करते हुए लिखते हैं कि विद्यार्थीको ब्रह्मचर्य और ज्ञान परायण होना चाहिये। दान देना चाहिये। मित्र भावापन्न अर्थात् सब जीवोंके मित्र स्वरूप बनकर जीवन बिताना चाहिये। हर्ष परायण अर्थात् सदा आनन्दित मनसे समय बिताना चाहिये। उपेक्षा परायण अर्थात् मानापमान, जयपराजय सुख दुःख प्रभृतिसे दुःखित न होकर समभाव दिखाना चाहिये और शम-परायण अर्थात् किसी तरह मनकी शान्ति नष्ट न होने देना चाहिये।

बतलाइये, यह उपदेश कितने मूल्यवान हैं। इनके अनुसार आचरण करनेपर मनुष्य निःसन्देह उन शारीरिक और मानसिक शक्तियोंसे सन्पन्न बन सकता है, जो मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेमें प्रधान रूपसे काम करती हैं।

ब्रह्मचर्य ही मनुष्यको प्रकृत कर्त्तव्य परायण शिष्य, पुत्र, भर्त्ता, जनक, गृहकर्त्ता और बन्धुके पदपर बैठाता है। महाभारतमें सनत् सुजातने इसकी महिमा बतलाते हुए धृतराष्ट्रसे कहा था कि "ब्रह्मचर्य ही मनुषत्वका द्वार

है। ब्रह्मचर्य ही चिन्तामणि है। चिन्तामणि जिस तरह आकांक्षित फल देता है, उसी तरह ब्रह्मचर्य जिस किसी आकांक्षासे संयोजित होता है, वही आकांक्षित वस्तु प्रदान करता है। ब्रह्मचर्यका यह रूप जान कर ही देवगणने ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन किया था। जो इस तरह ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करते हैं, वे सब तरहसे परिवर्द्धित हो, बहुपुत्र और प्रतिष्ठा प्राप्त किया करते हैं। नाना दिशाओंके देशमें रहनेवाले उसे धन देते हैं और कितने ही उसके दृष्टान्त अनुसार ब्रह्मचर्य अवलम्बन करते रहते हैं। ब्रह्मचर्यके प्रभावसे देवताओंने देवत्व और मनीषि महर्षिगणने ब्रह्मलोक प्राप्त किया है। जिन्होंने तपोनुष्ठान परायण हो, ब्रह्मचर्यका आश्रय लिया है उनका शरीर पवित्र है। वे राग द्वेषके त्यागमें समर्थ होते हैं और अन्तकालमेंमृत्युको जीत लेते हैं।"

पाठकोंको सनत् सुजातके यह वचन अपने हृदयपट पर अच्छी तरह अङ्कित कर रखने चाहिये और यह विश्वास पूर्वक मान लेना चाहिये, कि यदि मनुष्य यथा नियम ब्रह्मचर्यका पालन करे, तो वह केवल उसीके द्वारा मनचाही सन्तान प्राप्त कर सकता है। उसकी शारीरिक और मानसिक शुद्धता, उसके आचार और विचार आप

ही आप उसकी सन्तानको प्रभावित कर उसे सर्वोत्कृष्ट बना देंगे। ऐसे मनुष्यके लिये सन्तति-शास्त्रके अन्यान्य नियमोंका ज्ञान अधिक महत्व नहीं रखता।

अस्तु, ब्रह्मचर्यकी महिमा पर्याप्त बतलाई जा चुकी। ब्रह्मचारी किंवा विद्यार्थीके कर्त्तव्य पर भी हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके। यही भावी-जीवनकी तैयारी है, किन्तु यह तैयारी तबतक अधूरी ही कही जायगी, जबतक एक मनुष्य अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंके विकासके साथ विद्याकला सम्पादन द्वारा अपनेको धनोपार्जन करने योग्य न बना ले। बिना इसके संसारमें शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका विकास निरर्थक ही सिद्ध होता है। मनुष्य चाहे जितना सज्जन, चाहे जितना सदाचारी, चाहे जितना सद्गुणी और चाहे जितना हृष्टपुष्ट हो, किन्तु यदि वह अपनी व अपने परिवार की धनोपार्जन द्वारा उदरपूर्त्ति नहीं कर सकता, तो वह धराधाममें भार रूप ही समझा जाता है। परलोकमें उसे भले ही अच्छेसे अच्छा स्थान मिले, किन्तु इस लोकमें उसके लिये कोई स्थान नहीं। इसलिये विद्याध्ययन भी ब्रह्मचर्यका एक अङ्ग माना गया है और इसीलिये भावी जीवनकी अन्यान्य तैयारियोंके साथ साथ अपने

पाठकोंको इसका ध्यान भी दिला देना हम उचित समझते हैं।

विद्याकला-सम्पादन।

मनुष्यको अपने प्रारम्भिक जीवनमें ब्रह्मचर्यके साथ साथ विद्याध्ययन भी करना चाहिये। हम पहले ही कह चुके हैं, कि बिना इसके भावी-जीवन निरस और भाररूप हो जाता है। परन्तु विद्यार्थियोंको इस अवस्थामें क्या सीखना चाहिये, यह प्रश्न बहुत ही जटिल है। प्राचीनकालमें यहां विद्यार्थियोंको जिन विषयोंकी शिक्षा दी जाती थी, उनका आज कहीं पता भी नहीं है। इस समय हमारे देशमें पाश्चात्य देशोंकी शिक्षा प्रणाली आदर्श मानी जाती है और उसीका यहाँ प्रचार है। उस शिक्षाके प्रतापसे यहां प्रतिवर्ष भिन्न भिन्न उपाधिधारी हजारोंकी संख्यामें विद्यालयोंसे निकलते हैं और वर्षों तक जीविकाकी खोजमें कालयापन करनेके बाद बहुधा किसी आफिस या दफ्तरमें नौकरी कर लेते हैं। यहींसे उनके जीवनका विकास रुक जाता है। वे फिर शायद ही नौकरी छोड़कर कोई स्वतन्त्र व्यवसाय करते हैं। इसमें उनका कोई दोष नहीं। आधुनिक शिक्षा ही ऐसी है। इससे

दासताके सिवा और कोई शिक्षा ही नहीं मिलती। इसीलिये तो महात्मा गान्धीने स्कूल और कालेजोंको क्लर्क उत्पन्न करनेवाली फैक्टरियोंके नामसे सम्बोधित किया है।

प्राचीनकालमें यहाँ विद्यार्थियोंको भिन्न भिन्न विद्या और कलाओंकी शिक्षा दी जाती थी। विद्याके अठारह अङ्ग माने जाते थे। यथा—(१) शिक्षा (२) कल्प (३) व्याकरण (४) निरुक्त (५) ज्योतिष (६) छन्द (७) ऋग्वेद (८) यजुर्वेद (९) सामवेद (१०) अथर्ववेद (११) मीमांसा (१२) न्याय (१३) धर्म-शास्त्र (१४) पुराण (१५) आयुर्वेद (१६) धनुर्वेद (१७) गन्धर्ववेद और (१८) अर्थ-शास्त्र।

कहना व्यर्थ है, कि इन विद्याओंमें संसारकी समस्त विद्याओंका समावेश हो जाता था। इन्हें जान लेने पर विद्यार्थीके लिये कुछ जानना शेष न रहता था। इन विद्याओंके साथ उन्हें विविध कलाओंका भी शिक्षण दिया जाता था। इससे उन्हें न केवल जीविका ही उपार्जन करनेमें सहायता मिलती थी, बल्कि उनका गार्हस्थ्य जीवन भी अधिक आनन्दसे कटता था। यह कलायें दाम्पत्य-जीवनके लिये भी उतनी ही उपयोगी प्रमाणित होती थीं, जितनी सामाजिक जीवनके लिये। इससे

स्त्री-पुरुष आवश्यकतानुसार एक दूसरेका मनोरञ्जन भी कर सकते थे। यह कलायें ६४ थीं। इनके नाम इस प्रकार है :—

(१) गीत (२) वाद्य (३) नृत्य (४) आलेख्य (५) विशेषकछेद्य (६) तण्डुल-कुसुमवलि-विकार (७) पुष्पास्तरण (८) दशनवसनाङ्ग राग (९) मणि-भूमिका-कर्म (१०) शयन-रचना (११) उदकवाद्य (१२) उदकाघात (१३) चित्रयोग (१४) माल्य-गथन-विकल्प (१५) शेखरकापाड़-योजन (१६) नेपथ्य-प्रयोग (१७) कर्णपत्र-भङ्ग (१८) गन्धयुक्ति (१९) भूषण-योजन (२०) इन्द्रजाल (२१) कौचुमार योग (२२) हस्त-लाघव (२३) विचित्र शाकयूष भक्ष्य विकार क्रिया (२४) सूचीवाण कर्म (२५) सूत्रकीड़ा (२६) वीणा डमरुक वाद्य (२७) प्रहेलिका (२८) प्रतिमाला (२९) दुर्वाचक योग (३०) पुस्तक वाचन (३१) नाटकाख्यायिका दर्शन (३२) काव्य समस्या पूरण (३३) पट्टिकावेत्र वाण विकल्प (३४) तक्ष कर्म (३५) तक्षण कर्म (३६) वास्तु विद्या (३७) रूप्यरत्न परीक्षा (३८) धातुवाद (३९) मणिरागाकर ज्ञान (४०) वृक्षायुर्वेद योग (४१) मेघ कक्कुट लावक युद्ध विधि

स्त्री-पुरुष आवश्यकतानुसार एक दूसरेका मनोरञ्जन भी कर सकते थे। यह कलायें ६४ थीं। इनके नाम इस प्रकार है :—

(१) गीत (२) वाद्य (३) नृत्य (४) आलेख्य (५) विशेषकछेद्य (६) तण्डुल-कुसुमवलि-विकार (७) पुष्पास्तरण (८) दशनवसनाङ्ग राग (९) मणि-भूमिका-कर्म (१०) शयन-रचना (११) उदकवाद्य (१२) उदकाघात (१३) चित्रयोग (१४) माल्य-गथन-विकल्प (१५) शेखरकापाड़-योजन (१६) नेपथ्य-प्रयोग (१७) कर्णपत्र-भङ्ग (१८) गन्धयुक्ति (१९) भूषण-योजन (२०) इन्द्रजाल (२१) कौचुमार योग (२२) हस्त-लाघव (२३) विचित्र शाकयूष भक्ष्य विकार क्रिया (२४) सूचीवाण कर्म (२५) सूत्रक्रीड़ा (२६) वीणा डमरुक वाद्य (२७) प्रहेलिका (२८) प्रतिमाला (२९) दुर्वाचक योग (३०) पुस्तक वाचन (३१) नाटकाख्यायिका दर्शन (३२) काव्य समस्या पूरण (३३) पट्टिकावेत्र वाण विकल्प (३४) तक्ष कर्म (३५) तक्षण कर्म (३६) वास्तु विद्या (३७) रूप्यरत्न परीक्षा (३८) धातुवाद (३९) मणिरागाकर ज्ञान (४०) वृक्षायुर्वेद योग (४१) मेघ कक्कुट लावक युद्ध विधि

(४२) शुक सारिका प्रलापन (४३) उत्साहन संवाहन व केश-मर्द्दन (४४) अक्षर मुष्टिका कथन (४५) म्लेच्छित विकल्प (४६) देश-भाषा विज्ञान (४७) पुष्पशकटिका (४८) निमित्त-ज्ञान (४९) यन्त्र-मातृका (५०) धारण-मातृका (५१) संपाठ्य (५२) मानसी (५३) काव्य-क्रिया (५४) अभिधान कोष (५५) छन्दोज्ञान (५६) क्रिया कल्प (५७) छलितक-योग (५८) वस्त्र-गोपन (५९) द्यूत विशेष (६०) आकर्ष-क्रीड़ा (६१) बाल-क्रीड़नक (६२) वैनयिकी-विद्या (६३) वैजयिकी-विद्या (६४) वैयामिकी-विद्या।

यही चौसठ कलायें हैं।* यह स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये समान उपयोगी हैं। अतएव प्राचीनकालमें दोनोंको इनकी शिक्षा दी जाती थी। आधुनिक शिक्षामें इन विद्या कलाओंके लिये कहीं स्थान भी नहीं है। इससे हमें क्या लाभ या हानि होती है; यह हमारा विचारणीय विषय नहीं। हम तो केवल यहां प्राचीन और

---

* स्थानाभावके कारण इन कलाओंके सम्बन्धमें हम कुछ अधिक नहीं लिख सकते। जिन्हें विशेष जाननेकी इच्छा हो उन्हें हमारे काम-विज्ञानका तृतीय परिच्छेद पढ़ना चाहिये।

स्त्री-पुरुष आवश्यकतानुसार एक दूसरेका मनोरञ्जन भी कर सकते थे। यह कलायें ६४ थीं। इनके नाम इस प्रकार है :—

(१) गीत (२) वाद्य (३) नृत्य (४) आलेख्य (५) विशेषकछेद्य (६) तण्डुल-कुसुमवलि-विकार (७) पुष्पास्तरण (८) दशनवसनाङ्ग राग (९) मणि-भूमिका-कर्म (१०) शयन-रचना (११) उदकवाद्य (१२) उदकाघात (१३) चित्रयोग (१४) माल्य-गथन-विकल्प (१५) शेखरकापाड़-योजन (१६) नेपथ्य-प्रयोग (१७) कर्णपत्र-भङ्ग (१८) गन्धयुक्ति (१९) भूषण-योजन (२०) इन्द्रजाल (२१) कौचुमार योग (२२) हस्त-लाघव (२३) विचित्र शाकयूष भक्ष्य विकार क्रिया (२४) सूचीवाण कर्म (२५) सूत्रकीड़ा (२६) वीणा डमरुक वाद्य (२७) प्रहेलिका (२८) प्रतिमाला (२९) दुर्वाचक योग (३०) पुस्तक वाचन (३१) नाटकाख्यायिका दर्शन (३२) काव्य समस्या पूरण (३३) पट्टिकावेत्र वाण विकल्प (३४) तक्ष कर्म (३५) तक्षण कर्म (३६) वास्तु विद्या (३७) रूप्यरत्न परीक्षा (३८) धातुवाद (३९) मणिरागाकर ज्ञान (४०) वृक्षायुर्वेद योग (४१) मेघ कक्कुट लावक युद्ध विधि

(४२) शुक सारिका प्रलापन (४३) उत्साहन संवाहन व केश-मर्द्दन (४४) अक्षर मुष्टिका कथन (४५) म्लेच्छित विकल्प (४६) देश-भाषा विज्ञान (४७) पुष्पशकटिका (४८) निमित्त-ज्ञान (४९) यन्त्र-मातृका (५०) धारण-मातृका (५१) संपाठ्य (५२) मानसी (५३) काव्य-क्रिया (५४) अभिधान कोष (५५) छन्दोज्ञान (५६) क्रिया कल्प (५७) छलितक-योग (५८) वस्त्र-गोपन (५९) द्यूत विशेष (६०) आकर्ष-क्रीड़ा (६१) बाल-क्रीड़नक (६२) वैनयिकी-विद्या (६३) वैजयिकी-विद्या (६४) वैयामिकी-विद्या ।

यही चौसठ कलायें हैं ।* यह स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये समान उपयोगी हैं। अतएव प्राचीनकालमें दोनोंको इनकी शिक्षा दी जाती थी। आधुनिक शिक्षामें इन विद्या कलाओंके लिये कहीं स्थान भी नहीं है। इससे हमें क्या लाभ या हानि होती है; यह हमारा विचारणीय विषय नहीं। हम तो केवल यहां प्राचीन और

---

* स्थानाभावके कारण इन कलाओंके सम्बन्धमें हम कुछ अधिक नहीं लिख सकते। जिन्हें विशेष जाननेकी इच्छा हो उन्हें हमारे काम-विज्ञानका तृतीय परिच्छेद पढ़ना चाहिये।

अर्वाचीन शिक्षाका दिग्दर्शन भर कराना चाहते हैं, ताकि हमारे पाठकोंको इसका ध्यान रहे, कि विद्यार्थी जीवनमें किन किन विद्या और कलाओंका सम्पादन किया जा सकता है।

हमारा विचारणीय विषय मनचाही सन्तान है, अतएव हमें प्रत्येक विषय पर वहीं तक विचार करना है जहांतक हमारे निर्दिष्ट विषयसे उसका सम्बन्ध हो। विद्या और कलाओंके सम्बन्धमें हम पहले ही कह चुके हैं, कि इनके सम्पादनसे भावी जीवनमें सहायता मिलती है। किन्तु यह साधारण बात है। इसे साधारण पढ़े लिखे लोग भी अच्छी तरह जानते और समझते हैं। परन्तु यह शायद बहुत कम लोग जानते होंगे कि इन विद्या और कलाओंसे सन्तानका भी घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। इस सम्बन्धमें हम आगे चलकर विशेष रूपसे लिखेंगे, किन्तु यहां हम अपने पाठकोंको इतना बतला देना आवश्यक समझते हैं, कि माता पिताकी ओरसे बच्चोंको यह विद्या और कलायें भी विरासतमें मिलती हैं, अतएव यह आवश्यक है, कि सन्तानकी दृष्टिसे भी इनका अध्ययन किया जाय। यदि कोई यह चाहे, कि मेरी सन्तान अमुक विद्या या कलाके प्रति विशेष रुचि रखनेवाली हो, तो

उसे स्वयं भी उस विद्या और कलाका अध्ययन करना होगा। बिना इसके सन्तानमें वह रुचि नहीं उत्पन्न की जा सकती।

इस प्रकार प्रारम्भिक जीवनमें शारीरिक और मानसिक शक्तिके अतिरिक्त विद्या कलाका सम्पादन कर मनुष्यको मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये अग्रसर होना चाहिये। यह शक्तियाँ जितने ही अधिक परिमाणमें सञ्चित की जा सकें, उतना ही अच्छा है। ये शक्तियाँ जितनी ही चढ़ी बढ़ी होंगी, उतनी ही भावी जीवनमें सफलता मिलेगी। किन्तु यदि संयोग वश यह अधिक परिमाणमें न प्राप्त की जा सकें, तो इससे किसी को हताश न होना चाहिये। जिस तरह व्यापारिक क्षेत्रमें छोटी पूँजीवाला भी ब्यापार करनेके लिये अग्रसर होता है, उसी तरह अपनी परिमित शक्तियोंको लेकर इस क्षेत्रमें भी मनुष्यको अग्रसर होना चाहिये।

विवाह ।

शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ सम्पादन करनेके बाद, जब हम अपने जीवन-पथ पर अग्रसर होते हैं, तब सर्वप्रथम विवाहका प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। इसे सुलझाये बिना आगे बढ़ना हमारे लिये कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव हो जाता है। वास्तवमें यह प्रश्न परम विचारणीय है। मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको तो इसके प्रत्येक पहलू पर विचार करना चाहिये, क्योंकि इसके द्वारा उसे वह जीवन-सङ्गी मिलता है, जिसके गुण और दोषोंका सन्तान पर यथेष्ट प्रभाव पड़ता है। उसके इस प्रभावसे इच्छा करने पर भी सन्तानको बचाया नहीं जा सकता। माता सन्तानकी सृष्टि और उसके गुण-निर्माणमें पितासे कहीं अधिक भाग लेती है। इसीलिये यह प्रश्न सबसे अधिक महत्व-

पूर्ण है। अपने पाठकोंके हितार्थ अब हम कई अध्यायोंमें इसके भिन्न भिन्न अङ्गों पर—सामाजिक और धार्मिक दृष्टिसे नहीं—केवल सन्तानकी दृष्टिसे विचार करेंगे।

विवाहके सम्बन्धमें सबसे पहला विचारणीय प्रश्न उसकी उपयोगिता और उसका उद्देश है। विवाहसे न केवल सन्तानोत्पत्तिका ही कार्य आगे चलता है, बल्कि मनुष्यके चरित्र, सुख और स्वास्थ्य पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इसलिये विवाह मनुष्यमात्रके लिये परमावश्यक माना गया है। अविवाहित मनुष्योंका जीवन समुद्रमें बहती हुई बन्धन-हीन और लक्षविहीन नौकाके समान होता है। प्रवृत्तिका दमन करना असंभव होनेके कारण प्रतिमुहूर्त्त अविवाहितोंके पथभ्रष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। पथभ्रष्ट होनेपर फिर चाहे कितना ही यत्न किया जाय, कोई लाभ नहीं होता। पापकी आगमें सर्वस्व स्वाहा हो जाने पर भी उन्हें क्षण भरके लिये वह शान्ति और स्निग्धता नहीं मिलती, जो विवाहित स्त्रीके साथ पवित्र-प्रेम और यत्नसे अनायास हमें मिलती रहती है।

यह बात सर्व सम्मत है, कि विवाहित जीवन ही मानव-जीवनकी स्वाभाविक अवस्था है और इसी अव-

स्थामें पुरुष किंवा स्त्रीको पूर्ण आनन्द और सफलता मिल सकती है। विवाहित जीवन न व्यतीत करना अपनी ईश्वर प्रदत्त शक्तियोंको सङ्कुचित करना है—विश्व-सृष्टीके उद्देश्यको विफल करना है—एक शब्दमें, विवाह न करना अपने जीवनको असम्पूर्ण रख छोडना है। पुरुषके लिये जो बात सत्य है, स्त्रीके लिये भी वही सत्य है।

मनुष्यकी सबसे बड़ी आकांक्षा और सबसे बड़ा लक्ष्य सुख है और इसकी प्राप्तिका सबसे बड़ा साधन या उपकरण विवाह ही है। आज कल हमारे देशके दम्पतियोंमें जो कलह या अशान्ति दिखाई देती है, उसे देखते हुए यह बात सन्देहपूर्ण मालूम हो सकती है, परन्तु यह अवस्था अनिवार्य कारणोंसे ही आती है। इसमें विवाहित जीवनको दोष नहीं दिया जा सकता।

सुख प्राप्तिका दूसरा उपकरण स्वास्थ्य है। अविवाहित जीवन, जीवनकी अनियमित और अस्वाभाविक अवस्था होनेके कारण यह स्वभावतः स्वास्थ्य तथा चिरायुताके प्रतिकूल है। पाठकोंको जन संख्याके विवरण-पत्र देखनेसे मालूम हो जायगा कि अविवाहित लोगोंकी अपेक्षा विवाहित मनुष्य ही अधिक आयुष्यमान होते हैं।

~ मनचाही सन्तान ~

संसारमें धन सम्पत्ति भी सुखका एक प्रधान साधन माना गया है, किन्तु अर्थ संचय भी दूसरी अवस्थामें उतना निश्चित और सहज साध्य नहीं है, जितना विवाहित जीवनमें। शर्त केवल यह है, कि स्त्री और पुरुष जिनका मिलन हो, वे एक दूसरेके अनुकूल हों और उनमें वाह्य एवम् आन्तरिक समानता हो। अर्थ-प्राप्तिमें स्वार्थ-वृत्तिकी प्रबलता रहती है। स्त्री और पुरुष एक दूसरेका स्वार्थ अभिन्न समझ कर जब सम्मिलित उद्योग करते हैं, तब सफलता होकर ही रहती है। एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। स्त्री और पुरुषके सहयोगसे उत्पादन शक्ति पहले दूनी और फिर बढ़ते बढ़ते अपरिमित हो जाती है। संसारमें ऐसे बहुतसे लोग दिखाई देते हैं, जो विवाह होने और पिताका स्थान प्राप्त करनेके पहले न तो समयका ही मूल्य समझते हैं, न धन ही सुरक्षित रख सकते हैं। ऐसे लोग यदि सम्पत्तिशाली और धनाढ्य होना चाहें तो उन्हें ऐसी स्त्रीसे विवाह करना चाहिये, जो धनी भले ही न हो किन्तु मितव्ययी हो।

अकेले भोजन करनेसे भी भूख दूर हो सकती है, परन्तु अपने परिवारके लोगों तथा इष्ट मित्रोंके साथ भोजन करनेमें जो सुख मिलता है, वह क्या अकेले आहार करनेसे

कभी मिल सकता है? इसी प्रकार प्रत्येक सुख दुःखकी वस्तुका एक सङ्गीके बिना पूर्ण उपभोग नहीं किया जा सकता। कहना व्यर्थ है, कि यह सङ्गी स्त्रीके लिये एक पुरुष और पुरुषके लिये एक स्त्री ही हो सकती है।

मनुष्यको विवाहित जीवन क्यों व्यतीत करना चाहिये इसके यही प्रधान कारण हैं। जीवनको सभी तरहसे पूर्ण बनाना यही विवाहका उद्देश्य है, परन्तु यह कितने दुःखकी बात है, कि इन बातोंपर दृष्टि रख, एक भी मनुष्य विवाह नहीं करता। आजकल धन, मान, गौरव, स्वार्थ किंवा दुर्वासनाकी तृप्तिके ही उद्देश्यसे विवाह किये जाते हैं। इन मिथ्या और स्वार्थपूर्ण बातोंके कारण जीवनकी पूर्णता तो दूर रही, स्त्री और पुरुषोंके व्यक्तिगत सुख शान्तिमें भी बाधा पड़ जाती हैं। ऐसे स्त्री पुरुष के मिलनसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह भी सुयोग्य और शक्तिशाली न होकर हीन ही होती हैं। सामाजिक और धार्मिक दृष्टिसे ऐसे विवाह चाहे जितने उत्तम माने जायँ, किन्तु सन्तानकी दृष्टिसे तो यह परम निन्दनीय और निकृष्ट ही समझे जायँगे।

हमारे यहां स्त्री और पुरुष स्वयं अपने जीवन-सङ्गीका चुनाव नहीं करते। यह कार्य उनके माता पिता द्वारा

सम्पादित होता है। परन्तु देशकी वास्तविक परिस्थितिकी जानकारी रखनेवाले लोगोंको यह स्वीकार करनेमें शायद ही कोई आपत्ति होगी, कि वर-कन्याके चुनावमें जैसे झूठे उद्देश्योंको सामने रखकर काम लिया जाता है, वैसा और किसी चीजके चुनावमें नहीं किया जाता। माता पिता जब अपनेको बच्चोंका भाग्य-विधाता समझते हैं, तब उन्हें हर वक्त उनके हिताहित पर ध्यान रखना चाहिये। यह कितने आश्चर्यकी बात हैं, कि जब वे एक साधारण सा काम करने निकलते हैं, तब उसके लाभ हानि, भलाई, बुराई, स्वार्थ और यश सभी बातोंपर विचार कर लेते हैं, परन्तु वही जब अपने बच्चोंके लिये जीवन-सङ्गी पसन्द करने बैठते हैं, तब इन समस्त विचारोंको ताक पर रख देते हैं। यदि किसीको अपने पुत्रका विवाह करना हुआ तो वह कन्या पक्षकी कुलीनता, रईसी, उसकी थैली—दहेज या कन्याकी सुन्दरता पर ही मुग्ध होकर विवाह पक्का कर लेता है। प्रत्येक विचारशील मनुष्य यह समझ सकता है, कि कन्या-पक्षकी कुलीनता, उसका धन या कन्याकी सुन्दरता—यही एक पुरुषके जीवनको पूर्ण नहीं बना सकते। इनमेंसे एक भी वस्तु स्त्रीके सच्चे चरित्रका परिचय नहीं देती। तथापि अधिकांश विवाह

कभी मिल सकता है ? इसी प्रकार प्रत्येक सुख दुःखकी वस्तुका एक सङ्गीके बिना पूर्ण उपभोग नहीं किया जा सकता। कहना व्यर्थ है, कि यह सङ्गी स्त्रीके लिये एक पुरुष और पुरुषके लिये एक स्त्री ही हो सकती हैं।

मनुष्यको विवाहित जीवन क्यों व्यतीत करना चाहिये इसके यही प्रधान कारण हैं। जीवनको सभी तरहसे पूर्ण बनाना यही विवाहका उद्देश्य है, परन्तु यह कितने दुःखकी बात है, कि इन बातोंपर दृष्टि रख, एक भी मनुष्य विवाह नहीं करता। आजकल धन, मान, गौरव, स्वार्थ किंवा दुर्वासनाकी तृप्तिके ही उद्देश्यसे विवाह किये जाते हैं। इन मिथ्या और स्वार्थपूर्ण बातोंके कारण जीवनकी पूर्णता तो दूर रही, स्त्री और पुरुषोंके व्यक्तिगत सुख शान्तिमें भी बाधा पड़ जाती हैं। ऐसे स्त्री पुरुष के मिलनसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह भी सुयोग्य और शक्तिशाली न होकर हीन ही होती हैं। सामाजिक और धार्मिक दृष्टिसे ऐसे विवाह चाहे जितने उत्तम माने जायँ, किन्तु सन्तानकी दृष्टिसे तो यह परम निन्दनीय और निकृष्ट ही समझे जायँगे।

हमारे यहां स्त्री और पुरुष स्वयं अपने जीवन-सङ्गीका चुनाव नहीं करते। यह कार्य उनके माता पिता द्वारा

सम्पादित होता है। परन्तु देशकी वास्तविक परिस्थितिकी जानकारी रखनेवाले लोगोंको यह स्वीकार करनेमें शायद् ही कोई आपत्ति होगी, कि वर-कन्याके चुनावमें जैसे झूठे उद्देश्योंको सामने रखकर काम लिया जाता है, वैसा और किसी चीजके चुनावमें नहीं किया जाता। माता पिता जब अपनेको बच्चोंका भाग्य-विधाता समझते हैं, तब उन्हें हर वक्त उनके हिताहित पर ध्यान रखना चाहिये। यह कितने आश्चर्यकी वात हैं, कि जब वे एक साधारण सा काम करने निकलते हैं, तब उसके लाभ हानि, भलाई, बुराई, स्वार्थ और यश सभी वातोंपर विचार कर लेते हैं, परन्तु वही जब अपने बच्चोंके लिये जीवन-सङ्गी पसन्द करने बैठते हैं, तब इन समस्त विचारोंको ताक पर रख देते हैं। यदि किसीको अपने पुत्रका विवाह करना हुआ तो वह कन्या पक्षकी कुलीनता, रईसी, उसकी थैली—दहेज या कन्याकी सुन्दरता पर ही मुग्ध होकर विवाह पक्का कर लेता है। प्रत्येक विचारशील मनुष्य यह समझ सकता है, कि कन्या-पक्षकी कुलीनता, उसका धन या कन्याकी सुन्दरता—यही एक पुरुषके जीवनको पूर्ण नहीं वना सकते। इनमेंसे एक भी वस्तु स्त्रीके सच्चे चरित्रका परिचय नहीं देती। तथापि अधिकांश विवाह

किसी ऐसी ही बात पर ध्यान रखकर किये जाते हैं। विवाह होनेके बाद जब यह सत्य प्रकट होता है, कि कन्याके सुन्दर हाथ पैर या चेहरेसे उसके चरित्रका कुछ सम्बन्ध नहीं है, तब पश्चात्तापके सिवा कोई चारा नहीं रहता। वर-कन्याके माता पिता तो केवल पश्चात्ताप ही करके अलग हो जाते हैं, किन्तु वैवाहिक बन्धनसे बँधे हुए उनके बच्चोंको उसी अवस्थामें दुःखमय जीवन व्यतीत करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। क्या ऐसे विवाह सन्तानकी दृष्टिसे कभी वाञ्छनीय कहे जा सकते हैं?

कभी कभी लड़के दुराचारी होनेके कारण उनके माता पिता समझते हैं, कि इनका विवाह कर देनेसे यह सुधर जायँगे। फलतः वे किसी आंखके अन्धेको फँसा कर उनका व्याह कर देते हैं। परन्तु ऐसे पापपूर्ण और घृणित विवाहोंका परिणाम बहुधा विपरीत ही हुआ करता हैं। दुराचारियोंका सुधरना तो दूर रहा, वे अपने घृणित रोगोंके कारण उस अभागिनी ललनाको भी अपने साथ ले डूबते हैं। यह कहाँका न्याय है, कि एक रोगी और दुराचारी पुरुषके पल्ले एक स्वस्थ और निरोग स्त्री लगाकर उसका भी जीवन नष्ट कर दिया जाय? सबसे बड़ी विचारनेकी बात तो यह है, कि ऐसे मिलनसे जो

सन्तान उत्पन्न होगी वह क्या कभी स्वस्थ और निरोग रह सकती है? यदि ऐसे विवाहसे कितनी ही निःस्सहाय और निकम्मी सन्तानें उत्पन्न हो जायँ तों इससे बढ़कर पाप और क्या हो सकता हैं? माता पिताओंको अपने बच्चोंके विवाह ऐसे झूठे उद्देश्यसे कदापि न करने चाहिये। यदि लड़का दुराचारी या अपने पापके कारण रोगी हो गया हो, तो उसे स्वयं उसका फल भोग करने दो—उसके पीछे दूसरेका जीवन संकटमय मत बनाओ। उसे अपना रोग अपने साथ लेकर मर जाने दो, पर संसारमें उसे उस रोगका बीज छोड़ जानेका अवसर मत दो।

विवाहका एकमात्र सच्चा उद्देश्य जीवनको सम्पूर्ण बनाना है। जीवनकी यह सम्पूर्णता शरीर-विज्ञान सम्बन्धी एकतासे सिद्ध होती है। यह एकता सन्तानोत्पत्तिसे और भी सम्पूर्णहो जाती है। जो इस उद्देश्य पर ध्यान रख बच्चोंका विवाह करते हैं, उनके बच्चे न केवल सुख और शान्तिके ही अधिकारी होते हैं, बल्कि अपने प्रेममय मिलनसे ऐसे बच्चोंको जन्म देते है, जो नन्दन-काननके पारिजातकी तरह इस संसारको अपने गुणोंसे सौरभित कर, मृत्युके बाद अक्षय कीर्त्ति छोड़ जाते हैं।

७

विवाह किस अवस्थामें करना चाहिये ?

अब हम विवाहकी अवस्था पर विचार करने जा रहे हैं। देशके लक्षावधि लोगोंका "अष्टवर्षा भवेद्गौरी" वाला सिद्धान्त हमारी नजरके सामने नाच रहा है। हम जानते हैं, कि भारतकी अनेक उच्च और सुरक्षित जातियोंमें बारह तेरह वर्षकी ही अवस्थामें कन्याओंका विवाह कर दिया जाता है। हम यह भी जानते हैं, कि इस अभागे देशमें ऐसी भी जातियां और ऐसे भी लोग रहते हैं, जो बच्चोंको जन्म होनेके पहले ही विवाहके बन्धनमें जकड़ देते हैं। हम यह भी जानते हैं, कि इस देशमें विवाहिताओंकी कौन कहे, पाँच वर्ष तककी विधवायें भी हजारोंकी संख्यामें मौजूद हैं। निःसन्देह यह सब विवाह किसी धार्मिक किंवा सामाजिक प्रथा या नियम-

की आड़ लेकर ही किये जाते है। देशवासियोंका यह कार्य कहाँ तक उचित कहा जा सकता है, यह हमारा विचारणीय प्रश्न नहीं हैं। इस प्रकारके विवाह चाहे धार्मिक नियमोंके अनुसार किये जाते हों चाहे सामाजिक नियमके अनुसार—सन्तानकी दृष्टिसे कोई महत्व नहीं रखते। हम यह जानते हैं, कि देशवासियोंने सुश्रुतके "पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारि तु षोड़शे।" इस सिद्धान्तको भी ठुकरा दिया है और उनकी निर्धारित स्त्रियोंकी सोलह व पुरुषोंकी पचीस वर्षकी अवस्थाको भी मान्य नहीं रक्खा। किन्तु यह सब जानते हुए भी हम इस प्रश्न पर विचार चलाये और सन्तानकी दृष्टिसे जो वास्तविक सत्य है उसे प्रकाशित किये बिना नहीं रह सकते।

हम अपने बच्चोंके विवाह चाहे जिस अवस्थामें कर दें किन्तु वास्तवमें, सन्तानकी दृष्टिसे विवाहकी कोई निश्चित अवस्था निर्दिष्ट की ही नहीं जा सकती। शरीर-विज्ञान सम्बन्धी जिस नियमके अनुसार शरीरका बढ़ाव होता है उसी पर विवाहकी अवस्थाका निश्चय भी निर्भर करता है। पुरुष और स्त्रीमें जब उत्पादनकी योग्यता आ जाती है—अर्थात् जब दोनों ही यौवनावस्थामें

अवतीर्ण होते हैं—तभी विवाहकी उचित अवस्था आती है ; परन्तु यह यौवन समागम सभी देशोंमें, सभी जलवायुमें एक ही अवस्थामें नहीं आता । इसके सिवा एक ही जल-वायुमें सबकी शारीरिक वृद्धि शरीर-विज्ञानके एक ही नियमके अनुसार नहीं होती । वातावरण और खानपानका प्रभाव भी शरीरकी वृद्धि पर अवश्य पड़ता है । अमीरी भोजन, पुष्टिकर पदार्थोंका सेवन, मसाला, चाय, काफी, शराब, तम्बाकू आदि उत्तेजक पदार्थोंके व्यवहारसे भी शारीरिक पक्वता शीघ्र होती है । नागरिक जीवनका भी प्रभाव शरीरके बढ़ाव पर कम नहीं पड़ता । नैतिक चरित्रसे भी शारीरिक वृद्धि प्रभावित होती है । इन सभी कारणोंको साधारण मान लेने पर साधारण जल-वायुवाले देशोंमें कन्याके यौवन-समागमकी अवस्था तेरहसे सोलह वर्ष तकमें और पुत्रकी अवस्था पन्द्रहसे अठारह वर्षके भीतर मानी जा सकती है । क्योंकि उसीके भीतर उत्पादक वीर्य परिपक्व हो जाता है । परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये, कि विवाहकी उचित अवस्था यही है ।

चूंकि उष्णता सुगठित शरीरमें जीवनी शक्तिको बराबर बढ़ाती रहती है और उसके कारण शारीरिक

वृद्धि भी द्रुत गतिसे होता रहती है, इसलिये मनुष्य और स्त्रीमें परिपक्वता भी शीघ्र हो जाती है। फलतः सभी ग्रीष्म प्रधान देशोंमें स्त्रियोंका ऋतु बहुत छोटी अवस्थासे ही शुरू हो जाता है—कहीं कहीं तो आठसे दश वर्षके भीतर ही आरम्भ हो जाता है।

परन्तु उत्पादक अवयवोंकी यह आशुपरिणति किसी प्रकार लाभदायी नहीं होती। क्योंकि जिन लोगोंमें पूर्णाङ्गता शीघ्र हो जाती है, वैसे आदमी प्रायः क्षीण-जीवी होते हैं। उनका सौन्दर्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और शीघ्र ही वे वार्द्धक्यके शिकार बन जाते है। परन्तु जिन लोगोंकी पूर्णाङ्गता देरसे होती है, अक्सर उनके दीर्घायु होनेकी सम्भावना रहती हैं, सौन्दर्य भी स्थायी होता है और उत्पादिका शक्ति प्रबल होती है।

जो लोग यौवन समागमके ऊपर ही विवाहकी अवस्था निश्चित करते हैं, वे लोग बड़ी भूल करते हैं--वे समझते हैं, कि जिस स्त्रीको ऋतु आरम्भ हो जाता है, उसमें उत्पादनकी शक्ति आ जाती है और वह सभी प्रकारसे विवाहके योग्य हो जाती है। परन्तु यह बिलकुल भ्रम है। क्योंकि विवाह उन्हींमें होना चाहिये जो शरीर विज्ञानके अनुसार पूर्णाङ्ग पुरुष और पूर्णाङ्गःस्त्री हों।

मानविक संगठनके प्रत्येक अवयवकी पूर्णताका अर्थ ही शारीरिक पूर्णता है। परन्तु जिस समय ऋतु पहले पहल प्रकट होता है उस समय तक शारीरिक शृङ्खलाका अस्थिमय भाग परिपूर्ण नहीं हुआ होता। इस अस्थिमय भाग पर ही मांसपेशी, स्नायु, धमनी, परिपाक-शक्ति और शरीरके अन्यान्य अङ्गोंकी पूर्णता निर्भर करती है। इन सबके संयोगको उत्पादिका-शक्ति कहते हैं। इसलिये यह दावेके साथ कहा जा सकता है, कि ऋतु या वीर्यकी परिपक्वता होनेपर भी मनुष्यमें उत्पादिका-शक्ति का अभाव हो सकता है। ऋतुके आविर्भावसे केवल इतना ही अनुमान किया जाता है कि शारीरिक पूर्णता द्रुत गतिसे हो रही है। शीघ्र ही सर्वाङ्ग पूर्ण हो सकते हैं।

शरीरमें कितनी ही ऐसी हड्डियाँ होती हैं जो पच्चीस वर्षकी अवस्थाके पहले अपने पूरे बढ़ाव तक नहीं पहुंचती। कण्ठास्थि जो शरीरकी सभी हड्डियोंसे पहले उत्पन्न होती हैं, अठारह वर्षकी अवस्थाके भीतर वह अपनी पूर्ण वृद्धि नहीं प्राप्त करती। स्कन्ध-कलकास्थि पच्चीस वर्षके भीतर पूरी नहीं होती। वस्ति गह्वर और पैरोंकी भी यही बात है। ऐसी अवस्थामें क्या यह तर्क

करना फिजूल नहीं है, कि यौवन-समागम जो कि तेरह वर्षकी अवस्थामें ही हो जाता है—वही विवाह योग्य अवस्था है? सावधानीसे जाँच करने पर मालूम होता है, कि साधारण जलवायुमें स्त्री पच्चीस वर्षके पहले पूर्णाङ्गता नहीं प्राप्त करती। उसका कद पन्द्रह सालकी अवस्थामें ही पूरा हो सकता है, परन्तु पच्चीस वर्षके पहले उसकी आभ्यन्तरिक शृङ्खला परिपूर्ण नहीं होती।

पुरुषका भी पूरा बढ़ाव अट्ठाइससे तीस वर्षके भीतर पूरा नहीं होता। उचित अवस्थाके पहले ही जबर्दस्ती बालकोंका ब्याह कर देनेसे प्रकृतिके शरीर-गठन कार्यमें बाधा पहुंचती हैं और बालक पूरा मनुष्यत्व न प्राप्त करनेके कारण कमजोर, स्वास्थ्य-हीन और क्षीणायु हो जाता है।

स्त्रियोंमें भी पच्चीस वर्षकी पूरी अवस्थाके भीतर ही सन्तानोत्पादन होते देखा जाता है। परन्तु इस प्रकारके सन्तानोत्पादनका फल यह होता है, कि शरीरकी जो शृङ्खलायें शारीरिक शक्तिकी पूर्णता बढ़ानेमें लगी हुई होती हैं, वे ही भ्रूणके पोषणमें लगा दी जाती है। इससे अपरिणत मातासे अपरिणत सन्तान उत्पन्न होती है।

बाल-विवाहसे उत्पन्न हुई सन्तानें अवश्य क्षीण और चिररोगी होती हैं और प्रायः बचपनमें ही मर

जाती :हैं। यद्यपि ऐसी सन्तानें भी कभी कभी हृष्ट पुष्ट देखनेमें आती है परन्तु मनुष्यत्वकी पूरी अवस्था तक वे कभी नहीं पहुंचने पातीं, वृद्धावस्थाकी तो बात ही नहीं।

अपरिणत वयसमें सन्तान होनेसे माताकी वृद्धिमें बाधा पहुंचती है। स्वास्थ्य खराब हो जाता है। इसके अलावे कितने ही प्रकारके दुःख कष्ट उसे झेलने पड़ते हैं। यौवन अवस्थामें ही वह बूढ़ी हो जाती है। यदि कोई इसका कारण जानना चाहे तो वह थोड़ी चेष्टासे ही जान सकता है, कि स्त्रियोंका व्याह पच्चीस वर्षसे जितने पहले :हुआ होता है उनमें प्रत्येक वर्ष स्त्रीके परिणत वयसका तीन वर्ष खा जाता है।

जो मनुष्य अट्ठाइससे तीस वर्षके भीतर व्याह करता है अथवा काम-चालना करता या संयम-हीन जीवन व्यतीत करता है, वह भी अपने बढ़ावकी गतिको रोक देता है, अपनी सम्पूर्ण शृङ्खलाको कमजोर कर देता है। उसकी मांसपेशियाँ ढीली और क्षीण हो जाती है। स्नायु दुर्बल हो जाते हैं और मस्तिष्कमें भी कमजोरी आ जाती है। ऐसे मनुष्य जीवन-संग्राममें न तो सफलता ही प्राप्त कर सकते हैं और न संसारका सुख ही भोग

सकते है। रोग, अपरिणत वृद्धावस्था और अकाल मृत्यु उसके जीवनका दुःखमय अन्त कर देते हैं।

हमारे देशमें बाल-विवाहकी प्रथा प्रचलित है। इसके सम्बन्धमें "मैरेज" नामक पुस्तकके लेखक लिखते हैं—"चाहे किसी कारणसे भी बाल-विवाह क्यों न किया जाय उससे भयङ्कर हानिके बदले लाभ कुछ भी नहीं होता। दुर्मद व्यसन, लोभ और अतृप्तिके कारण कितने ही युवक अपरिणत उम्रमें ही बिना सोचे विचारे विवाह-बन्धनमें बँध जाते हैं। इसका फल यह होता है, कि उन्हें आजीवन पश्चाताप और अनुताप करना पड़ता है। प्रेम-राज्यका मोह अधिक दिन नहीं रहता। सजीव प्रत्यक्ष शीघ्र ही अपनी सारी कठोरता और कड़ुआपन लिये हुए सामने आता है। सांसारिक चिन्तायें, कठिनाइयाँ और आपत्तियाँ शीघ्र ही विवाहित जीवनको असन्तोषमय बना देती हैं और सबसे बुरी बात जो होती हैं, वह यह कि दोनोंमें उदासीनताका भाव बढ़ने लगता है।

हम प्रतिदिन अनेक ऐसे परिवार देखते हैं, जिनकी सन्तानें शरीर सम्बन्धी विचारोंमें बिलकुल असतर्क और अपरिणामदर्शी होती हैं। जिस परिवारकी माता स्वयं सुयोग्य और अनुभवशील नहीं होती, उसका परिवार

विश्टृङ्खल, सन्तानें कुशासित और सभी काम बेसिलसिलेसे होना बिलकुल स्वाभाविक है और यह सम्भव नहीं, कि बारह तेरह वर्षकी नादान बालिकायें इतनी अभिज्ञता और अनुभव रखती हों, जिससे गृहका सारा कार्य-भार सम्हाल लें, साथ ही बालकोंका पालन भी योग्यतापूर्वक करें और अपने तथा अपनी सन्तानके स्वभाव और सिद्धान्तोंको सुसंगठित कर सकें।

प्राचीनकालमें भारतवासी पच्चीस वर्षकी अवस्थाके पहले व्याह नहीं करते थे। इस अवस्था तक वे कठिन पवित्रताका पालन करते थे। इसका फल यह होता था, कि उस समयके भारतीयोंको देखकर समस्त संसारको दांतोंसे अङ्गुली काटनी पड़ती थी। साधारण बुद्धिसे भी यह बात मालूम हो सकती है, कि यदि अपरिणत वयसका कोई युवक कदकी बढ़तीसे खूब लम्बा चौड़ा भी दिखाता हो, तो इससे वह किसी सन्तानमें परिपूर्ण जीवनी शक्तिका सञ्चार नहीं कर सकता और बालिका भी ऋतुवती होनेसे हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ सरल सन्तान प्रसव करनेकी योग्यता प्राप्त कर लेगी ऐसी कोई बात नहीं हैं।

जबतक पुरुष और स्त्रीके सभी अवयव पूर्णता न

प्राप्त कर लें, तबतक विवाह करना कभी उचित नहीं। प्रकृति अपने प्रत्येक कार्यमें पूर्णता चाहती है, इसलिये असम्पूर्ण अवयवसे सम्पूर्ण आकार और शक्तिकी सन्तान उत्पन्न होना कभी सम्भव नहीं और साथ ही अवयवोंकी असम्पूर्णावस्थामें उनका व्यवहार करनेसे वे दुर्बल पड़ जाते हैं और उनके कारण शरीरकी सारी वृद्धि और शक्ति संचय भी रुक जाता है।

अनमेल विवाह जो बहुधा आर्थिक कारण या अन्य सांसारिक कारणोंसे हुआ करते हैं, वे भी विवाहित दम्पतिके सुख शान्तिके घातक और सन्तानोंके लिये अनिष्टकारक हैं, इसलिये अनुचित विवाहका भी यथा सम्भव परिहार करना चाहिये।

अनमेल विवाहसे मिलता जुलता ही वृद्ध-विवाह भी है। ऐसे विवाह शरीर-विज्ञानके नियमोंके विरोधी ही नहीं हैं, ये दोनों हीके सुख शान्तिके घातक और अशेष यन्त्रणाके कारण होते हैं। जिस मनुष्यको अपने स्वास्थ्य और जीवनसे बैर हो, वही अपने जीवनको रोग शोकसे नष्ट कर देनेके लिये इस उपायका अवलम्बन कर सकता है।

पेरिस नामक एक विद्वानका कथन है कि "अनमेल

विवाह करना अनेकों विपत्तियोंको मोल लेना है। क्योंकि एककी सभी आशा और हौसले पूर्ण हो गये होते हैं, जब कि दूसरेकी आशा और लालसा नवीन पुष्प और पल्लवके साथ लहलहाती रहती है। ऐसी अवस्थामें जब एक वृद्ध रुपयेकी थैलीके बलपर एक कुमारी किशोरीका पाणि-ग्रहण करता है, तब प्रकृति निरपेक्ष होकर बैठी नहीं रहती। वह अपने कानूनके विद्रोहीका दमन करनेके लिये अपनी पूरी शक्तिसे काम लेती हैं। इसके फल स्वरूप दुःख, क्लेश और अशान्ति तो भोगनी ही पड़ती है, कलङ्क और दुर्नामका बोझ भी सिर पर सवार होता है और सन्तान होनेकी भी सम्भावना नहीं रहती। किसी धनी वृद्धके साथ विवाह सम्बन्ध ठीक होनेपर एक बुद्धिमती लड़कीने अपने मातापितासे बिलकुल ठीक ही कहा था, कि "मैं उन वृद्ध महाशयसे व्याह करके क्या सुख भोगूंगी! क्या रुपयेकी थैलियोंकी गद्दी बनाकर उसपर शयन करूँगी या उनको अपने आँसुओंसे धोकर साफ करूँगी?" स्वास्थ्य और शक्तिके सम्बन्धमें भी विचार करनेपर यह अनुमान लगाया जा सकता है, कि अनमेल विवाहकी वैसी अवस्थामें जब कि एक बूढ़ेके साथ जिसकी सारी शक्ति और सामर्थ्यका लोप हो चुका

है—एक नवीन युवतीका व्याह कर देनेसे कैसा भयङ्कर अनर्थ हो सकता है। युवतीकी आत्म-हत्या तो एक प्रकारसे अवश्यम्भावी हो ही जाती है, वृद्ध वरकी भी शान्ति और आराम छूमन्तर हो जाते हैं और वह रोग शोकका शीघ्र शिकार बनकर कब्रकी ओर पैर बढ़ा देता है।

यह पहले ही कहा गया है, कि जलवायु, स्वभाव और अन्यान्य कारणोंसे शरीरके बढ़ावका नियम भिन्न भिन्न प्रकारका होता है, इसलिये सभी मनुष्योंमें शरीरकी पूर्णता एक ही समयके भीतर नहीं आती। इसलिये विवाहकी कोई निश्चित अवस्था निर्दिष्ट नहीं की जा सकती। तथापि इतना आसानीसे कहा जा सकता है, कि जो आदमी अपने स्वास्थ्य और सुखकी आशा रखता हो उसे चाहिये, कि पच्चीस वर्षकी अवस्थाके पहले वह विवाह कभी न करे। तीस वर्षतक वह ठहर सके तो और भी अच्छा है। हमारे वैद्यक-शास्त्रका भी यही आदेश है।

स्त्रियोंके लिये विवाहकी अवस्था कमसे कम सोलह वर्षकी निर्धारित की जा सकती है। दाम्पत्य-जीवनमें स्त्रियोंको ही अधिक संकटोंका सामना करना पड़ता

है और अधिकतर कठिन कर्त्तव्योंका पालन भी उन्हींके हिस्सेमें पड़ता है, अतएव कन्याओंके माता-पिताओंको जबतक उनमें पूरी शक्ति संचित न हो जाय तबतक उनके विवाहका नाम भी न चाहिये। पूरी शक्तिका संचय पूरे बढ़ावसे ही हो सकता है, इसलिये उन्हें इक्कीस वर्षकी अवस्था तक कुमारी रहनेकी अपरिहार्य आवश्यकता है। यदि वे अपने सुख स्वास्थ्यकी जड़ और भी मजबूत करना चाहें तो उन्हें चौबीस वर्षकी अवस्था तक अपेक्षा करनी चाहिये। परन्तु भारतमें इस अवस्था तक कोई भी लड़की कुमारी नहीं रक्खी जा सकती। धार्मिक और सामाजिक बन्धन इसके पहले ही कन्याका विवाह कर देनेके लिये माता पिताको बाध्य करते हैं, अतएव विवाहकी अवस्था कमसे कम सोलह वर्षकी निर्धारित की जा सकती है। यह अवस्था शास्त्र-सम्मत भी है, किन्तु पाठकोंको यह कदापि न भूलना चाहिये, कि सन्तानोत्पत्तिके लिये भी यही अवस्था निर्धारित नहीं की जा सकती। यदि मनचाही सन्तानकी इच्छा हो, तो जबतक शरीर भलीभाँति पुष्ट न हो जाय, जबतक समस्त अङ्गोंका पूर्ण विकास न हो जाय और जबतक यौवन शरीर पर पूर्ण अधिकार न जमा ले, तबतक काम-वासनासे उन्हें दूर ही रहना होगा। इस

नियमका जितने अंशोंमें पालन किया जायगा, उतने ही अंशोंमें सन्तान उत्तम होगी।

यह भी ध्यान रखनेकी बात है, कि अधिकांश स्त्रियाँ अपने शरीर पर ख्याल न रखनेके कारण अथवा पुरुषोंकी कामुकताके कारण स्वामीसे पहले ही बूढ़ी हो जाती हैं। इस लिये स्वामीकी उम्रसे स्त्रीकी उम्र कमसे कम तीनसे छः वर्ष तक छोटी होनी चाहिये। यदि आठ दस वर्षका अन्तर हो, तो और भी अच्छा है। मनचाही सन्तानकी दृष्टिसे माता-पिताकी अवस्था और शारीरिक पूर्णताका प्रश्न बहुत ही महत्व पूर्ण है, अतएव किसीको भूलकर भी इसकी उपेक्षा न करनी चाहिये।

८ ८ '८

(8)

८

वर-वधूकी पसन्दगी।

हमारे देशमें कन्याके लिये वर किंवा पुत्रके लिये वधूकी पसन्दगी उनके माता पिता ही करते हैं। माता पिता न होनेपर यह भार दूसरे वयोवृद्ध लोग ग्रहण करते हैं। हाँ, यदि पुरुषकी अवस्था बड़ी हुई और वह आप ही अपने घरका कर्त्ताधर्त्ता होता है, तो वधूकी पसन्दगी में उसका बहुत कुछ हाथ रहता है, किन्तु एक कन्या चाहे वह छोटी हो या बड़ो, किसी भी अवस्थामें अपने लिये पति पसन्द नहीं कर सकती।

हमारे देशमें वर और कन्या-विक्रयकी प्रथायें प्रचलित होनेसे माता पिता भी बच्चोंका विवाह करते समय वर या वधूके गुण न देखकर थैलीकी ही फिक्र किया करते हैं। इस थैलीके पीछे कभी कभी तो ऐसे बेजोड़ विवाह हो जाते हैं, कि दम्पतिको आजीवन दुःखमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

मनचाही सन्तान

पाश्चात्य देशोंमें वर वधू एक दूसरेको अच्छी तरह देख सुनकर विवाह-बन्धनमें आबद्ध होते हैं। हमारे देशमें नवयुवकोंको वैसा मौका नहीं मिलता, अतएव वे बहुधा कहा करते :हैं, कि हमारे यहाँ तो "लाटरी" के ढंग पर विवाह होता है। जो जिसकी किस्मतमें बदा होता है, वह उसके गले बँध जाता है। निःसन्देह यह बात बिलकुल ठीक है, किन्तु हम पाठकोंको बतला देना चाहते हैं, कि केवल कन्याको देख सुनकर ही विवाह करनेसे दाम्पत्य-जीवन सुखमय नहीं हो जाता। यदि ऐसा होता, तो विलायतमें आज तलाकोंका बाजार इतना गर्म न होता। वास्तवमें वे बातें कुछ और ही हैं, जिन पर ध्यान रखनेसे आजीवन प्रेमकी धारा अवाधित रूपसे बहा करती है। हम अपने पाठकोंको वही बातें बतलानेकी चेष्टा करेंगे।

विवाह करते समय प्रत्येक स्त्री पुरुषको--प्रत्येक बच्चेके माता पिताको इस बात पर अच्छी तरह विचार करना चाहिये, कि अपनी कन्या किंवा पुत्रके लिये कैसा जीवन-सङ्गी खोजना चाहिये। किस उपायके अवलम्बनसे उसके खरे खोटे गुणोंका निर्णय किया जा सकता हैं। प्रेम—विवाहित स्त्री पुरुषोंके जीवनको सुखमय बनानेकी

प्रधान वस्तु है, परन्तु वह कैसा वर या कैसी वधूके खोजने पर उत्पन्न हो सकता है? किस प्रकार पसन्दगी करने पर वर वधूका ऐसा जोड़ा मिल सकता है, जिससे भविष्यमें पश्चाताप न करना पड़े। प्रत्येक विचारशील मनुष्यको अपने पुत्र या अपनी कन्याका विवाह करते समय इन प्रश्नोंको अच्छी तरह हल कर लेना चाहिये। यह बड़े ही दुःखकी बात है, कि आर्थिक स्वार्थ किंवा इन्द्रिय-परितृप्ति आदि घृणित उद्देश्यों पर ही जो लोग दृष्टि रखते हैं, वे अन्धभावसे ही अपने बच्चोंके विवाह कर देते हैं। दुर्भाग्यवश हमारे देशमें ऐसे ही माता पिताओंकी संख्या अधिक है।

परन्तु कन्याके लिये वर किंवा वरके लिये कन्याकी पसन्दगी केवल थैली देखकर ही न होनी चाहिये। प्रकृतिके विशाल साम्राज्यमें, जिस तरह प्रत्येक कार्यका एक विशेष नियम है, उसी प्रकार इस संगी निर्वाचनके लिये भी प्रकृतिने अवश्य ही एक नियम बना रक्खा है। किसी भी मनुष्यको वह नियम जो कि उसीके सुख और लाभके लिये बनाया गया है, भूल कर भी भंग न करना चाहिये।

संसारकी भिन्न भिन्न जातियोंमें जो विवाह प्रथायें

प्रचलित हैं, उन्हें देखनेसे पता चलता है, कि प्राचीन कालमें लोग स्त्रियोंको दासीकी दृष्टिसे देखते थे और उसी दृष्टिसे उनके साथ प्रत्येक व्यवहार किया जाता था। कहीं कहीं कन्या-विक्रयकी जो प्रथा प्रचलित है वह भी स्त्रियोंके दासत्वकी ही द्योतक है। आधुनिक सभ्य जगतमें बहुत परिवर्तन हो गया है और स्त्रियां दासी न समझ कर पुरुषोंके ही समान पूर्ण स्वतन्त्र मानी जाने लगी हैं, किन्तु हमारे देशमें अभी यह बात दिखाई नहीं देती। शायद भविष्यमें भी यहाँ इन विचारोंका पाश्चात्य देशके समान प्रचार न होगा, क्योंकि भारतकी सभ्यता युरोपीय सभ्यतासे सर्वथा भिन्न है और उसमें स्त्रियोंको पतिके निकट दासी भावसे ही रहनेका आदेश दिया गया है। परन्तु इस दासीका वह अर्थ कदापि नहीं है, जो आजकल हमलोग समझ रहे हैं। हमें यह कदापि न भूलना चाहिये, कि स्त्रियोंको ही "गृहिणी" "गृह-राज्यकी मन्त्री" "गृहदेवी" और "अर्धाङ्गना" आदि नाम दिये गये हैं। दासीभावका तात्पर्य केवल आज्ञाकारितासे है—वहीं तक वह परिमित है। पतिकी आज्ञा शिरोधार्य करनेके लिये स्त्री उसकी दासी है, किन्तु अन्यान्य कार्योंमें वह उसकी अर्धाङ्गना—आधेकी हिस्सेदारिन है। सुखमय जीवन

व्यतीत करनेके लिये इन दासताके विचारोंको लेकर नहीं, किन्तु उच्च और आध्यात्मिक विचारोंको लेकर विवाह होना चाहिये। तभी जीवन सुखी हो सकता है। तभी मनचाही सन्तान उत्पन्न हो सकती है। जो विवाह यश, सम्मान, धन-प्राप्ति किंवा इन्द्रिय-परितृप्ति पर दृष्टि रखकर किये जाते हैं, उनसे इन बातोंकी आशा रखना दुराशामात्र है।

प्राचीनकालमें विवाह एक संस्कार माना जाता था और उसका बड़ा महत्व था। किन्तु आज यह एक खेल तमाशा या नाटक सा हो रहा है। कन्याके लिये वरकी आवश्यकता प्रतीत होनेपर आसपासके लोगोंमेंसे तुरन्त कोई लड़का पसन्द कर लिया जाता है। धनका तो कुछ विचार भी होता है, किन्तु गुणदोष पर कोई ध्यान ही नहीं देता। लड़केके बाह्यरूप पर विशेष ध्यान दिया जाता है। कहना व्यर्थ है, कि बहुधा ऐसे लड़के इन्द्रायणके फल ही सिद्ध होते हैं। किन्तु फिर भी इसपर कोई विचार नहीं करता। कभी कभी तो स्त्रियां ही बातचीत पक्की कर लेती हैं और कभी कभी दोनों पक्षके कुछ आदमी बैठकर कुछ ही समयमें "चट्ट मँगनी पट्ट व्याह" वाली कहावतको चरितार्थ कर देते हैं। इस प्रकारके

~मनचाही सन्तान~

विवाह-प्रहसनका जो शोचनीय परिणाम होता हैं, वह प्रतिदिन ही देखनेमें आता है। सुहागरात कठिनतासे पूर्ण होने पाती है, कि कटुताके लक्षण धीरे धीरे प्रकट होने लगते हैं। कुछ दिनोंतक पाशविक परितृप्तिकी मधुरताके कारण कटुता अधिक बढ़ने नहीं पाती, किन्तु ज्यों ज्यों समय :बीतता जाता है, त्यों त्यों मधुरतामें कमी और कटुतामें वृद्धि होती जाती हैं। अन्तमें वही गृह कलह, वही प्रेमका अभाव और वही विरक्ति दिखाई देने लगती है, जो दोनोंको एक दूसरेसे दूर ही करती चली जाती है।

प्रकृतिका यह नियम हैं, कि जो जैसा करता है वैसा ही फल चखता है, किन्तु विवाहके सम्बन्धमें तो माता पिताका किया बेचारे अबोध बालकोंको भोग करना पड़ता है। यह बहुत ही अनुचित है। माता पिताओंको चाहिये, कि या तो बच्चोंके लिये तनमनसे उपयुक्त संगी खोजें या यह अधिकार ही छोड़ दें। मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवाले नवयुवकोंको तो हम यही सलाह देंगे, कि यदि उनका विवाह न हुआ हो, तो वे इसके लिये किसीके भरोसे न रहें और :स्वयं अपने लिये मन पसन्द गृहिणी खोज निकालें। यदि लाज या संकोचवश

वे ऐसा न करेंगे, तो भविष्यमें मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेमें उन्हें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा।

मनुष्यके व्यक्तिगत सुख और सफलता पर—उसके और उसकी सन्तानके जीवन पर संगी निर्वाचनका जितना प्रभाव पड़ता है, उतना और किसी कार्यका नहीं पड़ता। इसलिये मनुष्यको चाहिये, कि पूरे विचार, विवेचना और सारी बुद्धिके साथ इस कार्यको सम्पन्न करे।

जब कोई मनुष्य एक खेतको खरीदना चाहता है तब वह सावधानीसे जमीनके गुण अवगुणको देख लेता है—उत्पादन और उसके लाभ पर भी विचार कर लेता है। प्रायः इस सावधानी और दूरन्देशीके कारण उसे उस सौदाके लिये पीछे पछताना नहीं पड़ता।

अगर वह जमीन खरीद कर खेती करना चाहे, तो उसे बैल खरीदने पड़ेंगे। इन्हें भी खरीदते समय उसे कम सावधानीसे काम नहीं लेना पड़ता। इसी प्रकार संसारके प्रत्येक व्यवहारोपयोगी वस्तुकी लेन देन करते समय मनुष्यको सावधानताकी आवश्यकता पड़ती है—वह सावधानता रखता भी है, परन्तु वही मनुष्य जब अपने पुत्रके लिये वधू पसन्द करता है, तब किसी भी

नियमसे काम नहीं लेता, कोई भी विशेषता नहीं चाहता, न निर्वाचनके ही किसी नियमका पालन करता है। लड़कियोंके कई गुण आसानीसे देखनेमें आ जाते हैं। कोई लड़की हृष्टपुष्ट हुई, देखनेमें सुन्दर हुई, गृहकार्यमें प्रवीण हुई, तो वह और कोई विचार न कर समझ लेता है, कि यही मेरे पुत्रके लिये उपयुक्त वधू है। उसके साथ तुरन्त वैवाहिक रश्में अदा करा दी जाती हैं, परन्तु इसका फल बहुधा उसके सोचनेसे बिलकुल विपरीत ही होता है।

स्त्रीके साथ खेत और बैलकी तुलना करना अनुपयुक्त प्रतीत हो सकता है, परन्तु सूक्ष्मरूपसे देखा जाय, तो दोनोंमें एक ही स्वार्थ काम करता है। यदि कोई मनुष्य खेत खरीदनेमें भूल नहीं करता, तो उसे अपने या अपने बच्चोंके लिये जीवन-सङ्गी खोजनेमें भी निर्भुल रहना चाहिये, क्योंकि खेतकी अपेक्षा इसका महत्व कहीं अधिक है, परन्तु अधिकांश मनुष्य अन्यान्य सभी वस्तुओंके क्रय-विक्रयमें आवश्यकतासे अधिक सावधानी रखते हैं, किन्तु अपने प्यारे बच्चोंके जीवनका सौदा करते समय बिलकुल अन्धे हो जाते हैं।

जबतक विवाहका वास्तविक उद्देश्य समझमें न आ जाय तबतक जीवन-सङ्गीका निर्वाचन जैसा चाहिये वैसा

नहीं हो सकता। आजकल अधिकांश विवाह लालसा और प्रवृत्तिको चरितार्थ करनेके उद्देश्यसे ही हुआ करते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई उद्देश्य ही नहीं होता। जब मनुष्यके सामने वैवाहिक जीवनका उद्देश्य गृहस्थीका स्थापन, धनोपार्जन, सम्मान-प्राप्ति और हीन प्रवृत्तिकी निवृत्ति करना ही होता है, तब कैसे आशा की जा सकती है, कि उससे कोई महान उद्देश्य सिद्ध होगा—पवित्रतम और उच्चतम आकांक्षाओंकी पूर्ति होगी ?

विवाह करते समय मनुष्यको किसी प्रकारके भावावेशसे काम न लेना चाहिये। खूब सोच विचार कर विना भावावेशके किसी रमणीका पाणि-ग्रहण करना—यही प्रकृत विवाह है, यही प्रकृत मिलन है।

प्रकृत मिलनके विना जीवन सुखमय, उच्चतर और सौन्दर्यपूर्ण नहीं हो सकता। प्रकृत मिलन वही कहला सकता है, जिससे दोनों स्वामी और स्त्री, प्रेमिक और प्रेमिका, मन वचन कर्म और चिन्तासे मिलकर एक हो जायँ। दोनोंमें न किसी प्रकारका विरोध रहे न स्वतन्त्र विचार। अधिक जोरदार प्रवृत्तिवाले स्वामीके साथ साधारण प्रवृत्तिवाली स्त्रीका मिलन होनेसे अथवा नैतिक भावापन्न स्वामीके साथ अनैतिक भावापन्न स्त्रीका विवाह

कर देनेसे कभी मिलन स्वतन्त्रतापूर्ण नहीं हो सकता। घृष्णा और द्वेष ही इसका निश्चित परिणाम होता है। इसी प्रकार चरित्र सम्बन्धी किसी भी विषयमें पार्थक्य रहनेसे मिलनका सच्चा उद्देश्य निष्फल ही प्रमाणित होता है।

यदि मनुष्यकी सामाजिक शक्तियाँ सम्पूर्ण उन्नत हैं, तो स्त्रीकी भी वैसी ही होनी चाहिये। यदि मनुष्य धार्मिक और नैतिक स्वभाववाला हो, तो उसकी स्त्री भी वैसी ही होनी चाहिये। यदि मनुष्यमें पूर्ण उन्नत बोध शक्ति, तर्क-शक्ति और चिन्ता-शक्ति हो, तो उसकी स्त्रीमें भी इन शक्तियोंका पूरा विकास हुआ होना चाहिये। बिना ऐसा हुए न तो इनका जीवन ही पूर्णता प्राप्त कर सकता है, न वे मनचाही सन्तानको ही जन्म दे सकते हैं।

हाँ, एक दो विषयोंमें इस नियमका व्यतिक्रम भी हो सकता है—जैसे अर्थोपार्जन शक्ति। पुरुषमें उपार्जन करने की शक्ति है, परन्तु संचय करनेकी शक्ति नहीं है। यह शक्ति स्त्रीमें रहती है। इसलिये इन भिन्न शक्तियोंकी सहायतासे स्वामी और स्त्री आसानीसे अर्थोपार्जन करके अपनी अवस्थाको सुधार सकते हैं, परन्तु अर्थ प्रकृत सुखका

क्षीण उपकरण मात्र है। इसलिये कितने ही लोग इस वैषम्यके औचित्य पर भी सन्देह प्रकट करते हैं।

कितने ही समय प्रश्न उठता है, कि पुरुष यदि प्रबल कामवृत्तिवाला हो, तो क्या वैसी ही प्रबल वृत्तिवाली स्त्रीसे उसका विवाह करना उचित हो सकता हैं? इसका उत्तर सम्मति सूचक ही हो सकता है। ऐसे मिलनमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि जब असमान प्रवृत्तिवाले पुरुष और स्त्रीका मिलन होता है तभी उनमें द्वेष और घृणाका भाव उत्पन्न होता है, परन्तु जब दोनों ही बराबर काम-वासना रखते हैं, तब इच्छानुसार उसकी पूर्त्ति करते हुए दोनों ही अपनी अपनी शक्ति क्षय करते हैं और अकाल ही रोग, शोक और मृत्युके शिकार बनकर पृथ्वीका भार हलका कर जाते हैं। उनके कारण संसारको क्षति-ग्रस्त नहीं होना पड़ता।

क्या नैतिक भावसे हीन, सांघातिक प्रवृत्तिवाला और मस्तिष्क विकारग्रस्त (ऐसे गुण जिनसे चोरी, डकैती, खून आदि दुष्कार्य होते हैं) मनुष्य वैसे ही स्वभावोंवाली स्त्रीसे विवाह कर सकता हैं? प्रथमतः ऐसे स्वभाववाले मनुष्यको विवाह ही न करने देना चाहिये। यदि विवाह हो भी तो वैसे ही स्वभावोंवाली स्त्रीके साथ होना

चाहिये। ऐसा मिलन होनेसे ही उनके लिये सम्पूर्ण मिलन कहा जा सकता है। कितने ही लोग कहेंगे, कि उन्नत चरित्रवाली स्त्रीसे वैसे मनुष्यका विवाह होनेसे वह उसके चरित्रको सुधार सकती है, परन्तु यह बिलकुल दार्शनिक बात है। ऐसे दृष्टान्त वास्तव संसारमें नहींके बराबर मिलते हैं। ऐसा मिलन होनेपर स्त्रीका अधःपतन होनेकी ही अधिक सम्भावना रहती है इसलिये कौन ऐसी सलाह दे सकता है, कि एक शान्तिकामी धार्मिक स्त्रीका जीवन इस प्रकारका कलुषित और संतप्त बनाया जाय।

इसलिये अब हम इस सिद्धान्त पर पहुंचते हैं, कि चाहे उन्नत स्वभाववाले स्त्री पुरुष हों चाहे अवनत स्वभाववाले, सभी अवस्थाओंमें सामञ्जस्य अवश्य होना चाहिये। पुरुषमें यदि पूर्ण उन्नत प्रवृत्ति हो, सन्तानोत्पादनकी प्रबल इच्छा हो, बाहरी समाज और सोसाइटीकी अपेक्षा गृह संसारमें विशेष आसक्ति हो, तो ऐसे मनुष्यके लिये ठीक वैसे ही स्वभावोंवाली स्त्री पसन्द करनी चाहिये।

जिस मनुष्यमें सहिष्णुता, सत्यप्रियता, बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, उच्चाकांक्षा, महानुभावता, स्वातन्त्र्य-प्रियता

आत्म-विश्वास चरित्रकी दृढ़ता, स्थिरता, जीवनकी सरलता, खान-पानकी सादगी आदि महान गुण हों, उस मनुष्यकी पत्नीमें भी वे गुण होना अत्यावश्यक है।

जिस मनुष्यमें सौन्दर्य और पवित्रताकी अनुभूति अधिक हो, जो प्रकृति और कलाको उच्च और महान दृष्टिसे देखता और अनुभव करता हो, जिसके प्रत्येक दृश्यमें एक गूढ़ और रहस्यमय तत्त्व छिपा हुआ दृष्टिगोचर होता हो, जिसका स्वभाव प्रकृतिके समान ही हास्यमय, सुन्दर और सरल हो, जिसमें दार्शनिक भावोंकी प्रबलता हो, जिसमें तथ्यान्वेषण और मूल अन्वेषणका भाव प्रबल हो, जिसके नैतिक सिद्धान्त उच्च और आध्यात्मिकता विस्तृत हो तथा जिसमें धर्मानुराग, दया, सहानुभूति आदि दैवी गुण विद्यमान हों, उसे वैसे ही गुणोंवाली उपयुक्त पत्नी मिलनी चाहिये।

मन वचन और कर्मकी यह एकता होना मुखाकृति निदान या (Phrenology) के सिवा किसी दूसरे उपायसे कभी सम्भव नहीं। इस मुखाकृति निदानसे मनुष्य समाजका जितना उपकार हो सकता है, उतना किसी भी दूसरे विज्ञानसे नहीं हो सकता। इस विज्ञानके उचित प्रयोगसे स्त्री या स्वामी निर्वाचनमें

किसी प्रकारकी भूल नहीं हो सकती। इससे न तो किसी विपद्‌की ही सम्भावना रहती है, न किसी प्रकारके सन्देहको ही स्थान रहता है। सभी लक्षण साफ साफ मालूम हो जाते हैं। चाहे कोई किसी तरह भी अपने गुणोंको छिपाये, परन्तु यह विज्ञान भीतरका पर्दा खोल कर दिखा देता है। इसके सामने नकाबपोशी फिजूल है। धोखेबाजी, कापट्य और असत्यता व्यर्थ है।

जार्ज स्टर्नस अपनी "हाउ टु मैरी" नामक एक अँग्रेजी पुस्तिकामें दाम्पत्तिक एकताको कुछ नियम देते है।

"ऐसे सङ्गीसे विवाह करो जो ठीक तुम्हारे ही समान हो। तुम्हारा ही प्रतिरूप हो।

(१) उम्र—बूढ़े और युवतीका विवाह ठीक वैसा ही विसदृश है जैसे काला और सफेद रङ्ग।

(२) स्वभाव—जो लोग अध्यात्मिक दृष्टिसे प्रेम करते हो, उन्हें कामुक भावसे विवाह नहीं करना चाहिये।

(३) ज्ञान—मूर्खके साथ पण्डितका विवाह करना दोनोंका प्रहसन खड़ा करना हैं।

(४) विचार—विभिन्न विचारवालेका मिलन कभी स्थायी नहीं हो सकता।

(५) भक्ति—स्त्री और स्वामी दोनोंका इष्टदेव एक ही होना चाहिये। एक ही भक्तिका पात्र होना चाहिये, यह नहीं कि पुरुष शैव हो, तो स्त्री विष्णुकी पूजामें ही लवलीन रहती हो।

(६) रुचि—रुचि भी स्वामी और स्त्रीकी एक होनी चाहिये। पुरुष यदि मांससे घृणा करता हो, तो ऐसा न होना चाहिये कि स्त्री घरमें रोज मांस ही काटा करे।

(७) अभ्यास—अभ्यास भी दोनोंके एक समान होने चाहियें।

यह मान लेनेपर कि मस्तिष्ककी एकता ही सच्चे विवाहका आधार है और मुखाकृति-निदानकी सहायतासे मनोभाव और मस्तिष्क सम्बन्धी एकता निश्चित की जा सकती है, निर्वाचनका काम बहुत सरल हो जाता है। हम प्रत्येक माता पितासे अपने बच्चोंके लिये जीवन-संगी खोजते समय इस विज्ञानसे काम लेनेका अनुरोध करते हैं।

विवाहकी अवस्था, बेमेल विवाहकी खराबियाँ, भावावेश और वास्तविक प्रेम आदि बातों पर हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके। किन्तु फिर भी यह प्रश्न अभी ज्योंका त्यों बना रहता है, कि विवाह करते समय वर और कन्याके

कौन कौन गुण दोषों पर दृष्टि रखनी चाहिये, जिससे उनका विवाह दुःखमय न होकर वे मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकें। हमारे यहाँ मनुस्मृति, शुक्रनीति, गृह्यसूत्र प्रभृति अनेक ग्रन्थोंमें यह बातें विस्तारपूर्वक अंकित हैं। चरक तथा सुश्रुत आदिने भी वैद्यक-शास्त्र की दृष्टिसे इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। हमारी इस ग्रन्थावलीके प्रथम और चतुर्थ पुष्प (दाम्पत्य-विज्ञान तथा काम-विज्ञान) में भी इस सम्बन्धमें अनेक ज्ञातव्य बातोंका उल्लेख किया गया है, अतएव इस विषयको अब हम अधिक बढ़ाना नहीं चाहते। हाँ, स्त्री और पुरुषोंके सम्बन्धमें हम कुछ ऐसी बातें अवश्य अङ्कित कर देना चाहते हैं, जिनसे सन्तानका घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवाले स्त्री पुरुषोंको इन बातों पर अवश्य एक बार विचार कर लेना चाहिये :—

त्याज्य स्त्रियाँ।

(१) उन स्त्रियोंसे कदापि विवाह न करो जो हिस्टीरिया जैसी व्याधिसे पीड़ित हों (२) यदि तुम स्वयं लम्बे चौड़े (कदावर) और हृष्टपुष्ट हो, तो क्षीणाङ्गी, दुर्बल वा छोटी स्त्रीसे विवाह मत करो। ऐसे विवाहसे अच्छी सन्तान नहीं उत्पन्न हो सकती और

सन्तान उत्पन्न होते समय माताका जीवन भी भयमें रहता है। पुरुष चाहे छोटा हो या बड़ा, सन्तानकी दृष्टिसे उसे वही स्त्री पसन्द करनी चाहिये, जो हृष्टपुष्ट और कदावर हो—जिसके समस्त अङ्गोंका पूर्ण विकास हुआ हो (३) आलसी और आराम तलब स्त्रीको कभी अपनी गृहिणी मत बनाओ। ऐसी स्त्रियाँ अपने आलस्य से गृहकार्य तक नहीं निपटा पातीं। इनसे जो बच्चे होंगे वे भी आलसी होंगे। माता अपनी अकर्मण्यताके कारण उन्हें सम्हाल या सुधार भी न सकेगी (४) अपने गोत्र या रिश्तेदारीमें व्याह न करो। इससे सन्तान अच्छी नहीं होती। जहाँतक हो सके दूरके सम्बन्धकी विभिन्न रक्तवाली कन्या पसन्द करनी चाहिये। (५) जो स्त्रियाँ अपने माता पिताको आदरकी दृष्टिसे न देखती हों, जिन्हें बच्चोंसे घृणा हो, जो बेहद शौकीन हों, जो भिन्न मतावलम्बिनी हों, उनसे भी विवाह न करना चाहिये। इन बातोंसे दम्पतियोंमें विषमता उत्पन्न होतीहै और उस विषमताका सन्तान पर भी बुरा प्रभाव पड़ता हैं।

त्याज्य पुरुष।

(१) दुर्व्यसन मनुष्यका सर्वनाश कर देते हैं। इनसे न केवल स्वास्थ्य ही नष्ट होता हैं, बल्कि आर्थिक

कष्ट भी उत्पन्न होते हैं। अतएव जिस पुरुषमें किसी प्रकारका भी व्यसन दिखाई दे, उसके साथ किसी कन्याका विवाह न करना चाहिये। शराब, भंग, तम्बाकू, अफीम, गांजा आदि नशीली और स्वास्थ्य नाशक चीजोंका जो व्यवहार करते हों, जिन्हें जूआ खेलने या वेश्याओंके यहाँ जानेकी लत हो, उनके साथ भूलकर भी कन्याको विवाह न करना चाहिये। (२) बहुत छोटे या ठींगने पुरुषसे भी व्याह न करना चाहिये। हृष्टपुष्ट और कदावर पुरुष ही सन्तानकी दृष्टिसे पति बनाने योग्य होता है। किन्तु यदि स्त्रीका आकार-प्रकार छोटा हो, तो उसका व्याह कदावर पुरुषसे कदापि न करना चाहिये। उसके लिये छोटा ही पुरुष उपयुक्त हो सकता है (३) जिस पुरुषमें धनोपार्जनका सामर्थ्य न हो उसके साथ कन्याका विवाह न करना चाहिये (४) अधर्मी और नास्तिक पुरुषोंके साथ भी कन्याका विवाह न करना चाहिये वर्ना उनकी सन्तान भी वैसी ही अधर्मी और नास्तिक होगी। (५) जो पुरुष अपने माता पिता या भाई बहनोंके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार न करते हों, उनके साथ भी कन्याका विवाह न करना चाहिये। ऐसे मनुष्योंका हृदय बहुधा कठोर हो जाता है और वे अपनी स्त्रीके साथ भी वैसा ही दुर्व्यवहार

करते हैं। (६) केवल धन या जायदाद ही देखकर किसी पुरुषके साथ कन्याका विवाह न करना चाहिये। (७) उस मनुष्यसे साथ भी कन्याका विवाह न करना चाहिये, जो परदेशी या विदेशी हो और जिसके चरित्रके सम्बन्धमें कोई हाल न मालूम हो।

विधवा और विधुर।

न केवल हमारे ही देशमें बल्कि समस्त संसारमें पुरुषोंने अपने विवाहका अधिकार पूर्णरूपसे सुरक्षित रक्खा है। वे एक स्त्रीके मरने पर दूसरी, दूसरीके मरने पर तीसरी और तीसरीके मरने पर चौथी—इस प्रकार एकके बाद एक स्त्रीसे अन्ततक विवाह करते हैं। पाश्चात्य देशोंमें स्त्रियां भी एक पुरुषके बाद दूसरेसे और दूसरेके बाद तीसरेसे विवाह कर सकती हैं। भारतमें कुछ उच्चवर्णके हिन्दुओंको छोड़ अन्यान्य जातियोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है। उच्च वर्णोंकी भी अब विधवा-विवाह के प्रति सहानुभूति होती जा रही है, अतएव सन्तानकी दृष्टिसे इन विवाहोंके सन्बन्धमें भी दो शब्द लिख देना हम आवश्यक समझते हैं।

यह तो मानी हुई बात है, कि एक कुमारी और कुमारका संयोग होने पर जैसी सन्तान उत्पन्न हो सकती है वैसी

विधवा और विधुर या कुमारी और विधुरके संयोगसे नहीं हो सकती। यह बात हम उन लोगोंके लिये कह रहे हैं जो कुछ काल तक दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करनेके बाद विधवा या विधुरावस्थाको प्राप्त करते हैं। जो अक्षत-योनि विधवायें या अछूते विधुर हैं, वे इस नियमसे बाहर रक्खे जा सकते हैं।

परन्तु सबसे अधिक विचारणीय विषय यह है, कि अनेक बार स्त्रियाँ इसलिये विधवा हो जाती हैं, कि उनमें काम-वृत्तिकी अधिकता या कोई ऐसा ही दूसरा दोष होता है जिससे उनका पति अपना बलवीर्य गँवा कर अकालहीमें परलोकका रास्ता लेता है। किसी भी विधवाके साथ विवाह करते समय इस बातको अच्छी तरह जाँच लेना चाहिये, कि उसके पतिकी अकाल-मृत्यु तो नहीं हुई या उसको मृत्युका कारण वह स्वयं तो नहीं है? यदि कोई सन्देह हो, तो उसके साथ भूल कर भी विवाह न करना चाहिये।

इसी तरह जो पुरुष विधुर हों उनके सम्बन्धमें भी जाँच करनी चाहिये। जिन पुरुषोंकी स्त्रियाँ बारम्बार मरती रहती हैं, वे बहुधा स्वयं अपनी स्त्रियोंकी मृत्युके जिम्मेदार होते हैं। वैसे भी अधिकांश स्त्रियाँ सन्तानो-

त्पत्ति या प्रसवसे सम्बन्ध रखनेवाली बीमारियोंके ही कारण कालकवलित होती हैं, परन्तु बाज बाज पुरुष तो ऐसे अत्याचारी होते हैं, कि वे अपने पाशविक अत्याचार द्वारा स्त्रियोंका स्वास्थ्य इस तरह नष्ट कर देते हैं, कि वे शीघ्र ही मृत्युकी गोदमें प्रश्रय ग्रहण करनेके लिये बाध्य होती हैं। यह लोग एक प्रकारसे स्त्रियोंका खून ही करते हैं, किन्तु समाज या सरकारकी कानून-पोथीमें इन्हें दण्ड देनेका कोई विधान नहीं है। किसी भी कन्याके माता पिताको ऐसे पुरुषके साथ भूल कर भी अपनी कन्याका विवाह न करना चाहिये। जहाँ इस प्रकारके अत्याचारोंका प्रावल्य होता है, वहाँ मनचाही सन्तान उत्पन्न होना तो दूर रहा, स्वास्थ्य और जीवनकी भी हत्या हो जानेकी संभावना रहती है।

इन सब बातोंके अतिरिक्त धर्म-शास्त्र, वैद्यक-शास्त्र, नीति-शास्त्र, समाज-शास्त्र, काम-शास्त्र, सामुद्रिक-शास्त्र तथा श्रुति स्मृतियोंमें स्त्री पुरुषोंके सम्बन्धमें जो बातें बतलाई गयीं हैं, उनपर ध्यान रखकर जो कोई विवाह करेगा, उसे कभी पश्चाताप न करना पड़ेगा। हमारे यहाँ विवाह एक प्रधान संस्कार माना गया है, अतएव इस सम्बन्धमें प्राचीन ऋषि-मुनि और विद्वानोंने बहुत कुछ

लिखा है। उन सबकी सम्मतियां विचारणीय और ग्राह्य मानी जा सकती हैं, किन्तु सन्तानकी दृष्टिसे वैद्यक-शास्त्र-की सम्मतिको ही प्रधानता देनी चाहिये। इन सब सम्मतियोंके अनुसार जो लोग अवस्था, शील-स्वभाव, रूपसौन्दर्य, गुणदोष आदि बातों पर विचार कर, अपने अनुरूप जीवन-संगी खोज निकालेंगे, वे निःसन्देह मन-चाही सन्तान उत्पन्न करनेमें सफलता प्राप्त करेंगे।

६

संयमी जीवन।

विवाह होनेके बाद यह प्रायः देखा गया है, कि लोग अपने जीवनमें विलासकी मात्रा इतनी अधिक बढ़ा देते हैं, कि कठिन नियमोंके पालन द्वारा सञ्चित किया हुआ उनका समस्त बल-वीर्य कुछ ही दिनोंमें नष्ट हो जाता है। सन्तानको उत्तम बनानेके लिये कुमारावस्थामें ब्रह्मचर्यके द्वारा जो शक्ति सञ्चित की जाय, वह विवाहित अवस्थामें भी सुरक्षित रहनी चाहिये। इसी शक्ति पर सन्तानका सारा दारोमदार रहता है। उत्तम गृहस्थ वही है जो अपनी इस शक्तिका दुरुपयोग नहीं करता और गृहस्थाश्रममें भी ब्रह्मचर्यके नियमों पर ध्यान रखता है। ऐसे मनुष्यको रोग शोक या अकाल बार्द्धक्यका शिकार नहीं होना पड़ता, साथ ही उसकी सन्तान भी हृष्टपुष्ट, निरोग, सद्गुणी और उत्तम होती है।

किन्तु हमारी इन बातोंसे कोई यह न समझे, कि हम आजीवन ब्रह्मचारी ही रहनेकी सलाह दे रहे हैं। हम जानते हैं, कि ऐसी सलाह सबके लिये व्यावहारिक नहीं हो सकती। आजीवन ब्रह्मचर्य पाला भी नहीं जा सकता। इससे ईश्वरके सृष्टि-कार्यमें भी बाधा पड़ती है। यदि विवाह करनेके बाद भी ब्रह्मचर्य ही पालन करना हो, तो विवाह ही क्यों किया जाय? हम ऐसे जीवनके घोर विरोधी हैं। पिछले अध्यायोंमें विवाहकी आवश्यकता बतलाते हुए हमने अविवाहित जीवनकी निन्दा भी की है। इसलिये हमारे कहनेका यह तात्पर्य कदापि नहीं हो सकता, कि मनुष्य विवाहके बाद भी अविवाहितोंकासा ही जीवन व्यतीत करे। किन्तु हम उस जीवनकी निन्दा अवश्य करते हैं, जिसमें असीम काम-वासना द्वारा समूची शक्ति क्षय कर दी जाती है। ऐसा जीवन सभी दृष्टियोंसे निन्द्य और हेय है। जिसे जीवनमें सफलता प्राप्त करनी हो, जिसे अपना यौवन अधिक समय तक सुरक्षित रखना हो, जिसे आजीवन स्वस्थ रहना हो और जिसे मनचाही सन्तान उत्पन्न करनी हो, उसके लिये विवाहके बाद भी संयमी-जीवन बिताना नितान्त आवश्यक है।

~मनचाही सन्तान~

मनुष्यके शरीरके साथ रोग, शोक, दुःख और अकाल-मृत्युके जो नाना प्रकारके उपसर्ग लगे रहते हैं, उनका एकमात्र कारण मनुष्यकी सञ्जीवनी शक्ति या वीर्यका दुरुपयोग ही है। संसारकी उन्नतिमें सबसे बड़ी बाधा भी इसीके द्वारा पहुंचती है। यदि मनुष्य संयमी जीवन व्यतीत करे—अपनी इस सञ्जीवनी-शक्तिका दुरुपयोग न कर उसका सदुपपोग करना सीखे, तो निःसन्देह उसका परम कल्याण हो सकता है। सन्तानकी दृष्टिसे भी यह विषय बहुत गंभीर और महत्वपूर्ण है, अतएव हम अपने पाठकोंको इसके सम्बन्धमें कुछ आवश्यक बातें बतलाये बिना नहीं रह सकते।

इसमें सन्देह नहीं, कि शक्तिका यह दुरुपयोग और उसके शोचनीय परिणाम संयम सम्बन्धी नियमोंकी अनभिज्ञताके ही कारण उत्पन्न होते हैं। यद्यपि ऐसे लोगोंकी भी संख्या अल्प नहीं है, जो जान बूझकर भी पद पद पर प्रकृतिके नियमोंको भंग करते रहते हैं, तथापि संयमके नियमोंको जो लोग भंग करते हैं, उनमेंसे अधिकांश वे ही लोग होते हैं जो इस विषयसे अनभिज्ञ होते हैं। ऐसे लोगोंको सन्मार्ग दिखानेके लिये इस विषय पर जितना ही लिखा जाय उतना ही कम है।

~मनचाही सन्तान~

मनुष्यके शरीर और आत्माको परिचालित और अनुशासित करनेके लिये जितने भी विधि-नियम बने हुए हैं, उनमेंसे मनुष्यके सुख स्वाच्छन्द्य और जीवनकी सफलता पर जितना अधिक प्रभाव संयम सम्बन्धी नियमोंका पड़ता है, उतना प्रभाव दूसरे किसी भी नियमका नहीं पड़ता। इसलिये मनुष्यके लिये यह सबसे अधिक आवश्यक है, कि वह इन नियमों पर सबसे अधिक ध्यान रक्खे।

संयमका शाब्दिक अर्थ है—"सभी प्रकारके इच्छित और अनिच्छित यौनिक दुर्व्यसनोंसे परिवर्जित रहना और उन दुर्दान्त दुर्व्यसनोंकी शक्तिसे विशेष जानकार होते हुए भी जीवनको पवित्र और उन्नत बनानेके लिये उन दुर्व्यसनोंका सम्पूर्ण परिहार करना।" हम पहले ही बतला चुके हैं, कि इसका अर्थ यह कदापि नहीं है, कि उस संयोगका भी वहिष्कार कर दिया जाय जो सन्तान उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे किया जाता है। सन्तानके उद्देश्यसे संयोग करना उत्पादिका शक्तिका सदुपयोग करना है। जो केवल सन्तानोत्पत्तिके ही उद्देश्यसे काम-चालना करता है, वह असंयमी नहीं कहा जा सकता। शास्त्रकारोंने ऐसे गृहस्थको ब्रह्मचारियोंकी ही श्रेणीमें परिगणित किया है।

परन्तु प्रत्येक मनुष्यके लिये संयमकी कोई निश्चित परिभाषा बनाकर रख देना भी उचित नहीं है, न प्रत्येक मनुष्यका उससे बराबर उपकार ही हो सकता है।

स्त्रीके गर्भ-संचार और प्रसवका समय निरूपित होनेसे सहवासकी यह समस्या विशेष रूपसे हल हो सकती है, क्योंकि सहवास स्त्रीके सम्पूर्ण उत्साह पर ही निर्भर रहना अच्छा है। मासिक ऋतुस्रावके बाद ही प्रत्येक स्वस्थ और निरोग स्त्रीमें इस सम्बन्धका उत्साह देखा जाता है। इसलिये यही समय उसके लिये विशेष सुखकर और उसकी उत्पादक शक्तियोंके सम्पूर्ण अनुकूल समझना चाहिये। इस समय उसकी सारी शरीर शृङ्खला सन्तानोत्पादनका प्रेममय और पवित्र कार्य पूरा करनेके लिये तैयार रहती है।

इस समय पुरुष और स्त्रीका जो संसर्ग होता है वह सन्तानोत्पादनकी इच्छासे होता है। इसलिये यही समर्थनीय है। इसके बाद गर्भ-सञ्चार होते ही संसर्गका समय उत्तीर्ण हो जाता है। फिर गर्भाधानके नौ महीने और प्रसवके बाद प्रायः एक वर्ष (बच्चेके दाँत उठनेके समय तक) जबतक पुनः रज-स्राव नहीं होता, तबतक संसर्ग विलकुल निषिद्ध है।

यही प्रकृतिका स्थायी नियम है—स्पष्ट संकेत है। मानव-समाजकी उत्पादनशील शक्तियोंके परिचालनमें ईश्वरका यही एकमात्र चिर दिव्य नियम है। जो कोई मनुष्य प्रकृतिके इस कार्य, ईश्वरके इस नियमको किसी भी प्रकारसे भंग करता है, वह अवश्य ही उसका उपयुक्त दण्ड भोगता है। यह नियम आदि कालसे चला आता है।

यद्यपि जीवनकी पवित्रता और मनुष्य तथा स्त्रीके कड़े संयमके लिये यह बीस इक्कीस महीनेका समय ही निश्चित किया गया है, परन्तु हमारी समझमें यह अवधि और भी विस्तृत करनी आवश्यक है। इक्कीस महीनेकी उत्पादन चेष्टामें माताकी शक्ति इतने अधिक परिमाणमें क्षीण हो जाती है, कि उसे पूर्ण करनेके लिये बच्चेके दाँत उठनेके बाद भी बारहसे पन्द्रह महीने तक विश्रामके लिये अपरिहार्य आवश्यकता पड़ती है। स्वस्थ स्त्रीको शक्तिका पुनरुद्धार करनेके लिये इतना अधिक समय नहीं भी आवश्यक हो सकता है, परन्तु चूंकि सम्पूर्ण स्वस्थ औरतें इनी गिनी ही मिलती हैं। इसलिये यही व्यवस्था मान लेना अच्छा है। इस प्रकार बीचमें तीन वर्ष ऐसे पाये जाते हैं, जिनके भीतर स्त्री या पुरुषकी चेष्टासे

संसर्ग क्रियाको उत्तेजित करना कभी अनुमोदित नहीं हो सकता है। जो लोग स्वास्थ्य और सुखकी आशा रखते हों, उन्हें इस नियमका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

"जो स्त्री सन्तानका पालन नहीं कर सकती, उसके सम्बन्धमें किस प्रकारकी व्यवस्था होनी चाहिये?" इस प्रश्नका उत्तर यह हो सकता है, कि जो स्त्रियाँ स्वास्थ्य-हीनता अथवा अन्य किसी कारणवश सन्तान-पालनमें असमर्थ हों, उन्हें विवाह करना और कमसे कम सन्तान प्रसव करना कभी उचित नहीं।

अतएव संयमी मनुष्य वही कहला सकता है, जो योग्य सन्तान उत्पादन करनेकी शक्ति रखता हो, अपनी सच्ची जीवनचर्या और दृढ़ इच्छा-शक्तिके द्वारा केवल उपयुक्त समय पर ही उत्पादिका-शक्तिका उपभोग करता हो और केवल सन्तानोत्पादनके उद्देश्यसे ही कामचालना करता हो।

हमें मालूम है, कि चिकित्सा व्यवसायी और समाज सुधारक लोगोंके नियम हमारे इस नियमसे बिलकुल भिन्न प्रकारके होते हैं और हमें जरा भी सन्देह नहीं, कि और इस सिद्धान्तके कितने ही विरोधी भी खड़े हो सकते

हैं ; परन्तु साथ ही हमें यह भी पूरा विश्वास है, कि चाहे कोई कैसा भी विरोधी प्रमाण उपस्थित करे हमारे इस सत्य सिद्धान्तको जरा भी विचलित नहीं कर सकता।

संयमके जीवनमें जो कई एक प्रधान आपत्तियाँ उठायी जाती हैं, उनमेंसे कुछ नीचे दी जाती हैं।

कितने ही लोग यह दलील पेश करते हैं, कि बड़े बड़े ऋषि मुनि, जो तपाश्रममें रहते और कन्दमूल खाते हैं, उनकी भी जब तपस्या भङ्ग हो जाती है, अर्थात् वे लोग भी जब अपनी प्रवृत्तियोंको दमन करनेमें समर्थ नहीं होते तब साधारण मनुष्य जो कि रात दिन प्रलोभनोंके भीतर रहता है, उसके लिये प्रवृत्तियोंको रोककर संयमका व्रत पालन करना किस प्रकार सम्भव है ? इस दलीलका कुछ भी अर्थ नहीं है। जो संयमी पुरुष होते हैं, वे बनमें भी संयम रख सकते हैं और शहरमें रहकर भी संयम रख सकते हैं। बल्कि बनमें रहनेसे शारीरिक और मानसिक परिश्रम काफी परिमाणमें न होनेके कारण काम-वासना प्रबल आकार धारण कर सकती है। दूसरी ओर क्षमताशाली और असाधारण मेधावी पुरुष शहरमें रहते हुए भी आजन्म संयमी और ब्रह्मचारी रह सकते हैं।

कितने ही लोग यह शंका करते हैं, कि उपयोगके अभावसे पुरुषाङ्गका आकार क्षीण हो सकता है। यह कोरी कल्पना है, ऐसा होते हुए कभी देखा नहीं जाता। बल्कि अधिक प्रयोगसे ही उस अङ्गके ह्रासकी सम्भावना अधिक रहती है। बिना प्रयोगकी अवस्थामें यदि पुरुषाङ्ग क्षीण होता जा रहा हो, तो जाँच करना चाहिये कि उसका असली कारण क्या है। ऐसा करनेसे अवश्य ही मालूम हो सकता है, कि उसका कारण प्रयोगका अभाव न होकर कुछ और ही है।

एक और भी आपत्ति यह उठायी जा सकती है, कि तीन चार वर्ष तक इस प्रकार कठिन संयमसे जीवन व्यतीत करने पर, व्यवहारके अभावसे मनुष्यकी उत्पादन-शक्तिका लोप हो सकता है। यह भी एक मिथ्या भ्रम है। ऐसा न आजतक कभी हुआ है और न होनेकी सम्भावना ही है।

इनके अतिरिक्त संयमके विरुद्ध और क्या आपत्तियां हो सकती हैं? कुछ भी नहीं। हाँ, यदि कोई अपने स्वभाव और कमजोरियोंपर पर्दा डालनेके लिये अन्धभावसे अपनी दुष्प्रवृत्तियोंका समर्थन करे और अपने शुद्ध और पवित्र जीवन व्यतीत करनेमें असमर्थ होनेके कारण संयमके

नियमोंको ही असाध्य और अव्यवहार्य कहकर पवित्र भावसे कामुकता और इन्द्रिय-शक्तिका प्रयोग करे तो बात ही अलग है, परन्तु ऐसे लोगोंके सिद्धान्तका मूल्य ही क्या है जो स्वयं अपनी इन्द्रियोंके ही दास हैं। असल बात यह है, कि आदर्श आदर्श ही रहता है। हम उसका पालन नहीं कर सकते, इसलिये उसमें न तो कोई परिवर्तन ही हो सकता न वह बुरा ही कहा जा सकता है।

जो आदमी विलासमय जीवन व्यतीत करता है वह आंशिक या सामूहिक भावसे :—

(१) अपनी स्नायविक श्रृङ्खलाको कमजोर बनाता है, जिससे पाचन प्रणालीमें गोलमाल होने लगता है और उदर, यकृत तथा आमाशय आदिके रोग पल्ला पकड़ लेते हैं। अजीर्ण, गठिया, संन्यास, लकवा और ऐसे कितने ही रोग इसी कारणसे होते हैं।

(२) फेफड़ोंको कमजोर बनाता है और क्षयकाशको निमन्त्रण देकर बुलाता है।

(३) अपनी कर्मेन्द्रियोंको जैसे आँख, कान, रसना आदिकी शक्तियोंको अक्षम बना डालता है।

(४) मेधाको अव्यवस्थित बना डालता है, जिससे

स्मरण-शक्ति क्षीण हो जाती है। अनुभव-शक्ति और चिन्ता-शक्ति भी कमजोर हो जाती है। नैतिक भावोंका ह्रास हो जाता है। आत्मा कलुषित हो जाती है और प्रेम, धर्म तथा ईश्वरका अस्तित्व उसके भीतरसे विलुप्त हो जाता है।

(५) अपनी वृद्धिको सङ्कुचित करता है और अकाल ही वृद्धत्वका शिकार बनता है।

(६) अपने मनुष्यत्वको नष्ट करता है और उससे उत्पन्न हुई सन्तानें चिररोगी, विकृताङ्ग और क्षीणायु होती हैं। वे अकालमें ही कालकी ग्रास बन जाती हैं।

(७) वह प्रकृतिकी सौन्दर्यमयी सृष्टिको कलङ्कित करनेकी चेष्टा करता है। ईश्वरके कर्म-चक्रमें उसका जीवन निष्फल हो जाता है।

परन्तु जो आदमी संयम और पवित्रताके साथ जीवन व्यतीत करता है उसकी :—

(१) स्नायविक श्रृङ्खलायें मजबूत और शक्तिशाली होती हैं।

(२) कर्मेन्द्रियाँ—आंख, कान आदि—सूक्ष्म और तेज होती हैं।

(३) पाचन प्रणाली श्रृङ्खलित रहती है, जिससे कोई रोग पास फटकने नहीं पाते।

(४) शारीरिक वृद्धिमें वाधा न पड़नेके कारण मनुष्य पूर्णाङ्ग होता है। उसके सभी अवयव हृष्टपुष्ट होते हैं, जिससे अधिक उम्र होनेपर भी शरीर झुकनेका नाम नहीं लेता और वह मरते समय तक स्वास्थ्य और निरोगिताका दुर्लभ सुख उपभोग करता है।

(५) मस्तिष्कका कार्य-क्षेत्र विस्तृत होता है, स्मरण-शक्ति तीक्ष्ण होती है, अनुभव और चिन्ताकी शक्तियाँ बढ़ाती हैं। स्वभाव शान्त, धीर, गम्भीर, नम्र और चरित्र महान उन्नत होता है। नैतिक भावोंकी भी उन्नति होती है। प्रेमका स्फुरण और विकास होता है। आत्मा पूर्ण विकसित होकर ईश्वरत्वको प्राप्त होती है—मनुष्य शैतानसे ईश्वर बन जाता है।

(६) उत्पादिनी-शक्ति संरक्षित रहती है और सुयोग्य एवम् चिरसुखी सन्तान उत्पन्न करनेमें कभी निष्फल नहीं होती।

विलासमय जीवन अथवा अर्द्ध संयमी और पूर्ण संयमी जीवनके परिणाममें यही स्थूल अन्तर है। अब सभी निर्णय कर सकते हैं, कि कौन जीवन अधिक वाञ्छनीय है।

ईश्वरने उत्पादक अङ्गको सन्तानोत्पत्ति किंवा मनुष्य

जातिकी रक्षाके लिये ही उत्पन्न किया है, इसको प्रत्येक विचारवान् और निष्कपट हृदयवाले मनुष्य स्वीकार करेंगे और जब इन उत्पादक अवयवोंका प्रयोग किसी भी दूसरे उद्देश्यसे किया जाता है, तब आत्माके निगूढ़तम सौन्दर्यको नष्ट किया जाता है और उसका फल भी मनुष्यको हाथोंहाथ भोगना पड़ता है।

संयममय जीवनकी उपकारिता जानते हुए बहुत लोगोंको अपने अभ्यस्त जीवनको परिवर्त्तित कर, संयमका पालन करते समय बहुत ही कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, परन्तु जो लोग दृढ़ निश्चय कर लेते हैं, उनके लिये बुरे अभ्यासोंको छोड़ना भी कोई बड़ी बात नहीं हैं।

बहुत लोग चेष्टा करके भी संयमके नियमोंका यथोचित पालन नहीं कर सकते। इसका कारण यह होता है, कि उनमें इच्छा-शक्ति, संकल्पकी दृढ़ता और शारीरिक नियमोंकी अभिज्ञताका सम्पूर्ण अभाव होता है। जो मनुष्य शराब पीता है, वह इस नशेको त्यागते समय पहले कमजोरी, मनका उच्चाटन और स्नायविक दुर्बलताका अनुभव करता है, उसको उत्कट इच्छा होती है, कि उस अभ्यासको वह पुनः आरम्भ करे। इसी प्रकार जो मनुष्य बराबर विलासमय जीवन व्यतीत करता आया

है, उसको संयमका नियम आरम्भ करने पर पहले बहुत ही उच्चाटन मालूम होगा और इन्द्रिय-परिचालनकी अदम्य आकांक्षा उत्पन्न होगी। विशेष करके यदि वह पहले हीके अनुसार अपने खान पानकी व्यवस्था बनाये रखेगा। परन्तु मनुष्यमें पवित्रताकी रक्षा और संयमके पालनकी इच्छा-शक्ति जब प्रबल होती है, तब थोड़ी सी गड़बड़ीके बाद उसकी प्रणाली विकार-मुक्त हो जाती है। इसके बाद आगे दिये हुए नियमोंके अनुसार चलने पर उसकी श्रृङ्खलाका नैतिक विभाग धीरे धीरे अपनी स्वाभाविक अवस्थामें आ जाता है।

जिस मनुष्यने संयममय जीवनका अभ्यास कर लिया है, उसको चाहिये कि सन्तानोत्पादनके सिवा किसी भी दूसरे उद्देश्यसे इन्द्रिय-चालना न करनेके लिये सर्वदा सतर्क रहे, क्योंकि इस कठिन अभ्यासको छोड़ कर जहाँ थोड़ा सा भी नियमका व्यक्तिक्रम हुआ वहां असंयमके गड्ढेमें गिरना अनिवार्य है। जब मनुष्यका पैर फिसल जाता है तब कोई अवलम्बन न पानेसे वह नीचे हीको चला जाता है। नीचेसे ऊपर चढ़ना अध्यवसाय और परिश्रमके द्वारा सम्भव है, क्योंकि उस समय मनुष्य एक लक्ष्यके द्वारा परिचालित होता रहता है, परन्तु जब

मनुष्य लक्ष्य-च्युत होकर अधःपतित होता है, तब उसके लिये कोई भी अवलम्बन नहीं रहता जिसको पकड़ कर वह फिर अपने लक्ष्य-पथ पर लौट कर आ सके। संयमका पथ ऐसा हो विकट है। वहाँतक आप चेष्टा करके भले ही पहुंच सकते हों, परन्तु उस पथसे भ्रष्ट होनेपर फिर वहाँ लौट नहीं सकते।

संयममय जीवनका अभ्यास करनेके नियमसे ही इस विषयकी महत्ता विशेष रूपसे प्रकट हो जाती है। जो मनुष्य संयमी मानव-समाजकी सेनामें भर्ती होना चाहता है, उसको पहले कितनी ही जीवनकी प्रिय वस्तुओंका त्याग करना पड़ता है। यह लक्ष्य बहुत ही उच्च है और इसको प्राप्त करनेके लिये कितनी असुविधाओं और कितनी ही परीक्षाओंसे उत्तीर्ण होकर आगे बढ़ना पड़ता है। जिस मनुष्यके पास दृढ़ इच्छा-शक्ति, नवयौवनका अदम्य उत्साह और शारीरिक बल तथा आत्माकी दृढ़ता और पवित्रता होती है, वह मनुष्य सभी बाधा और विघ्नोंपर विजय प्राप्त करके अपने लक्ष्य-पथपर पहुंच कर ही दम भरता है।

जो मनुष्य संयमव्रतका पालन करना चाहता है, उसको चाहिये कि नियम और उपदेशको उपेक्षा की दृष्टिसे न देखे। सभीका अक्षरशः पालन करनेकी चेष्टा करे।

तभी उसकी वाञ्छित अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। कोई भी आदमी चाहे वह संयमी हो या विलासी, नीचे लिखे नियमोंका पालन करनेसे वह बड़ेसे बड़े रोगसे भी छुटकारा पा सकता है, परन्तु उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये पूर्ण विश्वास और दृढ़ अध्यवसाय होना अनिवार्य है।

जो लोग संयममय जीवन बिताना चाहते हों, उन्हें निम्नलिखित अभ्यासोंका तुरन्त त्याग करना चाहिये :—

(१) सभी प्रकारसे तम्बाकूका सेवन (२) सभी प्रकारके शराबका सेवन (३) असमयका भोजन और गुरु भोजन (४) तीता मीठा रसास्वादन (५) सभी प्रकारका मांस सेवन (६) अधिक परिमाणमें नमक, मिर्च, चटपटे पदार्थ और गरम तथा उत्तेजक मशाले (७) चाय और काफी (८) कसे कपड़े और पोशाक (९) आलस्य और मानसिक या शारीरिक कार्य-हीनता (१०) मुलायम गद्दीदार बिछौना और तकिया (११) अन्धेरा और बेहवादार कमरा (१२) सवेरे उठने पर भी बिछौने पर पड़े रहना (१३) कुसंसर्ग (१४) अव्यवस्थित इच्छा (१५) शरीरकी अस्वच्छता (१६) पैटेण्ट और बाजारू दवायें (१७) भंग, अफीम, गांजा आदि नशीली चीजें (१८) नीम हकीम।

उपरोक्त सूत्रोंमें प्रत्येक बात दो बार लिखी हुई मालूम होगी, परन्तु जो लोग संयममय जीवन बिताना चाहते हों, उनको चाहिये कि प्रत्येकको सूक्ष्म भावसे त्याग दें। हम दावेके साथ कह सकते हैं, कि जो मनुष्य सम्पूर्णतः या अंशतः इसके अनुसार सभी वस्तुओंका वहिष्कार नहीं कर सकेगा, वह स्वस्थ, निरोग, संयमी यहाँतक कि धार्मिक मनुष्य भी नहीं हो सकेगा। धार्मिक मनुष्य न होनेका मतलब यह है, कि जो घृणित पदार्थोंका सेवन करेगा और ऐसे घृणित भावसे जीवन-यापन करेगा, उसकी आत्मा पवित्र, निर्मल और प्रेममय नहीं हो सकती। जिस आत्मामें पवित्रता नहीं उसमें धर्म या ईश्वरका वास होना कभी सम्भव नहीं। वैसे ही मनुष्य नास्तिक होते हैं। आजकल इन विलासमय घृणित वस्तुओंकी ओर मनुष्योंका मन आकर्षित होता जा रहा हैं, यही सब वस्तुयें आजकलकी सभ्यताकी उपकरण हो रही है, इसलिये आजकल मनुष्यमें धर्मभाव भी घटता जा रहा है। जहाँ इनका प्रचार अधिक है, वहीं नास्तिकता भी अधिक देखनेमें आती है।

जो लोग रोग, शोक और विलासिताके दुष्परिणाम एवम् घृणित जीवनसे बचना चाहते हों, उन्हें उपरोक्त

अभ्यासों और वस्तुओंका तुरन्त त्याग करना चाहिये। साथ ही वे यदि निम्नलिखित बातोंका अभ्यास करेंगे, तो निःसन्देह सुख, स्वच्छन्दता और चिरायुता आदि महान लाभोंके भागी होंगे।

(१) परिमित और स्वाभाविक भोजन (२) दिन और रातमें दो बार भोजन, दोनों बार दस बजेके करीब। भोजनमें एक नियम होना चाहिये (३) खानेकी चीजोंमें दाल, भात और रोटी आदि साधारण और निर्विकार चीजोंको ही स्थान देना चाहिये। पके और सुस्वादु फल भी ज्योंके त्यों खाये जा सकते हैं। आलू, मटर, गोभी आदि तरकारियाँ भी लाभदायक हैं, किन्तु इन चीजोंको खटाई, मिठाई या मिर्च मशाला देकर विकृत बना डालना ठीक नहीं। जहाँतक हो सके इन्हें प्रकृत रूपमें ही व्यवहार करना चाहिये (४) दूध कम परिमाणमें, घी मक्खन छेना बहुत थोड़ा परन्तु यदि ताजा और स्वादिष्ट हो (५) घासकी तकिया और बिछौना पर सोना (६) रोज ठीक एक ही समय पर शय्यासे उठना और नियमित समय बिछौने पर जाना (७) शयन-गृहमें रात दिन हवा और रोशनीका आवागमन रहना चाहिये (८) मुख, दाँत और सारे शरीरको

१०

सवेरे अच्छी तरह धो पोंछ कर स्नान करना चाहिये (९) भोजनके समयके अतिरिक्त जागृत अवस्थामें सर्वदा कोई न कोई शारीरिक और मानसिक कार्य करते रहना चाहिये (१०) सन्ध्या अथवा सवेरे प्रतिदिन पांचसे छः मील तकका भ्रमण (११) दृढ़ संकल्प और इच्छा-शक्तिका प्रयोग (१२) धार्मिक भावोंका स्फुरण।

इन नियमोंका उचित रूपसे व्यवहार करने पर मनुष्य स्वास्थ्य, निरोगिता, पवित्रता, आत्माकी महानता और सबसे बढ़कर संयममय जीवनका अभ्यास कर सकता है। इन नियमोंका उचित रूपसे पालन करने पर स्त्रियाँ सौन्दर्य प्राप्त कर सकती हैं। वह सौन्दर्य जो शरीर, चेहरा और चरित्र सभीको दर्शनीय और शोभायमान बना सकता है। इनसे स्वास्थ्य, निरोगिता, शरीर और मनकी शक्ति, पवित्रता और सतीत्व—सभी महानगुणों की वे अधिकारिणी हो सकती हैं। पुरुषोंको भी बल-वीर्यका संचय होने पर यही लाभ हो सकते हैं और इस प्रकारके संयमी स्त्री पुरुषोंका संयोग होनेपर उन्हें जिस अमूल्य रत्नकी प्राप्ति होती है, उसीका नाम है "मनचाही सन्तान!"

१०

सन्तानोत्पादनकी योग्यता ।

जबतक किसी स्त्री या पुरुषका विवाह नहीं होता, तबतक वह सन्तान उत्पन्न करनेमें अक्षम होता है। विवाह हो जाने पर स्त्री और पुरुषका ठीक उसी तरह संयोग हो जाता है, जिस तरह एक किसान और खेतका। इस संयोगसे दोनोंकी अक्षमता दूर हो जाती है और वे ईश्वरके सृष्टि-कार्यमें सहायता पहुंचानेके लिये अग्रसर होते हैं।

परन्तु संसारमें हम देखते हैं, कि एक चतुर किसान खेत मिलते ही उसमें बीज नहीं बो देता। वह एक बार खेतकी परीक्षा करता है, कि वह बीज बोने योग्य है या नहीं? यदि देखता है, कि खेतमें किसी तत्वका अभाव है, तो खाद द्वारा उसकी पूर्त्ति करता है। फिर जुताई आदि परिचर्याओं द्वारा उसे बोनेके उपयुक्त बनाता है।

इसी समय वह उत्तमसे उत्तम बीज संग्रह करने पर ध्यान रखता है। इसके बाद वह उचित समयकी प्रतीक्षा करता है। जब वर्षा होती है और उसे मालूम होता है, कि अब बीज बोनेका उपयुक्त समय आ गया, तब वह पुनः एक बार अपने समस्त साधनों पर दृष्टिपात कर लेता है। जब उसे विश्वास हो जाता है, कि बीज बोनेसे मेहनत व्यर्थ न जायगी, तब वह यथाविधि बीज बोता है। कहना व्यर्थ है, कि ऐसे ही किसान एक दिन अपने खेतोंको 'शस्य-श्यामला' देखनेका सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

सन्तानके सम्बन्धमें भी ऐसा ही होना चाहिये। पुरुषकी तुलना किसान और स्त्रीकी खेतसे की जा सकती है। विवाह होने पर पुरुषको एक बार अच्छी तरह देख लेना चाहिये, कि स्त्री गर्भ-धारण करने योग्य है या नहीं। यदि उसमें कोई त्रुटि दिखाई दे, तो समुचित उपचारों द्वारा उसकी पूर्ति करना चाहिये। इसी समय उसे अपनी शारीरिक अवस्था पर भी विचार कर लेना चाहिये। यदि स्वास्थ्य खराब हो, बलवीर्यकी कमी हो या कोई दूसरी त्रुटि हो, तो उसे भी दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इसके बाद गर्भाधानके लिये उचित समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। जब सब साधन जुट जांय, तब पुनः एक बार

सबकी निगरानी कर लेना चाहिये। इसके बाद ऋतुकाल आदि बातों पर विचार कर यथाविधि गर्भाधान करना चाहिये। इतनी सावधानीके साथ जो गर्भाधान होगा, उसका परिणाम अवश्य मनचाही सन्तानके रूपमें परिदर्शित होगा।

विवाह किस अवस्थामें होना चाहिये, विवाहके समय स्त्री पुरुषकी शारीरिक श्रृङ्खला कैसी होनी चाहिये आदि बातों पर गत अध्यायोंमें विचार किया जा चुका है। जिन स्त्री पुरुषोंकी अवस्था छोटी बड़ी या विषम है, जो विवाह बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह या अनमेल विवाहके नामसे सम्बोधित किये जा सकते हैं, वे स्त्री पुरुष तो वास्तवमें विवाह हीके योग्य नहीं होते। ऐसी अवस्थामें सन्तानोत्पत्तिके सम्बन्धमें उनकी योग्यता पर विचार ही कैसे किया जा सकता है? हाँ, जो वयस्क हैं, युवा हैं, पूर्णाङ्ग हैं, उन्हें सन्तान उत्पन्न करनेके पहले एक बार अपनी योग्यता पर विचार कर लेनेकी सलाह अवश्य दी जा सकती है। ऐसे स्त्री पुरुषोंको एक बार निम्नलिखित बातोंपर विचार कर लेना चाहिये :—

शारीरिक योग्यता।

शारीरिक योग्यताका तात्पर्य है शारीरिक स्वास्थ्यसे।

प्रत्येक स्त्री पुरुषको सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें हाथ डालनेके पहले एक बार अपने शारीरिक स्वास्थ्यकी अच्छी तरह आलोचना कर जानी चाहिये। इस पुस्तकके तीसरे अध्यायमें ऐसे अनेक रोगोंका वर्णन है, जिनके कारण सन्तान नहीं उत्पन्न होती। यदि स्त्री या पुरुषको अपने किसी ऐसे रोगका पता हो, तो पहले समुचित चिकित्सा द्वारा उससे मुक्त होना चाहिये। बिना इन बीमारियोंसे छुटकारा पाये सन्तान उत्पन्न करनेकी चेष्टा करना व्यर्थ अपनी शक्तिका क्षय करना है। अतएव इन रोगोंकी अवस्थामें सन्तान उत्पन्न करनेकी चेष्टा कभी न करनी चाहिये।

यदि साधारण दृष्टिसे कोई बीमारी न दिखाई दे या जानबूझ कर उसकी उपेक्षा की जाय, तो वह अधिक घातक सिद्ध नहीं होता—खास कर उस अवस्थामें जब कि वह बीमारी बहुत ही साधारण हो, किन्तु कमसे कम गर्भाधानके पहले प्रत्येक स्त्री पुरुषको अपने रज-वीर्यकी विशुद्धता अवश्य देख लेनी चाहिये, क्योंकि यही सन्तानोत्पत्तिकी प्रधान सामग्री है और इसकी उपेक्षा करना सन्तानको जान बूझ कर बुरी बनाना है। निम्नलिखित बातोंसे रज और वीर्यके गुण दोष जाने जा सकते हैं :—

शुद्ध वीर्य—जो वीर्य स्फटिकके समान उज्ज्वल हो, न बहुत गाढ़ा न बहुत पतला हो, चिकना हो, मधुर हो, जिसमें शहदके समान सुगन्ध हो, जिसके स्खलित होने पर किसी प्रकारकी वेदना न हो और जो पानीमें डालने पर तैरता रहे, उस वीर्यको शुद्ध समझना चाहिये।

दूषित वीर्य—(१) वायु द्वारा दूषित वीर्यका रङ्ग लाल और कालापन लिये हुए होता है। स्खलित होते समय यह रुक रुक कर स्खलित होता है। (२) कफ द्वारा दूषित वीर्यका रङ्ग सफेद किन्तु कुछ पीलापन लिये हुए होता है। स्खलित होते समय कुछ वेदना होती है (३) पित्त द्वारा दूषित वीर्यका रङ्ग नीला किन्तु कुछ पीलापन लिये होता है। स्खलित होते समय कुछ वेदना होती हैं (४) रक्त द्वारा दूषित वीर्यका रङ्ग कुछ लाली लिये हुए होता है। स्खलित होते समय यह अधिक परिमाणमें निकल पड़ता है, जलन होती है और मुर्देकीसी गन्ध आती है (५) कफ और वायु दूषित वीर्यमें गांठें पड़ जाती हैं (६) कफ और पित्तसे दूषित वीर्य पीबकी तरह और दुर्गन्धि पूर्ण हो जाता है (७) पित्त और वायुसे दूषित वीर्य क्षीण हो जाता है और कठिनानाईसे स्खलित होता है (८) त्रिदोष अर्थात् वात पित्त और कफके

सम्मिलित दोषसे दूषित वीर्यमें मल-मूत्र कीसी दुर्गन्धि आने लगती है और वीर्यमें इनका कुछ अंश भी सम्मिलित रहता है।

शुद्ध रज—जो रज खरगोशके रक्तकी तरह किंवा लाखके समान हो, कपड़े पर जिस रजका दाग लगने पर लाल ही रङ्गका दाग पड़े—किसी दूसरे रङ्गका नहीं और जो जलसे धो देने पर बिलकुल साफ हो जाय—कपड़े पर किसी प्रकारका दाग न रहे, उसे शुद्ध रज समझना चाहिये।

दूषित रज—वात, पित्त, कफ, रक्त और इनके सम्मिलित दोषों द्वारा जिस प्रकार वीर्य दूषित हो जाता है, उसी तरह रज भी दूषित हो जाता है। दूषित होने पर रजका भी रङ्ग वीर्यके समान परिवर्त्तित हो जाता है और स्रावके समय उसी तरह वेदना या जलन होती है।

रज और वीर्यसे सन्तानका निर्माण होता है। उसे कई तत्व वीर्य द्वारा और कई रज द्वारा प्राप्त होते हैं। यदि वीर्य और रजमें खराबी हुई तो बहुधा गर्भ ही नहीं रहता और यदि रहता है, तो उससे दीन हीन, रोगी और दुर्गुणी सन्तान ही उत्पन्न होती है। अतएव सन्तान उत्पन्न करनेके पहले प्रत्येक स्त्री पुरुषको अपने रज वीर्य-

का दोष किसी चतुर चिकित्सककी चिकित्सा द्वारा दूर कराना चाहिये। इसके बाद अन्यान्य बातों पर ध्यान रखते हुए सन्तानोत्पत्तिके लिये अग्रसर होना चाहिये।

अन्यान्य सुविधायें।

केवल रज और वीर्य शुद्ध होनेसे सन्तान उत्तम नहीं हो जाती। सन्तानको उत्तम बनानेके लिये गर्भावस्था और सन्तानकी बाल्यावस्थामें अनेक उपायोंसे काम लेना होता है। सन्तान बड़ी होनेपर उसकी शिक्षा-दीक्षाका भी प्रबन्ध करना पड़ता है। ऐसी अवस्थामें केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही देखकर किसीको सन्तान उत्पन्न करनेके लिये तैयार न हो जाना चाहिये। उसे अपने चारों ओरकी अन्यान्य सुविधाओं पर भी एक बार विचार कर लेना चाहिये।

पाठकोंने ऐसी अनेक स्त्रियोंको देखा होगा, जो सन्तान प्रसव करनेवाली सजीव मशीनें बन जाती हैं। उन्हें एक या सवा वर्षके अन्तरसे एक बार सौरी गृहमें अवश्य जाना होता है। बच्चा हुए दोही तीन महीने बीते, कि फिर उन्हें गर्भ रह जाता है। यह क्रम बहुत दिनोंतक चला करता है, पर यह उर्वरता अच्छी नहीं कही जा सकती। इस प्रकार जो बच्चे उत्पन्न होते हैं, वे अल्पा-

युषी, रोगी और क्षीणकाय होते हैं। साथ ही उनकी माताये भी शीघ्र ही बुड्ढी हो जाती हैं।

गत अध्यायमें यह बतलाया जा चुका है, कि गर्भ रहनेके बाद २१ मास तक स्त्री पुरुषको पुनः सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें न पड़ना चाहिये। यह अनेक विद्वानोंका मत है, कि बच्चेको दूध पिलाते समय स्त्री दुर्बल हो जाती है और उसके प्रजनन अङ्गोंको परिपुष्ट और शक्ति सम्पन्न होनेका पर्याप्त अवसर नहीं मिलता, अतएव दूध पिलानेकी अवधिके बाद भी कमसे कम स्त्रीसे एक बर्ष तक दूर रहना चाहिये। इससे स्त्रियाँ स्वास्थ्य लाभ कर सकेंगी और अच्छे बच्चोंको जन्म दे सकेंगी। जहाँ स्त्रियोंको—उनके प्रजनन अङ्गोंको इस प्रकार पर्याप्त विश्राम नहीं दिया जाता, वहाँ गर्भपात और रोगकी शिकायत सदा बनी ही रहती है। यदि स्त्रियाँ क्षीणाङ्गी होती हैं, तो इस प्रकार बारंबार गर्भ-धारण और सन्तान प्रसवके कारण उनके जीवनका अन्त ही आ जाता है, किन्तु यह देखा गया है, कि उन्हें यदि पर्याप्त अवसर दिया जाता है, तो वे अच्छे बच्चोंको जन्म देनेमें सक्षम होती हैं। यदि किसीकी अवस्था ठीक इसी प्रकारकी हो, तो उसे सन्तान उत्पन्न करनेके पहले हजार बार विचार कर लेना चाहिये। दीन-

हीन अनेक सन्तानोंकी अपेक्षा एक ही हृष्टपुष्ट और सुन्दर सन्तान अच्छी है। स्त्रियोंको भूलकर भी सन्तान उत्पन्न करनेकी मशीनें न बनाइये। इससे शक्तिका नाश और अकाल वार्द्धक्यके सिवा और कोई लाभ नहीं। पुरुषोंको इस सम्बन्धमें विशेष सावधान रहना चाहिये, क्योंकि स्त्रियोंको इस कष्टसे बचाना उन्हींके ब्रह्मचर्य और आचरण पर निर्भर करता है।

इसके अतिरिक्त सन्तानोत्पत्तिके सम्बन्धमें दूसरा विचारणीय प्रश्न आर्थिक अवस्थाका है। सन्तानका अच्छी तरह लालन-पालन करनेके लिये, उसे समुचित शिक्षा दिलानेके लिये और उसे स्वावलम्बी बनानेके लिये पद पद पर धनकी आवश्यकता पड़ती है। यदि हम अपने बच्चोंको भरपेट भोजन भी न दे सकें, आवश्यक कपड़ोंसे उनका बदन भी न ढक सकें और उन्हें पढ़ा लिखा कर स्वावलम्बी भी न बना सकें, तो हमें क्या अधिकार है, कि उन्हें भिखारीकासा जीवन व्यतीत करनेके लिये उत्पन्न करते चले जायँ ? हम अपने आसपास ऐसे अनेक दरिद्र परिवार देख सकते हैं, जिन्हें दोनों शाम भोजन तक नहीं मिलता, किन्तु सन्तानोंका उत्पन्न होना उनके यहां अबाध रूपसे जारी रहता है। ऐसे लोगोंके सन्बन्धमें यही कहना

होगा, कि यह लोग केवल अपनी पाशविक तृप्तिके पीछे सन्तानोत्पत्तिका यह कार्य करते रहते है। ऐसे मनुष्योंके लिये सन्तानोत्पत्तिका यह कार्य धर्म या पुण्य नहीं, किन्तु बड़ेसे बड़ा पातक ही होता है। इन्हीं सब कठिनाइयोंको लेकर आजकल संसारमें 'सन्तान-निग्रह' का आन्दोलन चल रहा है। हमारा यह प्रतिपाद्य विषय नहीं, अतएव इस सम्बन्धमें हम अधिक :लिखना नहीं चाहते, पर पाठकोंको स्वयं ऐसी बातों पर विचार कर सन्तानोत्पत्तिके कार्यसे दूर रहना चाहिये।

डाक्टर कावेनने मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये स्त्री पुरुषोंमें निम्नलिखित योग्यताओंका होना परमावश्यक बतलाया है :—

स्त्रियोंमें—(१) स्त्री पूर्ण स्वस्थ होनी चाहिये। उसे किसी प्रकारकी कौलिक या साधारण बीमारी न होनी चाहिये (२) प्रजनन अङ्ग पूर्णरूपसे परिपुष्ट होने चाहियें (३) स्त्रीमें सन्तान पालनकी क्षमता व योग्यता होनी चाहिये (४) स्त्रीको जीवनके वास्तविक उद्देश्योंका ख्याल होना चाहिये, मिथ्या आडम्बरका नहीं और (६) स्त्रीका स्वभाव धार्मिक भावनाओंसे पूर्ण होना चाहिये।

पुरुषोंमें—(१) पुरुष भी पूर्ण स्वस्थ होना चाहिये। उसे भी किसी प्रकारकी कौलिक या साधारण बीमारी न होनी चाहिये (२) शरीर सुडौल और गठन अच्छी होनी चाहिये (३) तम्बाकू या शराब आदिके दुर्व्यसनोंसे वह मुक्त होना चाहिये (४) संयमी और धर्मनिष्ठ होना चाहिये।

तात्पर्य यह कि स्त्री और पुरुष शरीरसे भिन्न होने पर भी सब प्रकारसे एक होनें चाहिये। उनका मन और आत्मा अभिन्न होना चाहिये। वे निःस्वार्थ भावसे एक दुसरेको प्रेम करते हों और मनचाही सन्तानके लिये दोनों साथ मिल कर चेष्टा करते हों। ऐसे ही स्त्री पुरुष सन्तानोत्पत्ति करने योग्य कहला सकते हैं और ऐसे ही मनुष्य मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं।

सन्तान उत्पन्न करनेके पहले इन सभी बातों पर प्रत्येक स्त्री पुरुषको विचार कर लेना चाहिये। जब उन्हें विश्वास हो जाय, कि हमारी शारीरिक अवस्था सन्तोषजनक है, हम मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं और उत्पन्न करनेके बाद उसके लालन-पालन व शिक्षा दीक्षाका समुचित प्रबन्ध कर सकते है, तब उन्हें गर्भाधानकी तैयारीमें संलग्न होना चाहिये।

११

गर्भाधानकी तैयारी।

विवाहके बाद प्रत्येक मनुष्य सन्तानोत्पत्ति कर सकता है, परन्तु यह पहले ही बतलाया जा चुका है, कि सन्तानको उत्तम बनानेके लिये माता पिताकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाका उत्तम होना परमावश्यक है। यह उत्तमता किशोरावस्थामें ब्रह्मचर्य और युवावस्थामें संयमी जीवन व्यतीत करने पर आसानीसे प्राप्त हो सकती है। ब्रह्मचारी और संयमी मनुष्यकी जीवनचर्या कैसी होनी चाहिये, यह पिछले अध्यायोंमें हम भलीभांति अंकित कर चुके हैं। उस जीवनचर्याके अनुसार यदि आचरण किया जाय, तो चाहे जिस समय गर्भाधान किया जा सकता है, परन्तु यदि कोई संयमी जीवनके नियमोंका पालन नहीं कर सकता, तो उसे गर्भाधानके पहले कमसे

कम एक मास तक अवश्य कुछ नियमोंका पालन करना होगा। बिना इस तैयारीके वह मनचाही सन्तान नहीं उत्पन्न कर सकता।

बच्चे बड़े होने पर माता पितासे ही बोलना चालना और प्रत्येक काम करना सीखते हैं। आजीवन वे उन्हीं-का अनुकरण करते हैं। यह बातें इतनी साधारण और प्रत्यक्ष हैं, कि इन्हें प्रत्येक मनुष्य स्वीकार कर सकता है, परन्तु यह बहुत कम लोग जानते होंगे, कि बच्चे बड़े होने पर माता पिताका प्रत्यक्ष रूपसे उनपर जितना प्रभाव पड़ता है, उससे कहीं अधिक प्रभाव उनके गर्भाधान, गर्भावस्था और स्तनंधयावस्थाके समय अप्रत्यक्ष रूपसे पड़ता है। हम इसे देख या समझ नहीं सकते, किन्तु यह निर्विवाद है, निश्चित है। इसपर विज्ञानकी मुहर लग चुकी है।

सन्तान सदा माता पिताके ही अनुरूप हुआ करती हैं। उसे हम माता पिताका प्रतिबिम्ब कह सकते हैं। उसमें जो कुछ गुण या दोष होते हैं, वे सब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे अपने माता पिता द्वारा ही उसे प्राप्त होते हैं, किन्तु यह सब उसे एक ही समय प्राप्त नहीं होते। इसपर खास खास बातोंका खास ही खास वक्त पर प्रभाव

पड़ता है। वैज्ञानिकोंने इस सम्बन्धमें बहुत कुछ खोज की है—बहुत कुछ विश्लेषण किया है। उन्होंने स्थिर किया है, कि यद्यपि माता पिताके आचार-विचारका आरम्भसे लेकर अन्ततक प्रत्येक अवस्थामें सन्तान पर प्रभाव पड़ता है, परन्तु विशेष प्रभाव पडनेवाली अवस्थायें तीन ही हैं—(१) गर्भाधानके समयकी अवस्था (२) गर्भावस्था और (३) स्तनंधयावस्था। गर्भाधानके पहले कमसे कम एक मास पहली अवस्थाकी अवधि है। बच्चेका जबतक जन्म न हो, तबतक दूसरी अवस्था और जबतक बच्चा दूध पीता रहे (कमसे कम एक वर्ष) तब तक तीसरी अवस्था मानी गयी है। इन तीनों अवस्थाओंमें माता पिताके आचार विचारका, अप्रत्यक्ष रूपसे, सन्तान पर वह प्रभाव पड़ता है, जो उसे देवता या राक्षस बना देता है।

पहली अवस्थामें माता और पिता दोनोंके आचार विचारोंका प्रभाव पड़ता है, अतएव दोनोंको सावधान रहना पड़ता है। दूसरी और तीसरी अवस्थामें माता द्वारा प्रभाव पड़ता है। अतः माताको सावधान रहना पड़ता है और पिताको उसे इस कार्यमें सहायता पहुंचानी पड़ती है। किस अवस्थामें माता पिताका क्या कर्त्तव्य

होना चाहिये। यह सब बातें अपने पाठकोंको इसी समय न बतला कर, यहाँ हम केवल पहली अवस्था पर ही विचार करेंगे।

स्त्रियोंको प्रतिमास जिस समय रजोदर्शन होता है, उस समय उनके अण्डाशयसे एक डिम्ब निकल कर गर्भाशयमें आता है और वहाँ वह पुरुषके वीर्यकी प्रतीक्षा करता है। यदि ऋतुकालमें पुरुषका वीर्य उसे न मिला तो वह बाहर निकल जाता है। यदि मिल गया तो वहींसे सन्तानका निर्माण होने लगता है। यह क्रिया प्रतिमास होती है। एक बार रजोदर्शन होनेके बाद दूसरे महीनेमें बाहर निकालनेके लिये दूसरा डिम्ब परिपक्व होता है। इस प्रकार प्रत्येक डिम्बको परिपक्व होनेके लिये १ मासका समय मिलता है। इस समय माता अपने आचार विचार और आहार विहार द्वारा उस डिम्बको चाहे तो और भी उत्तम बना सकती है। पुरुष भी इस एक महीनेमें आचार विचार और आहार विहार द्वारा अपना स्वास्थ्य और वीर्य सुधार सकते हैं। इसीलिये हमने इस समयको गर्भाधानकी तैयारीके नामसे सम्बोधित किया है।

गर्भाधानकी तैयारीका यह एक मास जिस दिन रजोदर्शन बन्द हो, उस दिनसे गिनना चाहिये। इस एक

मासमें स्त्री और पुरुष दोनोंको एक ही प्रकारका आचरण करना चाहिये। दोनोंकी आशायें और दोनोंके उद्देश्य समान होने चाहिये। दोनोंकी आकांक्षा, दोनोंके विचार और दोनोंकी क्रियाओंमें समानता होनी चाहिये। यद्यपि हमने यह समय एक मासका ही निर्धारित किया है, किन्तु यदि स्त्री पुरुष किसी बुरे व्यसन या बुरी आदतोंमें लीन हों और वे चाहते हों, कि हमारी सन्तान उस व्यसन या आदतसे बची रहे, तो वे और अधिक समय तक तैयारी कर सकते हैं—उन आदतोंको छोड़नेके लिये चार छः महीने या वर्ष दो वर्ष लगें, तो उतने समयको तैयारीका समय मान सकते है। इस अवधिमें स्त्री या पुरुषके कर्त्तव्य इस प्रकार होने चाहिये :—

पुरुषके कर्त्तव्य।

(१) पुरुषको इस अवधिमें पूर्ण ब्रह्मचारी रहना चाहिये। भूल कर भी किसी दिन स्त्री-सङ्ग न करना चाहिये।

(२) यदि शरीरमें कोई रोग हो, तो उसे दूर करना चाहिये। जरा सी बेचैनी या पीड़ाका भी वीर्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है और उसकी असर सन्तान पर पड़ती है।

इसलिये इस अवधिमें शरीरको पूर्ण स्वस्थ बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

(३) मानसिक चिन्ताका कोई कारण हो, तो उसे भी दूर करना चाहिये ताकि चित्त प्रसन्न रहे । मनकी शुद्धता और चित्तकी प्रसन्नताका भी सन्तान पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है ।

(४) इस अवधिमें किसी भी व्यसनका सेवन न करना चाहिये । यहाँ तक कि बीड़ी, सिगरेट आदिमें तम्बाकू पीना या सुरतीके रूपमें उसका खाना भी छोड़ देना चाहिये । भंग, अफीम, गाँजा या शराब खाने पीनेकी आदत हो, तो उससे भी मुक्ति प्राप्त करनी चाहिये ।

(५) यदि किसीको गले तक ठूंस ठूंस कर खानेकी आदत हो, तो इस अवधिमें उसे मिताहारी होना चाहिये और केवल जीनेके लिये ही खानेकी आदत डालनी चाहिये ।

(६) यदि उसके प्रत्येक काम अनियमित होते हों, तो उसे नियमित होना चाहिये । यदि उसका स्वभाव लबाड़ हो, तो उसे सत्यका अवलम्बन करना चाहिये ।

(७) सदाचारका पालन करना चाहिये । ईश्वर पर श्रद्धा रखनी चाहिये और सत्सङ्ग, उत्तम ग्रन्थोंका पठन-

पाठन, उत्तम विचार आदि उपायों द्वारा चित्तको शुद्ध बनाना चाहिये।

(८) स्त्रीसे यदि अनबन रहती हो, तो धीरे धीरे उसका निवारण कर, उसपर पूर्ण प्रेम रखना चाहिये। अपने प्रेम द्वारा स्त्रीके हृदयमें भी वैसा ही प्रेम उत्पन्न करना चाहिये। गर्भाधानके समय स्त्री-पुरुष दोनोंमें यदि प्रेम होता है—दोनों यदि एक दूसरे पर पूर्ण अनुरक्त होते हैं, तो सन्तान बहुत अच्छी होती है।

ध्यान रहे, यह तैयारी एक मासमें वही लोग कर सकते हैं, जो गत अध्यायोंमें वर्णित संयममय जीवन बिताते हैं। जिनकी आदतोंका कोई ठिकाना न हो, जिनकी प्रवृत्तियाँ अनर्गल हों और जो दुर्वासना या दुराचारके आदी हों उनके लिये यदि वे सुधरनेकी इच्छा करें, तो कमसे कम चार महीनेसे लेकर एक वर्ष तकका समय चाहिये।

स्त्रियोंके कर्त्तव्य।

(१) तैयारीकी इस अवधिमें स्त्रियोंको भी अपना शरीर निरोग रखना चाहिये। यदि स्त्रियोंको स्वास्थ्य विषयक नियमोंका ज्ञान न हो, तो पुरुषोंको उन्हें यह बतला कर उनका पालन कराना चाहिये। कोई व्याधि

हो, तो चिकित्सा द्वारा दूर करानी चाहिये और उनको पूर्ण स्वस्थ रखनेके लिये सब तरहसे सावधानी रखनी चाहिये।

(२) चित्त भी प्रसन्न और पवित्र रखना चाहिये। झगड़ा परनिन्दा या कुसङ्ग न करना चाहिये। मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता हो, तो उसे दूर करना चाहिये।

(३) स्त्रियोंको भी सब प्रकारके व्यसनोंका परित्याग करना चाहिये।

(४) स्त्रियाँ खाने पीनेमें पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक असंयमी होती हैं अतएव पुरुषोंको उन्हें इस विषयका महत्व समझा कर उन्हें मिताहारी बनाना चाहिये। मिर्च मसाले और चटपटे भोजनोंसे दूर रहना चाहिये।

(५) स्त्रियोंको भी सदाचारका पालन करना चाहिये। सत्य, दया, क्षमा आदि सद्गुणोंको हृदयमें स्थान देना चाहिये। ईश्वर पर श्रद्धा और भक्ति रखनी चाहिये।

(६) अपने पति पर पूर्ण प्रेम रखना चाहिये। यदि किसी कारणसे पतिकी ओरसे चित्त अप्रसन्न रहता हो, तो इस महीनेमें उस कारणको धीरे धीरे भुला देना चाहिये।

(७) तङ्ग कपड़ोंका व्यवहार न करना चाहिये।

यथा संभव मुक्त वायु और प्रकाशमें रहना चाहिये। आलसीकी तरह बैठ रहना ठीक नहीं। इधर उधर टहलते रहना चाहिये ताकि शरीर फुर्तीला बना रहे।

इन नियमोंके अतिरिक्त स्त्री पुरुषोंको कई और नियमोंका पालन भी करना चाहिये। शरीरका प्रत्येक अङ्ग खूब साफ रखना चाहिये। कपड़े निवास-स्थान तथा सभी व्यवहारोपयोगी वस्तुयें साफ सुथरी रखनी चाहियें। तन और मन दोनोंको पवित्र रखना चाहिये। कोई भी ऐसा कार्य न करना चाहिये, जिससे यह पवित्रता नष्ट हो। मनमें विकारोंको जरा भी स्थान न देना चाहिये। क्रोध, चुगली, छलकपट मिथ्या-भाषण आदि बुराइयोंसे बचना चाहिये और जहाँ तक हो सके, सदाचारके नियमोंका पालन करना चाहिये। यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये, कि इस अवधिमें सदाचारका जितना ही पालन किया जायगा—जितना ही संयमी जीवन बिताया जायगा, उतनी ही सन्तान उत्तम और सदाचारी होगी।

यही गर्भाधानकी तैयारी है। मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये, कि उनकी इच्छामें प्रबलता और उद्देश्योंमें दृढ़ता रहे। उन्हें इसके लिये अभ्यास करना होगा।

~मनचाही सन्तान~

यदि स्त्री और पुरुष दृढ़ता पूर्वक यह कहते रहें, कि "हम इस सन्तति-शास्त्रके नियमोंका अवश्य पालन करेंगे, इसमें जो जो बातें बतलाई गयी हैं, उनके अनुसार अवश्य चलेंगे" तो इसमें कोई सन्देह नहीं, कि उनकी इच्छा-शक्ति दृढ़ होती चली जायगी और उसके सहारे वे अपनी सन्तानमें मन-पसन्द बात उत्पन्न कर सकेंगे--उसे मन-चाही सन्तान बना सकेंगे।

१२

गर्भाधान।

गर्भाधान एक पवित्र और प्राकृतिक क्रिया है। इसी क्रियासे सन्तानका शारीरिक निर्माण आरम्भ होता है। प्राचीनकालमें हमारे यहाँ यह क्रिया एक संस्कारमें परिगणित की जाती थी। इसीसे इसका महत्व समझा जा सकता है। सन्तान पर इस क्रियाका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिये यह कई दृष्टिसे विचारणीय है। गर्भाधानके समय सन्तान पर जिन जिन बातोंका विशेष प्रभाव पड़ता है, वे यह हैं (१) माता पिताका स्वास्थ्य (२) माता पिताकी अवस्था (३) ऋतुकाल (४) समय (५) शयन-गृह और (६) आसन। इनके सम्बन्धमें ज्ञातव्य बातें इस प्रकार हैं:—

माता-पिताका स्वास्थ्य।

माता और पिताके स्वास्थ्यका सन्तान पर गहरा

प्रभाव पड़ता है, अतएव गर्भाधानके समय उन दोनोंका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य उत्तम होना चाहिये। यदि माता या पिताको कोई भी व्याधि हुई और उस व्याधिके कारण उनका चित्त अप्रसन्न, खिन्न या उदास हुआ तो निःसन्देह सन्तान पर उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। गर्भाधानके समय माता पिता दोनों पूर्ण निरोग होने चाहियें। उनमें कोई भी वंश परम्परागत या साधारण बीमारी न होनी चाहिये। यहां तक कि यदि किसी घटनासे मन चिन्तित हो, चित्त उदास हो, या शरीर थका हुआ हो, तो उस अवस्थामें भी गर्भाधान न करना चाहिये।

माता-पिताकी अवस्था।

गर्भाधानके समय माता-पिताकी जो अवस्था होती है, उसका भी सन्तान पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यदि उस समय माता पिताका चित्त प्रमुदित और प्रफुल्ल होता है, तो सन्तान भी वैसे ही प्रमुदित स्वभाववाली उत्पन्न होती हैं और यदि माता पिता आलस, चिन्ता, उदासी, क्रोध, अभिमान, विषय लोलुपता आदि भावोंसे युक्त होते हैं, तो सन्तान भी उसी तरहके गुण लेकर उत्पन्न होती है। इसलिये गर्भाधानके दिन माता पिताको अपनी

शारीरिक व मानसिक अवस्था अवश्य ठीक रखना चाहिये। इसके लिये उन्हें उस दिन कुचेष्टा, निर्लज्जता, कामुकता, क्रोध, आलस्य, अभिमान आदि बातोंसे दूर रहना होगा, ऐसा भोजन न करना होगा, जो आलस्य या ग्लानि उत्पन्न करे। इसी तरह भूख या प्यासकी अवस्थामें भी गर्भाधान करना ठीक नहीं। गर्भाधानके समय स्त्री और पुरुषको केवल मनचाही सन्तानका ही ध्यान होना चाहिये। तन मनसे उसीकी लगन लगी होनी चाहिये। दो शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं, कि गर्भाधानके समय उन सभी बातों पर ध्यान रखना चाहिये, जो चित्तको प्रफुल्लित बनानेवाली हों और उन सभी बातोंका त्याग करना चाहिये जो शरीर या मनको खराब कर देने वाली हों।

ऋतुकाल

जिस प्रकार किसानको बीज बोनेके लिये उचित समयकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, उसी तरह मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवाले माता पिताओंको गर्भाधानके लिये ऋतुकालकी प्रतीक्षा करनी होती है। स्त्रियोंको जिस दिनसे रजोदर्शन आरम्भ होता है, उस दिनसे लेकर सोलह दिन तक ऋतुकाल माना गया है। ऋतुकालके

प्रथम चार दिन जिस समय रज-स्राव होता है, गर्भाधानके लिये निषिद्ध माने गये हैं। इस समय हमारे यहाँ स्त्रियोंका स्पर्श करना भी दोषावह माना गया है। इन दिनोंमें संयोग करने पर प्रायः गर्भ ही नहीं रहता और यदि रहता है, तो उससे हीन सन्तान उत्पन्न होती है। इसी तरह ऋतुकालके सोलह दिन बाद भी प्रायः गर्भ नहीं रहता। अतएव बीचके बारह दिनका समय ही गर्भाधानके लिये उपयुक्त समय माना गया है। इस समय संयोग करनेसे गर्भ-संचार आसानीसे हो जाता है। हमारे शास्त्रकारोंने पुत्र या कन्याकी उत्पत्तिसे भी ऋतुकालका सम्बन्ध बतलाया है, किन्तु यह बातें हम अपने पाठकोंको आगे चलकर बतलायँगे। यहाँ हम केवल यही बतलाना चाहते हैं, कि ऋतुकालके भिन्न भिन्न दिनोंका भी सन्तान पर भिन्न भिन्न प्रकारका प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्धमें कहा गया है, कि ऋतुकालके पहले व दूसरे दिनके संयोगसे अल्पजीवी, तीसरे दिनके संयोगसे आजन्म रोगी, चौथे दिनके संयोगसे दरिद्री, पाँचवें दिनके संयोगसे कुलटा कन्या, छठे दिनके संयोगसे दरिद्र पुत्र और सातवें दिनके संयोगसे कुलकलङ्किनी कन्या उत्पन्न होती है। इसके बाद आठसे लेकर सोलहवें दिन तककी सन्तान उत्तम, प्रतापी

और धर्माचारिणी होती है। यह हमारे प्राचीन शास्त्रोंका मत है। इनमेंसे भी ग्यारहवीं व तेरहवीं रात्रि निषिद्ध मानी गयी गयी हैं। आधुनिक विज्ञानसे इसे पुष्टि नहीं मिलती, किन्तु फिर भी हम इन बातोंकी उपेक्षा नहीं कर सकते। मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये स्त्री पुरुषोंको जब संयममय जीवन व्यतीत करनेकी सलाह दी जाती हैं, तो उनसे यदि ऋतुकालके भले बुरे दिनों पर भी ध्यान रखनेको कहा जाय, तो वह अनुचित न होगा। हमारी समझमें जो माता पिता वास्तवमें मनचाही सन्तान के लिये उत्सुक होंगे वे इतना संयम तो अवश्य ही कर सकेंगे।

गर्भाधानका समय।

गर्भाधानके समयका भी सन्तान पर प्रभाव पड़ता है। हमारे यहाँ रात्रिका ही समय इसके लिये प्रशस्त माना गया है, किन्तु आजकल यह कार्य बहुधा रात्रिके प्रथम या द्वितीय प्रहरमें ही सम्पादित होता है। सन्तानकी दृष्टिसे यह ठीक नहीं। (रात्रिके पहले पहरमें गर्भाधान करना मना है। प्रथम प्रहरमें गर्भाधान करनेसे सन्तान अल्पायु होती है। रात्रिके द्वितीय प्रहरमें गर्भाधान करनेसे यदि पुत्र उत्पन्न होता है, तो वह दरिद्र होता है

और यदि कन्या उत्पन्न होती है, तो वह दुर्भाग्यवती होती है। तृतीय प्रहरके गर्भाधानसे यदि पुत्र हो, तो वह दास होता है और कन्या होती है तो वह पति-घातिनी तथा दासी वृत्ति करनेवाली होती है। चतुर्थ प्रहर ही गर्भाधानका सर्वश्रेष्ठ समय है। इस समय गर्भाधान करनेसे यदि पुत्र उत्पन्न होता है, तो वह विचक्षण, बुद्धिमान, विद्वान और दीर्घायु सम्पन्न होता हैं और यदि कन्या होती है, तो वह पतिव्रता और सौभाग्यशालिनी होती है।

हमारे यहां दिनको सहवास करना निषिद्ध माना गया है। कहा गया है, कि इससे शरीर और मस्तिष्क पर सूर्यकी गर्मीका प्रभाव पड़ता है, फलतः मनुष्य रोगी और अल्पायु हो जाता है। इसीलिये भावमिश्रने भाव प्रकाशमें लिखा है, कि "आयुः क्षय भयाद्विद्वान नान्हि सेवेत कामिनीम्" अर्थात् आयु क्षयके भयसे विद्वान पुरुषको मध्यान्हमें स्त्री-सेवन न करना चाहिये, परन्तु सुप्रसिद्ध डाक्टर कावेन मनचाही सन्तानके लिये गर्भाधानका सबसे अच्छा समय मध्यान्हका ही बतलाते हैं। उनका कथन है, कि तेजस्वी सन्तान उत्पन्न करनेके लिये उसी समय गर्भाधान करना चाहिये, जिस समय सूर्यके प्रकाशसे दसों दिशायें तेजोमयी हो रही हों और आकाशमें बादलका

एक टुकड़ा भी दृष्टिगोचर न होता हो। हमारी समझमें यह राय भारतकी अपेक्षा विलायतवालोंके लिये ही अधिक आदरणीय हो सकती है, क्योंकि वहाँ प्रायः आकाश मेघाच्छन्न रहता है और जिस दिन सूर्य दिखाई देता है, वह दिन स्वाभाविक ही अच्छा मालूम होता है। यद्यपि यहाँ भी हमने देहातोंमें देखा है कि जो लड़के बहुत ही चञ्चल और चुलबुले होते हैं, वे 'दिन दोपहरके' (गर्भाधानवाले) कहे जाते हैं। इस बातसे डाक्टर कावेनकी उपरोक्त बातको पुष्टि मिलती है, किन्तु केवल इसी बातको लेकर हम अपने प्राचीन शास्त्रोंकी सम्मतिको ठुकरा नहीं सकते। विलायतके भी कतिपय विद्वानोंने प्रातःकालके समयको गर्भाधानके लिये उत्तम बताया है। सब देशोंके जलवायु एक समान न होनेके कारण इस नियममें भिन्नता भी हो सकती है। भारतवासियोंके लिये रात्रिका चतुर्थ प्रहर ही गर्भाधानके लिये उपयुक्त हो सकता है, क्योंकि यही समय हमारे शास्त्रकारोंने उपयुक्त बतलाया है।

डाक्टर आर० टी० ट्राल, एम० डी० ने गर्भाधानका समय निरूपित करते हुए लिखा है, कि जिस समय स्त्री पुरुषोंकी मानसिक अवस्था अच्छी न हो, जिस समय गरीष्ठ भोजन किया गया हो, जिस समय हृदय शोक-सन्तप्त

और शरीर किसी परिश्रमके कारण श्रान्त एवम् क्लान्त हो रहा हो, उस समय गर्भाधान करना ठीक नहीं। जिस समय शरीर भली भांति स्वस्थ और मन निश्चिन्त हो, हृदयमें किसी प्रकारकी ग्लानि किंवा उद्वेग न हो, वही समय गर्भाधानके लिये उपयुक्त समझना चाहिये।

डाक्टर ए० ए० फिनिश एम० बी० सी० एम० भी इसका हृदयसे समर्थन करते हैं। उनका कथन है, कि जिस समय गरीष्ट भोजन किया गया हो, अथवा जिस समय पाचन क्रिया हो रही हो, उस समय यह परिश्रम करना ठीक नहीं। रात्रिके अन्तिम भागमें, अच्छी तरह सो लेनेके बाद जिस समय शरीर और मन दोनों भली-भाँति स्वस्थ हों, उसी समय गर्भाधानका कार्य सम्पादन होना चाहिये।*

इसके अतिरिक्त मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको गर्भाधान करते समय ऋतु पर भी ध्यान रखना चाहिये। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे सहवासके लिये शिशिर, हेमन्त, वसन्त, वर्षा, शरद और ग्रीष्म ऋतुयें क्रमशः एक

---

* इस सम्बन्धमें अधिक जाननेके लिये दाम्पत्य-विज्ञानका ११ वां और काम-विज्ञानका १४ वां अध्याय देखिये।

दूसरेसे निकृष्ट मानी गयी हैं, परन्तु सन्तानकी दृष्टिसे आषाढ़ या श्रावणका महीना गर्भाधानके लिये सबसे अच्छा है। इस समय गर्भाधान होनेसे सन्तानका जन्म चैत्र वैशाखमें होता है। चैत्र वैशाखमें गर्मीके दिन होनेके कारण सन्तानको वायु और प्रकाशमें रहने व बढ़नेका मौका मिलता है। इन्हीं दिनोंमें प्रकृति भी फल फूल द्वारा अपना शृङ्गार करती है। वच्चे और बूढ़े सभीके लिये यह दिन रमणीय होते हैं। बच्चेका जन्म इन दिनोंमें होनेसे वे भी प्रकृतिकी तरह खिल उठते है। इसके विपरीत जिन बच्चोंका जन्म शीत या वर्षाके दिनोंमें होता है, उन्हें रात दिन घरमें बन्द रहना पड़ता है, फलतः उनकी वृद्धिमें वाधा पड़ती है। मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक स्त्री पुरुषको एक बार इन सब बातों पर भलीभाँति विचार कर लेना चाहिये।

शयन-गृह।

गर्भाधानके समय आसपास जो दृश्य या चीजें होती हैं, उनका भी सन्तान पर प्रभाव पड़ता है अतएव शयन-गृहके सम्बन्धमें भी मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेवालोंको सतर्क रहना चाहिये। शयनके लिये जो स्थान पसन्द किया जावे, वह सुसज्जित और एकान्तमें होना चाहिये।

उस स्थानमें वायु और प्रकाशके लिये काफी गुञ्जाइश होनी चाहिये। जहाँ नजदीकमें बड़े बूढ़े लोग हों, जो स्थान खुला हो, लज्जास्पद हो, घृणायुक्त हो, तङ्ग हो, गर्मी या अन्धकारसे युक्त हो और जहाँ रोने पीटनेका शब्द सुनाई देता हो, वहां यह कार्य न सम्पन्न करना चाहिये। बन उपबन या बाटिकाओंमें इसके लिये प्रबन्ध किया जा सके तो बहुत ही अच्छा है। शयन-गृहका फर्श यदि मिट्टीका हो, तो लिपा-पुता हुआ और पक्का हो, तो धो धोकर साफ रखना चाहिये। दीवारें साफ और चूनेसे पुती हुई होनी चाहियें।

शयन-गृहमें सुन्दर और सुशोभित चित्रादि रखना बहुत ही आवश्यक है। वैज्ञानिकोंका कथन है कि गर्भाधानके समय भले और सुन्दर मनुष्योंके चित्र देखनेसे भली और बुरे चित्रोंको देखनेसे बुरी सन्तान उत्पन्न होती हैं। शयन-गृहमें न केवल सुन्दर मनुष्योंके ही चित्र रखने चाहियें, बल्कि हरे भरे बन-वृक्ष, पुष्पलतायें, सुन्दर पशु-पक्षी और प्राकृतिक दृश्योंके ऐसे सुशोभित चित्र भी रखने चाहिये, जिनके दर्शनसे प्रसन्नता प्राप्त हो, जिन चित्रोंको देखनेसे भय, शोक, ग्लानि और चिन्ता उत्पन्न हो, उन्हें शयन-गृहमें कदापि स्थान न देना चाहिये।

आसन।

अनेक मनचले युवक उमड़ती हुई जवानीके जोशमें आकर गर्भ-संचारके लिये जिस प्रकार सहवास होना चाहिये, उस प्रकार सहवास न कर, अनेक प्रकारके उलटे सीधे आसनोंका व्यवहार करते हैं। यह आसन अनेक बार आनन्दके कारण न होकर निरानन्द ही उत्पन्न करते हैं। कष्टकर आसनोंसे स्त्रियोंको स्वाभाविक ही घृणा होती है, अतएव जो लोग ऐसे आसनोंका व्यवहार करते हैं, उनकी स्त्रियाँ भी विरक्त हो जाती हैं। गर्भ-संचारके लिये वही आसन सबसे अच्छा है, कि जिसमें पुरुषका वीर्य बिना किसी रुकावटके गर्भाशय तक पहुंच सके। पाठकोंको यह शायद ही बतलाना होगा, कि यह तभी हो सकता है, जब स्त्री चित्त लेटी हुई हो। इसके विपरीत किसी अवस्थामें गर्भाधान करना ठीक नहीं। इस बात पर ध्यान न रखनेसे बहुधा वीर्य बाहर निकल जाता है या ठीक स्थान तक नहीं पहुंचता। कभी कभी तो वाहियात आसनोंके ही कारण गर्भाशय या जननेन्द्रिय आदिमें ऐसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं जिससे गर्भ ही रहना कठिन हो जाता है।

गर्भाधानके समय इन आसनोंका सन्तान पर भी

थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ता है। विपरीत रतिके * सम्बन्धमें तो स्पष्ट बतलाया गया है, कि उस समय गर्भ रह जानेसे यदि कन्या उत्पन्न होती है, तो उसमें पुरुषोंकेसे गुण और लक्षण दिखाई देते हैं और यदि पुत्र उत्पन्न होता है, तो उसमें स्त्रियोंकेसे हाव-भाव और लक्षण परिलक्षित होते हैं, अतएव मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको ऐसे आसनोंका भूल कर भी प्रयोग न करना चाहिये।

इस प्रकार जो लोग अपना स्वास्थ्य, अपने रज-वीर्यकी विशुद्धता, अपनी शारीरिक मानसिक अवस्था, ऋतुकाल, समय, शयन-गृह तथा आसन आदि बातोंकी विवेचना कर यथा समय और यथा विधि गर्भाधान करेंगे, वे निःसन्देह मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेमें सफलता प्राप्त करेंगे। यदि पर्याप्त तैयारीके बाद यथाविधि गर्भाधान हो गया, तो मानो मनचाही सन्तानके निर्माणका आधा काम निपट गया। यहाँ तक माता और पिता दोनोंको समान रूपसे चेष्टा करनी होती है। इसके बाद सन्तानको मन पसन्द बनानेका समस्त भार माता पर आ पड़ता है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी यह इच्छा स्वाभाविक रूपसे

---

* स्त्रीको ऊपर रखकर रति करनेको विपरीत रति कहते हैं।

ही बलवती होती है, कि मेरी सन्तान उत्तम हो, अतएव यदि सन्तानको उत्तम बनानेकी विधियाँ उन्हें समझा दी जायँ, तो हम समझते हैं, कि पुरुषोंकी अपेक्षा वे कहीं अधिक अपना कर्त्तव्य-पालन कर सकती हैं। अगले अध्यायोंमें अब हम इन्हीं सब विधियोंका वर्णन करेंगे।

१५

सुन्दर सन्तान उत्पन्न करनेका तरीका ।

संसारमें प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है, कि मेरी सन्तान सुन्दर हो, क्योंकि सुन्दर सन्तान माता पिताके अभिमानकी वस्तु होती है। मनुष्य स्वभावसे ही सौन्दर्यका उपासक होता है। विवाह करते समय स्त्रीके सौन्दर्य पर ही वह विशेष ध्यान रखता है। अपने नाते रिश्तेदारोंको भी वह सुन्दर ही देखना चाहता है, अपनी आसपासकी छोटी बड़ी समस्त वस्तुओंमें वह सुन्दरताकी ही खोज करता है, यहां तक कि वह स्वयं अपने शरीरमें भी सौन्दर्य देखना चाहता है और यदि उसे उसमें कोई त्रुटि मालूम होती है, तो वह वस्त्राभूषण और केश-विन्यास प्रभृति साधनों द्वारा उसकी पूर्ति करना चाहता है।

परन्तु यह सब सौन्दर्यके बाह्य उपकरणमात्र हैं। इनसे सौन्दर्यकी वास्तविक वृद्धि नहीं होती। वर्णकी सुन्दरता और अंग प्रत्यंगकी सुघड़ता ही वास्तविक सौन्दर्य है। यह सौन्दर्य वस्त्राभूषण या केश-विन्यास द्वारा नहीं किन्तु जन्मसे ही प्राप्त होता है। जो लोग वास्तवमें सुन्दर सन्तानके इच्छुक हों, उन्हें उसे जन्मसे ही सुन्दर बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इस बातमें कोई तथ्य नहीं है, कि "माता पिता केवल बच्चोंको जन्म ही देते हैं, सौन्दर्य देना तो ईश्वरके अधिकारकी बात है।" विज्ञानने प्रमाणित कर दिया है, कि माता पिता चाहें तो स्वयं काले होने पर भी उज्ज्वल वर्णके गोरे बच्चे पैदा कर सकते हैं। स्वयं काने कुबड़े और कुरूप होने पर भी अपने बच्चोंको सुन्दर या खूबसूरत बना सकते हैं।

साधारण दृष्टिसे हमें यही दिखाई देता है, कि मनुष्यका रङ्ग उसके माता पिताके रङ्ग और देशकी आबोहवाके अनुसार ही गोरा या काला हुआ करता है। शीत प्रधान देशोंके लोग गोरे और गरम देशोंके लोग प्रायः काले हुआ करते हैं। युरोपमें हदसे ज्यादः ठण्ढ पड़ती है, इसलिये वहांके लोग हदसे ज्यादः गोरे होते हैं और आफ्रिकामें हदसे ज्यादः गर्मी पड़ती है, इसलिये वहांके लोग हदसे

ज्याद: काले होते हैं। इसके विपरीत जिन देशोंमें साधारण गर्मी और साधारण सर्दी पड़ती है, वहांके लोग न बहुत गोरे न बहुत काले अर्थात् साँवले हुआ करते हैं। इसी प्रकार माता पिताके रङ्गका भी सन्तान पर प्रभाव पड़ते देखा गया है। मातापिता यदि गोरे होते हैं तो सन्तान भी गोरी होती है। माता पिता साँवले होते हैं, तो सन्तान भी साँवली और माता पिता काले होते हैं तो सन्तान भी काली उत्पन्न होती है। यह भी देखा गया है, कि कन्या पर माताके रङ्गका और पुत्र पर पिताके रंगका विशेष प्रभाव पड़ता है, क्योंकि लड़कियाँ अक्सर माताके रंगकी और लडके पिताके रंगके उत्पन्न हुआ करते हैं। इसी प्रकार अनेक विद्वानोंने वंशको भी सन्तानके रंगका कारण माना है।

किन्तु यह सब साधारण बातें है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मातापिताके रंग, वंश और निवासस्थानकी आबोहवाका सन्तानके रूप रंग पर अवश्य प्रभाव पड़ता हैं। और प्राय: इन्हींके अनुसार सन्तानका रंग निर्मित होता है, परन्तु ऐसी अनेक बातें देखी जाती हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है, कि केवल माता पिताके रंग और निवासस्थानके जलवायुसे ही सन्तानका रंग निर्मित नहीं होता,

परन्तु यह सब सौन्दर्यके बाह्य उपकरणमात्र हैं। इनसे सौन्दर्यकी वास्तविक वृद्धि नहीं होती। वर्णकी सुन्दरता और अंग प्रत्यंगकी सुघड़ता ही वास्तविक सौन्दर्य है। यह सौन्दर्य वस्त्राभूषण या केश-विन्यास द्वारा नहीं किन्तु जन्मसे ही प्राप्त होता है। जो लोग वास्तवमें सुन्दर सन्तानके इच्छुक हों, उन्हें उसे जन्मसे ही सुन्दर बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इस बातमें कोई तथ्य नहीं है, कि "माता पिता केवल बच्चोंको जन्म ही देते हैं, सौन्दर्य देना तो ईश्वरके अधिकारकी बात है।" विज्ञानने प्रमाणित कर दिया है, कि माता पिता चाहें तो स्वयं काले होने पर भी उज्ज्वल वर्णके गोरे बच्चे पैदा कर सकते हैं। स्वयं काने कुबड़े और कुरूप होने पर भी अपने बच्चोंको सुन्दर या ख़ूबसूरत बना सकते हैं।

साधारण दृष्टिसे हमें यही दिखाई देता है, कि मनुष्यका रङ्ग उसके माता पिताके रङ्ग और देशकी आबोहवाके अनुसार ही गोरा या काला हुआ करता है। शीत प्रधान देशोंके लोग गोरे और गरम देशोंके लोग प्रायः काले हुआ करते हैं। युरोपमें हदसे ज्यादः ठण्ढ पड़ती है, इसलिये वहांके लोग हदसे ज्यादः गोरे होते हैं और आफ्रिकामें हदसे ज्यादः गर्मी पड़ती है, इसलिये वहांके लोग हदसे

ज्याद: काले होते हैं। इसके विपरीत जिन देशोंमें साधारण गर्मी और साधारण सर्दी पड़ती है, वहाँके लोग न बहुत गोरे न बहुत काले अर्थात् साँवले हुआ करते हैं। इसी प्रकार माता पिताके रङ्गका भी सन्तान पर प्रभाव पड़ते देखा गया है। मातापिता यदि गोरे होते हैं तो सन्तान भी गोरी होती है। माता पिता साँवले होते हैं, तो सन्तान भी साँवली और माता पिता काले होते हैं तो सन्तान भी काली उत्पन्न होती है। यह भी देखा गया है, कि कन्या पर माताके रङ्गका और पुत्र पर पिताके रंगका विशेष प्रभाव पड़ता है, क्योंकि लड़कियाँ अक्सर माताके रंगकी और लडके पिताके रंगके उत्पन्न हुआ करते हैं। इसी प्रकार अनेक विद्वानोंने वंशको भी सन्तानके रंगका कारण माना है।

किन्तु यह सब साधारण बातें है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मातापिताके रंग, वंश और निवासस्थानकी आबोहवाका सन्तानके रूप रंग पर अवश्य प्रभाव पड़ता हैं। और प्राय: इन्हींके अनुसार सन्तानका रंग निर्मित होता है, परन्तु ऐसी अनेक बातें देखी जाती हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है, कि केवल माता पिताके रंग और निवासस्थानके जलवायुसे ही सन्तानका रंग निर्मित नहीं होता,

बल्कि कोई और भी नियम विद्यमान है, जो उपरोक्त सभी बातोंके विपरीत वर्ण-निर्माणका सामर्थ्य रखता है। यदि ऐसा कोई नियम न होता, तो उपरोक्त नियमके प्रतिकूल कभी कोई बात दिख-लाई न देती। किन्तु यह देखा गया है, कि गोरे माता-पिताके यहाँ कभी कभी काले या साँवले और काले माता पिताओंके यहाँ गोरे बच्चे उत्पन्न होते हैं। यदि माता पिताके अनुरूप सन्तानका रंग निर्मित होनेका विधान होता, तो एक माता पिताके समस्त बच्चे समानरूपसे गोरे या साँवले हुआ करते। किन्तु संसारमें ऐसा नहीं दिखाई देता। एक माता पिताके चार बच्चे होते हैं, तो उनमें कोई गोरा और कोई साँवला दिखाई देता है। इसी प्रकार यदि जलवायुके अनुसार रंग निर्मित होनेकी बात सोलहो आने सच हो, तो एक देशमें दूसरे रंगके मनुष्य उत्पन्न ही न होने चाहियें, किन्तु ऐसी बात नहीं है। जिन देशोंके लोग घोर काले होते हैं, वहां भी उनसे कुछ उज्ज्वल वर्णके बच्चे उत्पन्न होते दिखाई देते हैं। इसी प्रकार युरोपमें सब लोग एक समान गोरे ही नहीं हुआ करते। वहाँके लोगोंमें भी वर्णकी विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त गोरे यदि आफ्रिकामें या आफ्रि-

कन युरोपमें जा बसते हैं, तो वहाँ भी उनके उसी रंगकी सन्तान उत्पन्न होती है, जिस रंगकी उनके वतनमें उत्पन्न होती है। भारत समशीतोष्ण देश है, परन्तु यहाँ गोरेसे गोरे और कालेसे काले—सभी रंगके मनुष्य दिखलाई देते हैं। यदि जल-वायुकी बात ठीक हो, तो इस देशके समस्त लोगोंका वर्ण एक समान सांवला होना चाहिये। वर्णकी यह विभिन्नता हमें बतलाती है, कि सन्तानके रंग-निर्माण पर माता पिताके रंग या जलवायुका पूर्ण आधिपत्य नहीं। ऐसा और भी कोई जबर्दस्त नियम है, जो इन सबोंके प्रभावको नष्ट कर सन्तानके रंगको बदल देनेका सामर्थ्य रखता है।

वैज्ञानिकोंने खोज की है, कि यह नियम और कुछ नहीं, माता पिताका मनोबल या इच्छा-शक्ति है। इस इच्छा शक्तिसे माता पिताके रंग और जल-वायुका प्रभाव नष्ट होकर कोई दूसरे ही रंगका निर्माण होता है। यदि माता पिताके हृदयमें किसी खास प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हो जाती है, तो उसीके अनुसार सन्तानका वर्ण निर्मित हो जाता है। यदि माता पिता साँवले होने पर भी रात-दिन यही इच्छा करते हैं, कि हमारी सन्तान गोरी हो—रात दिन उन्हें यदि इसी बातकी लगन लगी रहती है, तो

वास्तवमें उनकी सन्तानका रंग बदल जाता है, किन्तु यह इच्छा ऐसी प्रबल होनी चाहिये, कि हृदयको प्रभावित कर सके। जिस इच्छाका हृदय पर प्रभाव नहीं पड़ता, उसका कोई फल नहीं होता। इच्छाका प्राबल्य होना परमावश्यक है। इस प्राबल्यके कारण यदि इच्छाके विरुद्ध भी हृदय पर किसी प्रकारका प्रभाव पड़ जाता है तो सन्तानका रंग उसी प्रकारका हो जाता है। गोरे बच्चे सभीको पसन्द होते हैं। यह कोई नहीं चाहता, कि मेरे बच्चे गोरे न हों, किन्तु यदि माता पिताके हृदय पर किसी कारणसे काले रंगका जबर्दस्त प्रभाव पड़ जाता है, तो इच्छा न होने पर भी उनके बच्चोंका रंग काला हो जाता है। प्रभावकी प्रबलताके आगे साधारण इच्छा कोई काम नहीं आती। सारा खेल इसी प्रभाव—जबर्दस्त प्रभावका हैं। इसीके अनुसार सन्तानका रंग निर्मित हुआ करता है। इसके आगे माता पिताके रंग और जल-वायुका प्रभाव भी बेकार है। वैज्ञानिकोंने इस सम्बन्धमें अनेक उदाहरणोंका संग्रह किया है। कुछ उदाहरण हम नीचे दे रहे हैं। यदि पाठकगण उनके सहारे इस सिद्धान्तको समझनेकी चेष्टा करेंगे, तो सब बातें आसानीसे उनकी समझमें आ जायँगी।

~ मनचाही सन्तान ~

स्पेन देशकी एक अमीरजादीके शयन-गृहमें एक इथोपियन मनुष्यका चित्र टँगा था। इथोपियन लोगोंका रंग बड़ा ही काला होता है। वह अमीरजादी कौतूहलवश उसे बारम्बार देखा करती थी। उसके मन पर उसका बड़ा प्रभाव था। जब वह गर्भवती हुई तब भी बराबर उसे देखती रही। यथा समय जब उसने पुत्र प्रसव किया, तब लोगोंने आश्चर्यके साथ देखा, कि उस बालकका वर्ण ठीक उस इथोपियनके समान काला है।

इसके विपरीत एक बार एक इथोपियन रानीने एक गोरे बालकको जन्म दिया था। जाँच करने पर मालूम हुआ था, कि उस रानीको उज्ज्वल वर्ण और उज्ज्वल चीजें बहुत प्रिय थीं। वह अहर्निश उन्हींका ध्यान करती थी। इसलिये उसका रंग काला होने पर भी उसने गोरे बच्चेको जन्म दिया था।

बच्चोंके रूप रंग विषयक यह बात न केवल मनुष्योंमें ही पाई जाती है, बल्कि पशुओंमें भी देखी गई है। फौजके लिये जब एक ही रंगके घोड़ोंकी आवश्यकता होती है, तब गर्भाधानके समय पाड़ियोंके सामने बादामी या काले रंगके पड़दे टांग दिये जाते हैं। ऐसा करनेसे सबके सब बछेड़े उसी रंगके उत्पन्न होते हैं।

-मनचाही सन्तान-

डाक्टर पी० एच० सिक्स्टने इस बातको एकवार भलीभाँति अजमाया था। उन्होंने कई खरगोश पाल रक्खे थे। वे खरगोश जिस स्थानमें रहते, उस स्थानके चारों ओर उन्होंने नीले रंगके पड़दे लगा रक्खे थे। जमीन पर भी नीले रंगकी चटाई बिछी हुई थी। खरगोश सारा दिन उसी चटाई पर दौड़ा करते थे। वे जिधर ही देखते, उधर ही उन्हें नीला रंग नज़र आता था। अन्तमें जब दो खरगोशोंने बच्चे दिये तब देखा गया, कि उन बच्चोंका रंग नीला है। हम समझते हैं, कि पाठकोंको अब इसका कारण बतलानेकी आवश्यकता नहीं रही।

ईसाइयोंके धर्मग्रन्थ बाइबलमें भी इसका एक उदाहरण अङ्कित है। उसमें लिखा है, कि लेवलने एकबार याकुबको धोखा दिया। उसके बदलेमें उसने याकुबको बचन दिया, कि यदि यह सात वर्षतक उसके भेंड़ बकरे चरा दे, तो वह उसे अपनी एक कन्या विवाह देनेके अतिरिक्त, उतने समयमें उन भेंड़ोंके जितने बुन्दकीदार बच्चे होंगे, वे सब उसे दहेजमें दे देगा। लेवलने समझ रक्खा था, कि सात वर्षमें शायद ही दो चार ऐसे बच्चे हों। परन्तु याकुबने एक ऐसी युक्ति खोज निकाली, जिससे सब बच्चे बुन्दकीदार ही उत्पन्न हुए और लेवलको अपने

कामका यथोचित दण्ड भी मिला। सर्वप्रथम याकूबने उन भेड़ बकरोंको पानी पिलानेके लिये ऐसे बरतन तैयार कराये, जो सब ओरसे बुन्दकीदार थे। बादको उसने मादाओंको अलग एक स्थानमें बांध दिया। दिनभर बांध रखनेपर, जब वे अत्यन्त तृषाकुल हुई तब उसने उन्हें नरोंके बीचमें उन्हीं बुन्दकीदार बर्तनोंमें पानी पीनेके लिये छोड़ दिया। चित्तकी एकाग्रताके कारण ये बुन्दकियां मादाओंके मनमें बस गयीं। निदान उस समय गर्भाधान होनेपर जितनी भेड़ोंने बच्चे दिये, वे सब बुन्दकीदार हुए। याकुबने यही क्रम अन्ततक जारी रक्खा और आसानीके साथ लेबलसे बाजी मार ली।

मनपर प्रभाव पड़नेसे बच्चोंका रङ्ग इसी प्रकार बदल जाता है। इस कथनकी पुष्टिमें अभी और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। डाक्टर फाउलर लिखते हैं, कि एक परमविषयी और लम्पट पुरुषने एक कंगालस्थितिकी सुन्दरी के साथ विवाह किया। उसके साथ ऐसी शर्त थी, कि वह उसे कभी कष्ट न देगा। साथ ही यह भी स्थिर हुआ था, कि यदि वह पुरुष किसी दूसरी स्त्रीसे सम्बन्ध रक्खे, तो उसमें उस स्त्रीको कोई आपत्ति न होगी। थोड़े दिनोंके बाद उस पुरुषने एक दाई नौकर रक्खी। दाईका

रङ्ग काला परन्तु अवस्था तरुण थी। उस पुरुषने उसके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करनेका विचार कर उसे बहुत कुछ समझाया, परन्तु वह इतनी धर्मपरायण थी, कि लेश भी विचलित न हुई। उसने अनेक प्रकारसे चेष्टा की, परन्तु सभी व्यर्थ प्रमाणित हुआ। अन्तमें एक दिन शामको उसने उस दाईसे बड़ा ही आग्रह किया, परन्तु वह किसी प्रकार उसकी पूर्ति करनेको तैयार न हुई। पुरुष जब वहाँसे निराश हुआ, तब उसी उत्तेजित दशामें अपनी स्त्रीके पास गया। सहवास करनेपर स्त्री गर्भवती हो गयी। यथासमय उसने जो पुत्र प्रसव किया उसका रंग ठीक उस दासीके समान था। जो लोग अनभिज्ञ थे, वे उसे उस दासीकाही पुत्र :समझते थे। इस उदाहरणमें यह बात दिखाई देती है; कि माता पिताका वर्ण उज्ज्वल होनेपर भी पिताकी मनःस्थितिके कारण बालक श्यामवर्णका उत्पन्न हुआ। पिताकी मनःस्थितिका बालकके वर्ण पर पूरा पूरा प्रभाव पड़ा।

विद्वान डाक्टर लौ ऐसा ही दूसरा: उदाहरण देते हैं। वे लिखते हैं, कि एक सुन्दर और सुनहले केशवाले युरोपियनने एक ब्राझेलियन सुन्दरीके साथ विवाह किया। परन्तु उस स्त्रीसे उसे एक भी सन्तान न हुई। ब्राझेलियन

सुन्दरीके शरीर और केशोंका रङ्ग काला था। दैवात् बीस वर्षके बाद उसका शरीरान्त हो जाने पर उसने एक युरोपियन सुन्दरीका पाणि-ग्रहण किया। उस स्त्रीसे उसे जो बालक हुआ, उसका डीलडौल, आकारप्रकार और रूप रङ्ग आदि सभी बातें उस ब्राझेलियन सुन्दरीके समान थीं। इस बच्चेके माता पिता अँग्रेज होने पर भी उन्हें ब्राझेलियन जैसा पुत्र हुआ, इसका कारण यह था, कि वह अँग्रेज अपनी पूर्व पत्नीसे, जिसकी मृत्यु ~~बीस वर्ष~~ पहले हो चुकी थी, बड़ा ही प्रेम करता था। जब जब वह अपनी नवविवाहिता वधूके साथ सहवास करता, तब तब उसे अपनी स्वर्गवासिनी पत्नीका स्मरण हो आता था। इसी मनःस्थितिके कारण उसे वैसी सन्तान हुई।

डाक्टर केलोग एक और उदाहरण देते हैं। वे लिखते हैं, कि रोम शहरका एक न्यायाधीश ठींगना, कुरूप और कुबड़ा था। उसके यहां जिस बालकका जन्म हुआ, वह भी वैसा ही कुरूप और ठींगना था। उसे देखकर न्यायाधीशको बड़ा क्षोभ हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा, कि यदि सब बच्चे ऐसे ही हुए तो मेरा वंश ही खराब हो जायगा। अतः इनके रूप रङ्ग बदलनेकी चेष्टा करनी चाहिये। निदान वह गलन नामक एक विख्यात डाक्टरके

पास गया और उससे सलाह पूछी। डाक्टरने सलाह दी, कि अपने शयन-गृहमें शय्याके आस पास सुन्दरसे सुन्दर तीन पुतले सजादो—एक पैताने, एक शय्याकी दाहिनी ओर, और एक बायीं ओर रहे। ऐसा करवानेका एकमात्र उद्देश्य यही था, कि न्यायाधीशकी स्त्री हर वक्त उन पुतलोंको देख सके और उनका उसके मनपर गहरा प्रभाव पड़े। न्यायाधीशने डाक्टरकी आज्ञा शिरोधार्य की। फल यह हुआ, कि उसकी दूसरी सन्तान आशातीत सुन्दर हुई।

इसी प्रकार बोस्टन शहरकी एक दम्पतिने अपनी सन्तानको उत्तम बनानेके लिये एक सुन्दर बच्चेका चित्र खरीदा और सदा उसपर दृष्टि पड़ती रहे, इस प्रकार उसे घरमें टांग दिया। गर्भाधानके समय तक स्त्री और पुरुष दोनों जन उसे बराबर देखते रहे। गर्भ-स्थिति होनेके बाद केवल स्त्री उसे देखती रही। फलतः उसने जिस बच्चेको जन्म दिया, वह रूप रङ्गमें ठीक उस चित्रके अनुरूप था, यहाँ तक कि देखनेवाले उस चित्रको उस बच्चेका ही चित्र बतलाया करते थे।

तवारीख शाही नामक अरबी भाषाकी एक पुस्तकमें भी इसी प्रकारका एक उदाहरण अङ्कित है। कहते हैं,

मनचाही सन्तान

कि एक बादशाहके काले और बदसूरत लड़के उत्पन्न हुआ करते थे। बादशाहको यह पसन्द न था, अतएव उसने अपने दो बच्चोंको मार डाला। बादको तीसरा बच्चा उत्पन्न हुआ। देखनेमें वह भी वैसा ही काला था। रानीने उसे बचानेके लिये एक धुनियाके सुन्दर बच्चेसे बदल लिया। इस प्रकार बच्चोंकी जान बच गयी, किन्तु जब वे बच्चे बड़े हुए तब देखा गया, कि वह धुनियाका बच्चा बादशाहके यहां रहने पर भी धुनियोंकी तरह कुछ बड़बड़ाया करता है और जो वास्तवमें बादशाहका लड़का था, वह धुनियाके यहां रहने पर भी सब लड़कोंका बादशाह बनकर सब पर शासन करता था। बादशाहका ध्यान इस ओर आकर्षित होने पर उसने रानीसे इसका जिक्र किया। रानीने क्षमा प्रार्थना कर सारा हाल बतला दिया। बादशाहको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने इसकी वास्तविकता जाननेके लिये अनेक वैद्य और ज्योतिषियोंको बुला भेजा। ज्योतिषी तो कोई उत्तर न दे सके, पर एक वैद्यने बतलाया, कि गुणोंसे तो यह आप हीका पुत्र प्रतीत होता है, किन्तु इसका वर्ण किसी ऐसी दासीके अनुरूप हो गया है, जो सदा बेगमके पास रहती है। बादशाहको यह बात जँच गयी। वास्तवमें

उसके जनानखानेमें एक हबशी जातिकी काली दासी थी, जो सदा बेगमके पास रहती थी। बादशाहने तुरन्त उसे निकाल कर जनानखानेमें सुन्दर सुन्दर दासियाँ नियुक्त कर दीं। फलतः बादको बादशाहके जितने बच्चे हुए, वे सभी एकसे एक बड़कर सुन्दर थे।

इन सब उदाहरणोंसे सिद्ध होता है, कि माता पिता के हृदय पर खासकर गर्भाधानके बाद केवल माताके हृदय पर जान या अनजानमें जिस वर्णका जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है, उसी रङ्गकी सन्तान उत्पन्न होती है। जाति, वंश और देशका प्रभाव वहीं होता है, जहाँ अनजानमें भी किसी बाहरी बातका प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रभावके सामने जाति, वंश किंवा देशका प्रभाब असर नहीं करता। यही नियम सब नियमोंमें प्रबल है। जो माता पिता स्वयं सुन्दर न हों, किन्तु सुन्दर सन्तानकी अभिलाषा रखते हों, उन्हें इसी तरीकेसे काम लेना चाहिये। यदि माता और पिता दोनों गर्भाधानके पहले ही इस प्रकारके विचारों द्वारा अपने हृदयको प्रभाविन कर लें, तो बहुत ही उत्तम है। यदि ऐसा न हो, तो गर्भ-सञ्चारके बाद केवल माताको ही इसके लिये यत्नशील होना चाहिये। उज्ज्वल वस्त्र परिधान करना आदि बातोंसे सन्तानका

वर्ण उज्ज्वल बनानेमें सहायता मिलती है। जो लोग इस सिद्धान्तको समझ कर इसके अनुसार आचरण करेंगे, वे कुरूप और काले होनेपर भी रूपवान और गोरे बच्चोंको जन्म दे सकेंगे।

किन्तु केवल गोरापन ही सौन्दर्य नहीं है। गोरे मनुष्य भी बदसूरत हो सकते हैं। रङ्गसे भी बढ़कर सौन्दर्य बढ़ानेवाली वस्तु अंग-प्रत्यंगकी सुगठन या सुघड़ता है। शरीरके सभी अंग सुडौल और अपने वास्तविक रूपमें होनेसे मनुष्यका रंग श्याम होनेपर भी वह सुन्दर मालूम होता है। इसलिये रंगके साथ ही अंगोंकी सुघड़ता पर भी ध्यान रखना चाहिये। जिस प्रकार माता पिताके आचार विचारका बच्चोंके रंग पर प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार बच्चोंकी अंग रचना पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। गर्भाधानके समय माता पिताके हृदय जिस बातसे प्रभावित होते हैं और गर्भावस्थाके समय माता जिस चीज या जिस आकार प्रकारको देखती है, उसी प्रकार बच्चोंका भी आकार या रूप हो जाया करता है। वैज्ञानिकोंने अनेक उदाहरण और प्रयोगों द्वारा इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है। पाठकगण निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा इस सिद्धान्तको समझनेकी चेष्टा करें।

~मनचाही सन्तान~

(१) एक मनुष्यने समुद्र यात्राके समय अपनी स्त्रीसे असन्तुष्ट हो, उसे नौका परसे समुद्रमें ढकेल दिया। देवयोगसे नौकाका किनारा उस स्त्रीके हाथमें आ गया। स्त्रीने प्राण बचानेके लिये उसे पकड़ लिया, किन्तु पतिने तलवार का एक ऐसा हाथ मारा, कि उस रमणीकी उँगलियाँ कट गयीं और वह पुनः समुद्रमें जा गिरी। बादको नौकाके दूसरे लोगोंने उसे बचा लिया। कुछ दिनोंके बाद पुनः उन दोनों स्त्री पुरुषोंमें प्रेम हो गया। गर्भ रहने पर एक सन्तान उत्पन्न हुई, पर उसके उँगलियाँ न थीं। बात यह हुई, कि हजार प्रेम हो जाने पर भी स्त्री अपने पतिके उस दुर्व्यवहारको भूल न सकी। रात दिन उसका हृदय उस घटनाके स्मरणसे आन्दोलित हुआ करता था। इसी प्रभावके कारण सन्तानका वह अङ्ग दूषित हो गया।

(२) डाक्टर चेपीनका कथन है, कि एविंग्टनमें एक स्त्रीने एक ऐसी सन्तानको जन्म दिया था, जो देखनेमें एक प्रतिमाके समान थी। जांच करने पर मालूम हुआ, कि वह स्त्री अपनी गर्भावस्थामें एक ऐसी प्रतिमाको निरन्तर देखा करती थी, जो उसे बहुत ही प्रिय थी। उसके हृदय पर उस प्रतिमाका यहाँ तक प्रभाव पड़ा, कि उसकी सन्तान भी तद्रूप हो गयी।

(३) एक युरोपियन महिलाने एक बार वृक्षमें एक चैरी फल लगा हुआ देखा। उसे प्राप्त करनेके लिये वह लालायित और विह्वल हो उठी, किन्तु फल इतने ऊँचे पर था कि हजार यत्न करने पर भी वह उसे हस्तगत न कर सकी। उस समय वह गर्भवती थी। उसका मन उस फलमें लगा ही रह गया। यथा समय उसके एक कन्या उत्पन्न हुई। आश्चर्यके साथ देखा गया, कि उस कन्याके ललाट पर उसी फलके समान एक लाल रङ्गका दाग़ वर्तमान है। यह और कुछ नहीं केवल माताकी मनःस्थितिका फल था।

रोम नगरके न्यायाधीशका उदाहरण पहले दिया जा चुका है। शयन-गृहमें सुन्दर पुतलोंको सजा देनेके ही कारण उसकी सन्तान सुन्दर हुई थी। हृदय पर चाहे जानबूझ कर प्रभाव डाला जाय, चाहे किसी आकस्मिक घटनाके कारण हृदय प्रभावित हो उठे, सन्तान पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसी लिये गर्भावस्थामें स्त्रियोंको भयसे बचाने और यत्नपूर्वक रखनेका विधान है।

हमारे यहाँ देवी, देवता, भूत, पिशाच और राक्षसोंके रूपका बहुत ही विचित्र वर्णन किया गया है। गर्भावस्थामें किसी विचित्र रूपवाले देवताका दर्शन करने पर यदि गर्भिणीका हृदय प्रभावित हो उठे, तो उसी रूपवाली

सन्तान उत्पन्न होना असम्भव नहीं। कभी कभी ऐसे ही किसी कारणसे सन्तानका आकार प्रकार और रूप रङ्ग विचित्र हो जाया करता है। देहातोंमें लोग महावीरके बड़े भक्त हुआ करते हैं। हम स्वयं ऐसे कई माता पिताओंको जानते हैं, जो महावीरके भक्त हैं। सन्तानके लिये महावीरसे प्रार्थना करते रहने पर उनके जो पुत्र हुए, उनका बड़े प्रेमके साथ "महावीर" नाम रक्खा गया। आश्चर्यकी बात तो यह है, कि उन बच्चोंके चेहरे ठीक महावीर हनुमानके चेहरेसे मिलते जुलते हैं। श्रद्धावान लोग इन बच्चोंको महावीरका प्रसाद या उनकी देन मान सकते हैं, किन्तु हमारा सन्तान विषयक विज्ञान तो यही कहता है, कि महावीरका स्मरण और ध्यान करनेसे ही उनके बच्चोंके चेहरे महावीरकेसे हो गये।

गर्भावस्थामें न केवल किसीका ध्यान करनेसे ही बच्चोंके रूपपर प्रभाव पड़ता है, बल्कि किसी आकस्मिक कारणसे उत्पन्न होनेवाले भय, चिन्ता, हर्ष और शोकका भी प्रभाव पड़ता हैं। स्काटलैण्डमें एक गर्भिणी स्त्री किसी जड़ पदार्थको देखकर भयभीत हो गयी थी, अतः उसने वैसे ही जड़वत् पुत्रको जन्म दिया था। बोस्टनके एक धनकुबेरकी स्त्री एक तोतेको देखकर डर गयी थी।

फलतः उसने जिस बच्चेको जन्म दिया, उसकी बोलचाल प्रायः तोतेके समान थी। इसी प्रकार एक स्त्रीने एक पालतू मेंढ़ेका पहले सिर कुचल डाला, बादको उसे उस पर बड़ी दया आयी और उसने बड़ा पश्चाताप किया। इस घटनाका उसके हृदय पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा, कि उस गर्भस्थ बालककी छाती उसी मेंढ़ेकी तरह दबी हुई और सिर बाहर निकला हुआ था। इसी प्रकार अपंग, अन्धे, लूले, लङ्गड़े तथा विचित्र आकार प्रकारके मनुष्योंकी ओर देखने या उनका ध्यान करने से गर्भस्थ बालकका आकार प्रकार वैसा ही हो जाता है।

हमारे यहाँ रजोदर्शनके बाद ऋतुस्नाता स्त्रीको सर्वप्रथम पतिका ही मुख देखनेका आदेश दिया गया है।* कहा गया है, कि स्त्री उस समय जिसका मुँह देखती है, उसीके अनुरूप सन्तान उत्पन्न होती है। गर्भाधानके समय स्त्रियोंका जिस वस्तु पर ध्यान चला जाता है, उसके अनुरूप भी सन्तानका आकार हो जाया करता है।†

---

* इच्छन्ती भर्तृसदृशं पुत्रं पश्येत् पुरः पतिम्—वाग्भट।

† गर्भौपयत्तौ तु मनः स्त्रियायं जन्तु व्रजेत्तत्सदृशं प्रसूते।

—चरक, शरीर स्थान।

इसलिये गर्भ-धारणके समय तथा गर्भावस्थामें स्त्रियोंको अपने पतिके ही रूप और गुण पर मुग्ध रहना चाहिये। यदि पतिमें कोई दोष हो, तो उसे सर्वथा भूल जाना ही श्रेयस्कर है। हाँ, यदि पति सुन्दर न हो, अथवा पतिकी इच्छा हो, कि पुत्र किसी महापुरुष या महात्माके समान हो, तो पतिकी आज्ञा प्राप्त कर स्त्रीकी उस पुरुष या महात्मामें अनुरक्त रहना अनुचित नहीं, परन्तु यह कार्य पतिकी सम्मति, इच्छा और आज्ञाके बिना कदापि न होना चाहिये।

तंग कपड़े पहननेसे और एक ही करवट या एक ही आसनसे सोने या बैठनेकी आदतसे गर्भस्थ बच्चेके सब अंग समानरूपसे बढ़नेमें व्याघात पड़ता है और किसी किसी अंगमें दोष उत्पन्न हो जाता है। इसलिये गर्भिणीको इन बातोंसे बचना चाहिये। इसी प्रकार एक फ्रेञ्च विद्वानका कथन है, कि भिन्न भिन्न भावावेश और विकारोंके कारण सन्तानके अंग विकृत हो जाया करते है। बेडौल होंठ, फटी हुई आंखें, सिकुड़ी हुई भौहें आदि दोष ऐसे ही विकारोंसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये गर्भावस्थामें स्त्रियोंको किसी भावावेशके कारण उत्तेजित न होना चाहिये।

इन सब बातों पर ध्यान रख, जो लोग सौन्दर्यको अपना लक्ष्य बनायेंगे; वे अवश्य सुन्दर सन्तान उत्पन्न कर सकेंगे। वैज्ञानिकोंने नाना प्रकारकी वैज्ञानिक खोज और प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है, कि सुन्दर वस्तुओंके दर्शनसे, मनुष्य जातिमें बसी हुई सुन्दरताकी ओर विशेष ध्यान देनेसे, प्राकृतिक सुन्दरताका अवलोकन करनेसे, बारम्बार सुन्दर चित्र देखनेसे, मनुष्य स्वयं सुन्दर हो सकता है और अपनी सन्तानको सुन्दर बना सकता है। यदि सौन्दर्य वास्तवमें वाञ्छनीय वस्तु है, तो प्रत्येक मनुष्यका—प्रत्येक माता पिताका यह कर्तव्य होना चाहिये, कि वह इन सरल और सहजसाध्य वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा अवश्य अपनी सन्तानको सुन्दर बनानेकी चेष्टा करें।

१६

स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करनेका तरीका।

स्वास्थ्य जीवनमें सफलता प्राप्त करनेका मूलमन्त्र है। जो मनुष्य चिररोगी होता है, उसे अपने जीवनमें कभी भी सफलता नहीं मिलती। उसे अपने छोटेसे छोटे कामके लिये भी पराया मुँह ताकना पड़ता है। स्वास्थ्यहीन मनुष्यको जीनेमें भी मजा नहीं आता—उसे अपना जीवन भाररूप हो पड़ता है। बिना स्वास्थ्यके न वह आप ही सुखी रह सकता है, न दूसरोंको ही सुखी कर सकता है, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये, कि उसकी सन्तान पूर्णरूपसे स्वस्थ हो।

साधारणतया संसारमें यही दिखाई देती है, कि माता पिता बच्चोंकी सुन्दरताके लिये जितने लालायित रहते हैं, उतना उनके स्वास्थ्यके लिये नहीं रहते। उदाहरणके

लिये दूर न जाकर अपने घर या पड़ोसके ही किसी बच्चेको आप देखेंगे, तो आपको मालूम होगा, कि बच्चा दुबला पतला, क्षीणकाय और रोगी होनेपर भी उसके माता पिता उसे गहने और कपड़े पहना कर सुन्दर बनानेके लिये बहुत ही उत्कण्ठित हो रहे हैं। बच्चोंको अच्छे अच्छे वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत देखकर उनका हृदय अभिमानके कारण फूल उठता है, परन्तु उन्हें यह खयाल नहीं आता, कि सौन्दर्यके इन बाह्य उपकरणोंसे बच्चेका कोई उपकार नहीं हो सकता। बिना स्वास्थ्यके सौन्दर्य बेकार है। जो बच्चे स्वस्थ नहीं होते, वे अपने माता पिताको भी सुखी नहीं कर सकते। स्वास्थ्य और सौन्दर्यमें घनिष्ट सम्बन्ध है। जो मनुष्य पूर्ण स्वस्थ होता है, वह काला या सांवला होनेपर भी प्राकृतिक सौन्दर्यसे मण्डित रहता है। स्वास्थ्य नष्ट हो जानेपर सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है। इसलिये पसन्दगीके समय स्वास्थ्यको सौन्दर्यके पहले स्थान मिलना चाहिये। स्वास्थ्य और सौन्दर्यका योग सोना सुगन्धका योग है। यदि सुन्दर सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा हो, तो उसके साथ ही यह भी विचार रखना चाहिये कि वह सन्तान सुन्दर होनेके साथ ही स्वस्थ भी हो। बिना इसके सौन्दर्य सार्थक

नहीं हो सकता—माता पिता या स्वयं उस बच्चेके लिये भी आनन्दका कारण नहीं हो सकता।

आहार विहार और जीवनचर्याकी अनियमितताके कारण मनुष्य मात्र बीमार हुआ करते हैं। बच्चे भी इस प्रकार बीमार हो सकते हैं। यद्यपि उनकी इस बीमारीके लिये भी माता पिता ही जिम्मेदार होते हैं, परन्तु इस जिम्मेदारीसे वे किसी प्रकार मुक्त किये जा सकते हैं, किन्तु अनेक बच्चे माता पिताके दोषसे रोगको अपने साथ ही लेकर इस धराधाममें अवतीर्ण होते हैं। यह रोग आजन्म उनके साथ रहते हैं और जब जाते हैं, तब उनको भी अपने साथ लेते जाते हैं। जो माता पिता इस प्रकार अपने दोषसे अपने बच्चेको रोगी बनाते हैं, वे किसी प्रकार भी अपने दायित्वसे मुक्त नहीं किये जा सकते। इसके लिये पूर्णरूपसे वही जिम्मेदार होते हैं।

पूर्णरूपसे स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करना एक दिनका काम नहीं। जिस प्रकार केवल विचारमात्रसे सन्तानको सुन्दर या सुघड़ बनाया जा सकता है, उस तरह केवल विचारसे ही सन्तान पूर्ण स्वस्थ नहीं बनायी जा सकती। सन्तानको पूर्ण स्वस्थ बनानेके लिये गर्भाधानके पूर्वसे लेकर बच्चोंकी बाल्यावस्था तक यत्न करना होता है।

~मनचाही सन्तान~

गर्भाधानके पहले माता पिताको ब्रह्मचर्य और संयमी जीवनके नियमों द्वारा अपने रज-वीर्यको विशुद्ध एवम् निर्दोष बनाना होता है (पिछले अध्यायोंमें यह सब नियम हम अङ्कित कर चुके हैं) गर्भाधानके समय सन्तानको उन समस्त रोगोंसे बचानेकी चेष्टा करनी होती है, जो वंश परामपरासे—पुस्तदरपुस्त—बच्चोंको वीरासतमें मिलते जाते हैं। (इन रोगोंका वर्णन हम आगे चलकर अंकित करेंगे) गर्भावस्थामें माता पिताको—खास कर माताको उन सभी बातोंका त्याग करना पड़ता है, जिनका बच्चेके स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़नेकी सम्भावना होती है। बच्चेका जन्म होनेके बाद जिस समय वह दूध पीता है, उस समय भी अनेक प्रकारसे सावधान रहना होता है। इन अवस्थाओंके कर्त्तव्यों पर भी हम आगे चलकर प्रकाश डालेंगे। यहां तो केवल हम सूत्ररूपसे यह बतला देना चाहते हैं, कि स्वस्थ सन्तान भी उत्पन्न करना मनुष्यके अधिकारकी बात है और वह चाहे तो उपरोक्त अवस्थाओंमें थोड़ी सी सावधानी रख, अपनी यह आकांक्षा पूर्ण कर सकता है।

परन्तु स्वास्थ्यके सम्बन्धमें एक बात बड़े मारकेकी है। किसी बच्चेका स्वास्थ्य केवल विचारसे ही सुधारा

नहीं जा सकता। विचारके साथ साथ रज-वीर्यकी विशुद्धता, पवित्र जीवनचर्या आदि अन्यान्य बातों पर भी ध्यान रखना होगा। बिना इन सब बातोंके एक सन्तान निरोग नहीं हो सकती, परन्तु सन्तानको रोगी बनानेके लिये एक विचार, एक चिन्ता, एक मनोभाव या एक कार्य भी पर्याप्त होता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने ऐसे अनेक उदाहरण संग्रह किये हैं, जिनमें देखा गया है, कि जरा सी चिन्ता या विकारके कारण सन्तान चिररोगी हो गयी है। सन्तानको रोगसे बचाना भी उसको स्वस्थ बनानेके समान है, अतएव हम अपने पाठकोंकी जानकारीके लिये कुछ उदाहरण उद्धृत कर रहे हैं, ताकि वे अपनी सन्तानको इस प्रकार रोग-ग्रस्त होनेसे बचा सकें।

(१) एक युरोपियन महिलाने एक दिन बाहर जाते समय अपने प्यारे बच्चेको हड़बड़ीमें सोनेकी दवा इतनी अधिक दे दी कि जब वह घर लौटी, तब उसने अपने बच्चेको मरा हुआ पाया। उसे इससे बड़ा पश्चाताप हुआ। यह पश्चाताप दिनपर दिन बढ़ता ही गया। कुछ दिनोंके बाद वह गर्भवती हुई, परन्तु मानसिक अवस्था खराब होनेके कारण उसकी दूसरी सन्तान रोगी उत्पन्न हुई। इसका स्वभाव बहुत हठीला और चिड़चिड़ा था। कुछ दिनोंके

बाद इसकी मृत्यु हो गयी। माताका शोक और भी बढ़ा। इसी अवस्थामें तीसरी बार गर्भ रहा। इस बार जो बच्चा उत्पन्न हुआ, वह उससे भी अधिक रोगी था। दो वर्षकी उम्र होते न होते यह भी चल बसा। अन्तमें माताकी भी इसी शोकमें मृत्यु हो गयी। इस प्रकार माताके शोकने न केवल उसके बच्चोंको ही रोगी बनाया, बल्कि अन्तमें स्वयं उसका भी प्राण लिया।

(२) एक शराबीकी स्त्रीने अपने तीन बच्चोंके स्वभावकी विभिन्नता वर्णन करते हुए बतलाया कि मेरे तीनों बच्चे मेरी भिन्न भिन्न अवस्थाके परिचायक हैं। जिस समय पहला बच्चा गर्भमें था, उस समय मैं पूर्णरूपसे सुखी थी, अतएव वह भी हँस-मुख और सुन्दर हुआ। इसके बाद मेरा पति शराब पीने लगा। मुझे यह पसन्द न था। मैं बहुत उदास रहती थी। फलतः उस समय गर्भ रहने पर जो बच्चा उत्पन्न हुआ, वह वैसी ही उदासीन प्रकृतिका हुआ। तीसरे बच्चेके समय पतिने शराबके पीछे सर्वस्व नष्ट कर दिया था। मेरे दुःखका वारापार न था। मेरी प्रफुल्लताका स्थान खिन्नताने अधिकृत कर लिया था, अतएव वह बच्चा भी रोती सूरतका उत्पन्न हुआ। मैंने देखा कि गर्भावस्थाके समय मेरी

जैसी मनःस्थिति थी, ठीक वैसी ही मनःस्थितिवाले बच्चे उत्पन्न हुए।

(३) एक स्त्रीके दो बच्चे थे—एक लड़का और एक लड़की। लड़की तो पूर्ण स्वस्थ थी, पर लड़का दुबला पतला, उदासीन और रोगी था। मातासे इस सम्बन्धमें पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि जिस समय लड़का गर्भमें था, उस समय उसका श्वसुर बीमार होनेके कारण रात दिन उसे उसकी परिचर्या करनी पड़ती थी। लड़कीके समय उसे किसी बातकी फिक्र या चिन्ता न थी। इसी कारणसे लड़की पूर्ण स्वस्थ और लड़का रोगी उत्पन्न हुआ।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने इसी तरहके अनेक उदाहरण संग्रह किये हैं, जिनसे सिद्ध होता है, कि गर्भावस्थाके समय यदि माता किसी कारणसे चिन्तित, खिन्न या उदास रहती है, तो उसकी सन्तान भी रोगी, कुरूप और बुरे स्वभावकी हो जाती है। गर्भावस्थामें रोगीके पास बैठने उठने या उसकी सेवा सुश्रूषा करनेसे, बहुत ज़्यादा या बहुत कम परिश्रम करनेसे, तंग कपड़े पहननेसे और क्रोध करनेसे भी सन्तान रोगी हो जाती है। अतएव प्रत्येक माता—यदि वह चाहती हो, कि उसकी सन्तान

रोगी न हो, तो ऐसी ऐसी बातोंमें पूर्ण सावधानीसे काम लेना चाहिये।

स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करनेके लिये माताको शान्त और प्रसन्न रहना परमावश्यक है। उसे भूलकर भी क्रोध न करना चाहिये। हँसी दिल्लगी और विनोदके कामोंमें सदा संलग्न रहना चाहिये। गृह-कार्य निपटाते हुए थोड़ा थोड़ा परिश्रम करते रहना चाहिये। रातको खूब अच्छी तरह सोना चाहिये। सदा विशुद्ध और मुक्त वायुमें रहना चाहिये। हो सके तो सुबह शाम घण्टा आध घण्टा कहीं टहलना चाहिये और तङ्ग कपड़े पहननेसे सदा दूर रहना चाहिये। इन सब बातों पर ध्यान रखनेसे मातायें भी स्वस्थ और प्रसन्न रहेंगी और इस अवस्थामें उन्हें जो सन्तान उत्पन्न होगी वह भी पूर्ण स्वस्थ, सुन्दर तथा हँसमुख होगी।

१७

किसी खास गुणवाली सन्तान उत्पन्न करनेका तरीका।

गत अध्यायोंमें इच्छानुसार पुत्र या कन्या उत्पन्न करनेका और उसे सुन्दर एवम् स्वस्थ बनानेका तरीका अंकित किया जा चुका है। अब हम अपने पाठकोंको सन्तति-शास्त्रका वह अनमोल नुस्खा बताने जा रहे हैं, जिसके द्वारा वे अपनी सन्तानमें मन पसन्द गुणकी स्थापना कर सकते हैं। सन्तति-शास्त्रके इस सिद्धान्तको एक बार समझ लेनेपर पाठकगण अनायास अपनी सन्तानको विद्वान, बुद्धिमान, शिल्पी, कला-कुशल, वैज्ञानिक या राजनीतिज्ञ बना सकेंगे। उसमें देवत्व या दानवत्व उत्पन्न कर सकेंगे और इस बातकी प्रत्यक्ष रूपसे परीक्षा ले सकेंगे, कि मनचाही सन्तान उत्पन्न करना मनुष्याधीन है या दैवाधीन ?

~मनचाही सन्तान~

गत अध्यायोंमें प्रसंगानुसार अनेक बार यह बात कही गयी है, कि गर्भाधान और गर्भावस्थाके समय माता पिताकी जैसी मनःस्थिति रहती है, वैसी ही सन्तान उत्पन्न होती है। वास्तवमें यह मनःस्थिति ही सन्तानमें सब प्रकारके गुण और दोष उत्पन्न करती है। यदि इच्छा-शक्ति और मनोबल द्वारा मनःस्थिति मनपसन्द बना ली जाय, तो मनपसन्द सन्तान उत्पन्न हो सकती है। विद्वान पुत्र उत्पन्न करनेके लिये माता पिताकी मनःस्थिति विद्वानोंकी सी होनी चाहिये। पर यदि वे मूर्ख हों और उनकी मनःस्थिति विद्वानकी सी न हो, तो उन्हें इस बातकी चेष्टा करनी होगी, कि उनकी मनःस्थिति विद्वानोंकी सी हो जाय। इच्छा-शक्ति और मनोबलके सहारे यह काम आसानीसे किया जा सकता है। कहना व्यर्थ है, कि उन्हें इस चेष्टामें जितनी सफलता प्राप्त होगी, उतने ही अंशोंमें उनकी सन्तान विद्वान होगी। यही मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेका मूलमन्त्र है। यही सन्तानमें मनपसन्द गुण उत्पन्न करनेका अनमोल नुस्खा है। यही सन्तति-शास्त्रका सार-सिद्धान्त है। अपने पाठकोंको कुछ उदाहरण और वक्तव्योंके सहारे अब हम इसे हृदयङ्गम करानेकी चेष्टा करेंगे।

~मनचाही सन्तान~

यह तो हम सभी लोग जानते हैं, कि मन और शरीरमें गहरा सम्बन्ध है। हमारे प्रत्येक आचार विचारका शरीर पर प्रभाव पड़ता है। जिस समय मनमें किसी प्रकारका दुःख या चिन्ता होती है, उस समय चेहरा उतर जाता है। जिस समय मनमें हर्ष होता है, उस समय चेहरेसे भी प्रसन्नता टपकने लगती हैं। इसी प्रकार क्रोध, मोह और अभिमान आदि मनोभाव भी चेहरेसे प्रकट हो जाया करते हैं। जो लोग सदा क्रूर कर्म करते हैं, उनकी आकृति क्रूरता प्रकट करने लगती है और जो लोग शान्त, सुशील और सज्जन होते हैं, उनकी आकृति भी उन्हीं भावोंके अनुरूप हो जाती है।

यह सब ऐसी बातें हैं, जो हम नित्य ही देखते हैं और देख सकते हैं। मनोभाव और विचारोंका शरीर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इनके अनुसार मनुष्यकी मुख-मुद्रा बदल जाया करती है, परन्तु यह बात बहुत कम लोग जानते होंगे, कि इन मनोभाव, विचार और आचरणोंके कारण रूप रङ्ग और आकार प्रकारमें इतना परिवर्त्तन हो सकता है, कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह बात सुननेमें आश्चर्यजनक होनेपर भी उतनी ही सत्य है, जितना दिनके बाद रातका होना।

पशु पक्षी और कीट पतङ्गोंमें तो यह बात बहुतायतसे देखी जाती है, कि अपनी रक्षा या किसी अन्य कारणसे जब किसीको अपना रूप रङ्ग बदलनेकी इच्छा होती है, तब धीरे धीरे परिवर्त्तन होना आरम्भ होता है और अन्तमें उसका रूप रङ्ग या आकार प्रकार उसकी इच्छाके अनुसार हो जाता है। वृक्ष और तृणमें रहनेवाले अनेक कीट पतङ्ग अपना प्राण बचानेके लिये दूसरोंकी नजरसे बचना चाहते हैं और इसी लिये उन्हें इच्छा होती है, कि उनका रंग तृण किंवा पत्तोंके समान ही हो। फलतः उनका रंग हरा हो जाता है। घासमें रहनेवाले कई कीड़े वर्षामें हरे और गर्मीमें मैले रंगके हो जाते हैं, क्योंकि घासका रंग उन दिनों वैसा ही हुआ करता है। इसी प्रकार पक्षियोंके रंग भी निमित और परिवर्त्तित होते देखे गये हैं। अमेरिकाके इलेप्स नामक सर्पने प्राण-रक्षाके लिये अपना रंग इस तरह बदल डाला है, कि अब वह बहुत ही विषैली जातिका सर्प मालूम होता है, फलतः जो जानवर पहले उसे आसानीसे अपना शिकार बना लेते थे, वे अब उसके पास जानेमें भी भय करते हैं।

पशुओंमें भी यही बात पायी जाती है। पालतू और जंगली कुत्ते, बिल्ली, गाय, भैंसे या शूकरोंमें जमीन आसमान

का फर्क होता है। पालतू किंवा बस्तीमें रहनेवाले उपरोक्त पशुओंके रूप रंग, दांत, सींग या पंजोंमें वह बात नहीं पायी जाती, जो जंगली पशुओंमें होती है। जंगली पशुओंको अपनी रक्षाके लिये तीक्ष्ण दांत और पंजे, मजबूत सींग तथा भयङ्कर रूप रंगकी आवश्यकता प्रतीत होती है, अतएव उनका रूप रंग वैसा ही हो जाता है। पालतू जानवरोंको इनकी आवश्यकता न होनेके कारण उनमें यह बातें नहीं पायी जाती। सिंह, बाघ, भालू प्रभृति हिंसक पशुओंका रूप रंग इन्हीं सब बातोंको लेकर निर्मित होता हैं।

इस सम्बन्धमें बहुत कुछ सोच, विचार, छानबीन और खोज करनेके बाद वैज्ञानिक इस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, कि प्रत्येक प्राणीका—मनुष्यसे लेकर पशु-पक्षी और कीट-पतंग तकका—रूप रंग और आकार प्रकार उसके स्वभाव और उसकी इच्छाके अनुसार निर्मित हुआ करता है। इच्छाके अनुसार प्रत्येक प्राणी अपने रूप रंग या आकार प्रकारमें परिवर्त्तन कर सकता है। वह अपने चाहे जिस अंगको परिपुष्ट या क्षीण बना सकता है। अपने शरीरको चाहे जिस ढाँचेमें ढाल सकता है। इसके लिये उसके मनमें होनी चाहिये केवल इच्छा—ऐसी इच्छा जो दृढ़ हो, प्रबल हो, अटल हो।

~ मनचाही सन्तान ~

मनुष्यकी शरीर-रचना ऐसी आश्चर्यजनक है, कि इसके सम्बन्धमें ज्यों ज्यों विचार करिये, त्यों त्यों नये नये रहस्य परिलक्षित होंगे। मनुष्यकी एक इच्छा, एक विचार, एक कार्य या एक शब्दका प्रभाव किस प्रकार और कहाँ कहाँ पड़ता है, गर्भाधानके समय रज और वीर्य द्वारा किंवा गर्भावस्थाके समय माताके शारीरिक यन्त्रों द्वारा गर्भस्थ बच्चे पर इन बातोंका किस प्रकार प्रभाव पड़ता है—यह सब बतला कर हम अपने पाठकोंको विज्ञानके गहरे दलदलमें फँसाना नहीं चाहते। इन सब बातोंको विस्तारपूर्वक अङ्कित करनेके लिये हमारे पास स्थानका भी अभाव है। संक्षेपमें हम अपने पाठकोंको केवल इतना ही बतला देना चाहते हैं, कि हमारे मनमें जो कुछ इच्छा, विचार या भाव उत्पन्न होते हैं, वे न केवल हमारे शरीर पर ही प्रभाव डालते हैं, बल्कि शरीरके सूक्ष्मातिसूक्ष्म यन्त्रों द्वारा हमारे बच्चों पर भी उनका गहरा प्रभाव पड़ता है। यह क्रिया हमारी जान और अनजान दोनों अवस्थाओंमें समान रूपसे हुआ करती है। जबतक शरीरके यन्त्र-समुदायमें कार्य-शक्ति रहती है—जबतक मनुष्य जीवित रहता है—तबतक इसमें बाधा नहीं दी जा सकती। हाँ, यह अवश्य हो सकता है, कि हम अपनी

इच्छा-शक्ति पर नियन्त्रण रक्खें—उसे अपनी इच्छानुसार परिचालित करें, ताकि उसका प्रभाव भी हमारी इच्छाके ही अनुकूल हो।

इच्छा-शक्तिका प्रभाव बहुत विलक्षण होता है। एक मनुष्यकी इच्छा-शक्ति, एक मनुष्यके विचार, एक मनुष्यकी मनःस्थिति जिस प्रकार स्वयं उसके शरीर पर प्रभाव डालती है, उसी तरह उसकी सन्तानके शरीर पर भी। हमारे पाठकोंको सुनकर शायद आश्चर्य होगा, कि इच्छा-शक्तिका यह प्रभाव यहीं तक पहुंच कर नहीं रह जाता। उसकी पहुंच और भी बहुत दूरतक होती है। जिस प्रकार वह सन्तानके शरीर तक पहुंचता है, उसी प्रकार सन्तानकी आन्तरिक शक्तियों तक उसकी पहुंच हो जाती है। शरीर पर प्रभाव पड़नेसे जिस प्रकार सन्तानकी शारीरिक शक्तियोंका विकास होता है, उसी प्रकार आन्तरिक शक्तियों पर प्रभाव पड़नेसे उसकी मानसिक शक्तियोंका विकास होता हैं। अंगोंकी सुन्दरता, परिपूर्णता, सुघड़ता, वर्णकी उज्ज्वलता आदि बातें शारीरिक विकासके कारण और बुद्धिमत्ता, कार्य-कुशलता, पाण्डित्य आदि बातें मानसिक विकासके कारण उत्पन्न होती हैं। सन्तानका शारीरिक विकास करनेके लिये माता पिताकी मनःस्थिति

कैसी होनी चाहिये और उन्हें किन उपायोंसे काम लेना चाहिये, यह पिछले अध्यायोंमें बतलाया जा चुका है, अतएव अब केवल मानसिक शक्तियोंके विकासका उपाय हम अङ्कित करेंगे। पाठकगण निम्नलिखित उदाहरणों पर ध्यान दें और इस सिद्धान्तको समझनेकी चेष्टा करें।

(१) मनःस्थितिके प्रभावका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण वीर नैपोलियनका हैं। जिस समय नैपोलियन गर्भमें था, उस समय उसकी माता तेज घोड़े पर सवारी करती थी, अपने पतिके साथ सैनिकोंके बीचमें रहती, युद्ध चर्चा करती और सुनती, युद्ध-क्षेत्रमें विचरण करती और वीर पुरुषोंके जीवन चरित्र पढ़ती। गर्भस्थ नैपोलियन पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। इसी प्रभावके कारण वह अतुल योद्धा और महान रण-पण्डित हुआ।

(२) भारतीय योद्धाओंमें अर्जुन-पुत्र अभिमन्युका भी उदाहरण इसी कोटिका है। सुभद्राने गर्भावस्थामें अर्जुनसे व्यूह भेदन आदिकी बातें सुनी थीं, फलतः अभिमन्युको बिना शिक्षाके ही इस कलाका ज्ञान हो गया था।

(३) विलायतमें एक बार एक बहुत ही नम्र और सुशील माता पिताके यहां एक क्रोधी पुत्रका जन्म हुआ।

वह जब देखो तब सब पर दुलत्तियां ही झाड़ा करता। माता पिता सुशील होनेपर भी पुत्र इतना क्रोधी क्यों हुआ, इसकी जांच करने पर मालूम हुआ, कि जिस समय वह गर्भमें था; उस समय कुछ सैनिकोंने उसके घर पर आक्रमण किया। उसकी माताने सैनिकोंसे बहुत विनय अनुनय किया, कि उसे कष्ट न दिया जाय, पर जब सैनिकोंने न माना, तब उसने लात और घूँसों द्वारा सनिकोंकी मरम्मत कर अपना प्राण बचाया। बच्चे पर इस घटनाका काफी प्रभाव पड़ा। डाक्टर फाउलरने उसके मस्तिष्ककी जांच की तो मालूम हुआ, कि उसकी संहारक-शक्तिने अधिक विकास पाया है। इसीलिये उस बालकका स्वभाव क्रोधी हुआ।

(४) एक सज्जन किसी बैङ्कमें अच्छे पद पर काम करते थे। किसी समय आर्थिक सङ्कटके कारण वे जालसाज़ी करनेके लिये मजबूर हुए। उन्होंने जालसाजी कर बैङ्कसे रुपये तो हड़प लिये, पर इस कार्यसे उनके मनमें सदैव पश्चताप होता रहा। उनकी इस अवस्थामें उन्हें जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह बड़ा होनेपर चोर निकला। कहना व्यर्थ है, कि उस पिताके वीर्य द्वारा यह गुण उसे जन्मसे ही वीरासतमें मिला था।

(५) एक कप्तान साहब कभी शराब न पीते थे। ब्याहके दिन दूसरोंके कहे सुनेमें आ गये और शराब पी ली। एक तो बैजू बावरे दूजे चढ़ी भंग। ब्याहकी उमङ्ग पर शराबका रङ्ग चढ़ते ही वे नाचने कूदने लगे। संयोग होने पर स्त्रीको उसी दिन गर्भ रह गया। कप्तान साहबका तो दूसरे दिन नशा उतर गया और वे काम पर चले गये, पर वे अपनी मनःस्थितिका बीज एक ही दिनमें बोते गये। यथा समय उनके एक कन्या उत्पन्न हुई। जब वह बड़ी हुई तो देखा गया, कि वह अकारण ही मतवालोंकी तरह नाच-कूद और हर्षनाद किया करती है। यह और कुछ नहीं, कप्तान साहबको उमङ्ग और शराबके रङ्गका प्रभाव था। बेचारी उस कन्याने उन्हींसे यह सब बातें पायी थीं।

(६) पतिकी आँखें खराब हो जानेके कारण एक बार एक महिलाको पतिका कारबार सम्हालना पड़ा। इसका अधिकांश समय कारबारका हिसाब किताब लिखने और जांचनेमें व्यतीत होता था। इस काममें निपुण न होने पर भी उसको यह सब करना पड़ता था। अपने अदम्य उत्साहके कारण वह इसमें निपुणता प्राप्त करनेकी चेष्टा करती थी। इसी अवस्थामें उसे गर्भ रहा। यथा-

समय एक कन्या उत्पन्न हुई। वह जब बड़ी हुई, तो गणित-शास्त्रमें बहुत ही प्रवीण निकली। इसका एकमात्र कारण माताकी मनःस्थिति थी। गर्भस्थ कन्या पर उसका प्रभाव पड़ा; फलतः वयस्क होने पर उसकी गणित-शक्ति विकसित हो उठी।

(७) भारतमें सुशिक्षित लोगोंमें ऐसे बहुत कम लोग होंगे, जिन्होंने मास्टर मनहर बरवेका नाम न सुना हो। मास्टर मनहर बरवे छः वर्षकी अवस्थासे ही गाता बजाता है। देशी और विदेशी बीसों प्रकारके वाद्य-यन्त्र बजानेका उसे ज्ञान है। गान-कलामें भी वह बड़े बड़े उस्तादोंके कान काट लेता है। मास्टर मनहर बरवेकी बहिन भी गान-कलामें ऐसी ही निपुण हैं। इनकी निपुणताका रहस्य यही :है, कि :इनके माता पिता भी गान-विद्यामें निपुण थे, अतएव जन्मसे ही यह शक्ति लेकर ये भूमिष्ठ हुए हैं।

विद्वानोंने इसी प्रकारके अनेक उदाहरण एकत्र किये हैं। खोज करने पर पाठकोंको अपने आसपास भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, उन पर ध्यान देनेसे यह बात आसानीसे समझमें आ आयगी, कि गर्भाधान और गर्भावस्थाके समय माता

पिताकी जैसी मनःस्थिति होती है, वैसी ही सन्तान उत्पन्न होती हैं। इस सिद्धान्तको ध्यानमें रख, मन पसन्द सन्तान उत्पन्न की जा सकती है। सन्तानमें जो गुण उत्पन्न करनेकी इच्छा हो, उसीके अनुकूल मनस्थिति बना लेनेसे सन्तान उसी गुणकी होती है। आगे चलकर इस सम्बन्धमें हम अपने पाठकोंको और भी कई बातें बतायेंगे। यहां हम अब एक दो ऐसे उदाहरण देना चाहते हैं, जिनमें उपरोक्त सिद्धान्तके अनुसार आचरण कर सन्तानमें इच्छित गुण उत्पन्न किया गया है।

(१) कहते हैं, कि सुप्रसिद्ध "चार्ल्स किंग्स्ली" जिस समय गर्भमें था, उस समय उसकी माताने विचारा कि इस समय मेरे आचार विचार आदिका मेरी गर्भस्थ सन्तान पर प्रभाव होगा—अपने हृदयमें वैराग्य और धर्म-वृत्तियोंको विकास दिया। वह सांसारिक ऐश्वर्य और सुखोंका परित्याग कर साधुभावसे रहने लगी। उसने नगरका रहना छोड़ कर ग्रामवास स्वीकार किया। अपना अधिकांश समय वह सृष्टि सौन्दर्य और प्रकृतिकी मनोहरता देखनेमें व्यतीत करती और सृष्टि-चातुर्यके लिये ईश्वरको धन्यवाद देती। इसी प्रकार गर्भावस्थाका समय व्यतीत होने पर उसके गर्भसे महात्मा किंगसलीका जन्म हुआ।

इन्होंने सृष्टि-सौन्दर्य पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा और एक प्रतिष्ठित धर्माध्यक्षके रूपमें आयु बितायी।

(२) इसी प्रकार एक अन्य महिलाने भी उपरोक्त सिद्धान्तके अनुसार अपनी मनःस्थितिको बदल कर इच्छानुसार बच्चे उत्पन्न किये थे। उसने स्वयं अपना वृत्तान्त इस प्रकार बतलाया है :—

"मेरे पहले पुत्रके प्रसव होनेसे केवल एक मास पहले मैं यह बात जाननेको समर्थ हुई, कि मनःशक्ति द्वारा इच्छानुसार गुणोंवाली सन्तान उत्पन्न की जा सकती है, किन्तु जन्म समय अधिक निकट होनेके कारण मैं अपने पहले पुत्र पर मनःशक्ति द्वारा पूर्ण रूपसे इष्ट प्रभाव नहीं डाल सकी और वह साधारण बुद्धिका उत्पन्न हुआ।

जब दूसरा पुत्र मेरे गर्भमें आया तो मेरी इच्छा हुई, कि उसे उत्तम और प्रभावशाली वक्ता बनाऊँ। मैं प्रसिद्ध प्रसिद्ध वक्ताओंके भाषण सुननेको जाया करती और उनके भाषणोंको ध्यानपूर्वक सुनती। सुयोग्य वक्ता और लेखकोंके लेख और कविताएं पढ़ती और अपने लक्ष्यका विचार रखती। इसी क्रमसे भाषण सुनते और लेख पढ़ते गर्भवासके दिन पूरे हुए। इस बार ऐसे पुत्रका

जन्म हुआ, कि जिसमें वक्तृत्व-शक्तिने आशातीत विकास पाया था। इस बच्चेकी मस्तक परीक्षा करते हुए डाक्टर फाउलर कहता है कि "इसमें (१) कल्पना-शक्ति, (२) किसी बातको दिखा देनेवाली—दर्शा देनेवाली—शक्ति, (४) भाषण माधुर्य, (५) बुद्धि और स्मरण-शक्ति आदिने बहुत ही उत्तमता पूर्वक विकास पाया था।

तीसरे पुत्रके गर्भमें आनेपर मेरी इच्छा हुई, कि उसे चित्रकारी आदिमें कुशलहस्त और प्रवीण उत्पन्न करूँ। इसी इच्छासे मैं "न्यूयार्क" "बोस्टन" "फ़िलेडेल्फिया" "बालटीमोर" "मानट्रील" आदि नगरोंमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध चित्रकारोंके चित्रालयोंमें जाती और उनके अंकित किये हुए अति मनोहर और सुन्दर चित्रोंका बहुत ध्यानपूर्वक सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन तथा अभ्यास करती और मुक्तकण्ठसे उनके हस्तकौशलकी प्रशंसा करती। मैंने अपने तीसरी बारके गर्भवासका प्रायः सारा समय इसी प्रकार निकाला। समय पर मेरे तीसरे पुत्रका जन्म हुआ, कि जिसके वयस्क होने पर मेरी आशालता पूर्णरूपसे फलवती हुई। इसमें (१) अवलोकन-शक्ति, (२) योजना-शक्ति और (३) प्रत्येक बातको सीख लेनेकी शक्तिने विशेषतासे विकास पाया था। अन्तमें मैं निश्चयपूर्वक कहती हूं, कि गर्भा-

वस्थामें मैंने जिस जिस विषयमें अपनी मनःशक्तिको लगाया, उस ही उस विषयमें मेरी सन्तान योग्य उत्पन्न हुई।"

इन सब उदाहरणोंसे यह स्पष्ट होता है, कि मनःस्थितिके अनुसार ही सन्तान उत्पन्न होती है। मनःस्थिति बदल कर मनुष्य मनपसन्द सन्तान उत्पन्न कर सकता है। यही मनःशक्ति, मनोबल, इच्छा-शक्ति, आत्मबल, हृदयबल प्रभृति भिन्न भिन्न नामोंसे सम्बोधित की गयी है। पाठकोंको इसके सहारे मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

इस सम्बन्धमें एक बात विशेष ध्यान रखने योग्य है। गर्भावस्थाके नव महीनेमें गर्भस्थ बच्चेके भिन्न भिन्न अंग तैयार होते हैं। पहले चार महीनेमें उसकी शारीरिक शक्तियोंका और पिछले पाँच महीनोंमें मानसिक शक्तियोंका विकास होता है। यदि सन्तानकी शरीरिक शक्तियाँ बढ़ानी हो—उसे सुन्दर सुघड़ और हृष्ट-पुष्ट बनाना हो, तो इसके लिये इच्छा-शक्तियोंको पहले चार महीनोंमें काममें लगाना होगा। यदि सन्तानकी मानसिक शक्तियां बढ़ानी हों—उसकी अवलोकन-शक्ति, स्मरण-शक्ति, विचार-शक्ति, सहन-शक्ति या धैर्य, सत्यता, प्रतिभा,

वीरत्व आदि गुण बढ़ाने हों, तो इसके लिये पिछले पाँच महीनोंमें चेष्टा करनी होगी। यह निर्दिष्ट समय बीत जाने पर चेष्टाका कोई फल न होगा।

इस पुस्तकके पाँचवें अध्यायमें शारीरिक और मानसिक तपकी रूप-रेखा अंकित की गयी है। संयमी जीवन नामक अध्यायमें भी बहुत सी बातें बतलायी गयी हैं। इन दोनों अध्यायोंमें बतलाई हुई बातोंका जिन्हें अभ्यास होगा उनके लिये मनःस्थितिको बदलना या किसी खास प्रकारकी बनाना बांय हाथका खेल है, किन्तु जिन्हें इन बातोंका अभ्यास नहीं, उन्हें इसके लिये कुछ चेष्टा करनी होगी।

मनोबल बढ़ाने या मनःस्थितिको मनपसन्द बनानेके लिये दृढ़ता, आत्म-विश्वास, एकाग्रता और स्थिरता बहुत ही आवश्यक है। पहले छोटी छोटी बातोंसे अभ्यास करना होगा, ताकि निष्फलताके कारण निराशा न उत्पन्न हो। छोटी छोटी बातोंका अभ्यास हो जाने पर बड़े विषयमें हस्तक्षेप करना चाहिये। मनःस्थिति ठीक करनेका सबसे अच्छा तरीका यह है, कि जिस विषय पर अभिरुचि हो और सन्तानमें जो बातें उत्पन्न करनी हों, रोज एकान्तमें एकाग्रतापूर्वक उनका मनन और ध्यान किया

जाय। इस समय ध्यान कहीं अन्यत्र न जाना चाहिये। मनमें कोई दूसरा विचार न आना चाहिये। मनको सब ओरसे खींचकर उसी ओर लगाना चाहिये। बिना इसके पूर्ण सफलता न होगी। इस साधनाके साथ साथ मनमें इस बातका दृढ़ विश्वास होना चाहिये, कि मेरी शक्ति बढ़ रही है और मुझे अवश्य सफलता प्राप्त होगी। इससे वास्तवमें सफलता निकट आती हुई दिखाई देगी।

इस प्रकार चेष्टा करने पर मनोबल केन्द्रीभूत होगा—बढ़ेगा और मनःस्थिति ठीक हो जायगी। मनःस्थिति मनपसन्द बनानेके बाद गर्भाधान होनेपर सन्तानमें इच्छित गुणोंके बीज आप ही आप रोपित हो जायँगे। गर्भावस्थामें भी यदि इसके लिये कुछ चेष्टा की जायगी, तो वह बीज और भी बिकसित हो उठेगा और इस प्रकार चाहे जिस गुणवाली सन्तान उत्पन्न करनेमें सफलता प्राप्त होगी।

* * *

१८

सन्तान पर दाम्पत्य-प्रेमका प्रभाव।

संसारमें अनेक प्रकारके प्रेम हैं, परन्तु दाम्पत्य-प्रेम ही उन सबोंमें श्रेष्ठ है। दाम्पत्य-प्रेम दो विभिन्न हृदयों-को एक बनाता है। ईश्वरका सृष्टि-कार्य भी इसी प्रेमके सहारे चलता है। यदि दाम्पत्य-प्रेम जैसी कोई वस्तु न होती, तो शायद यह संसार ही न होता। इसीलिये संसारमें दाम्पत्य-प्रेमको सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो रहा है।

प्रेमकी भावना यद्यपि मनुष्यमात्रमें जन्मसे ही विद्यमान रहती है, किन्तु फिर भी बिना किसी कारणके कोई किसीको प्रेम नहीं करने लगता। जब किसीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध हो जाता है, किसीमें कोई खास गुण दिखाई देता है, तब हृदयमें एक प्रकारका आकर्षण उत्पन्न

होता है और वही बढ़ते बढ़ते प्रेमका रूप धारण करता है।

पाश्चात्य देशोंमें स्त्री-पुरुष तब तक विवाह-बन्धनमें आबद्ध नहीं होते, जब तक उनमें परस्पर प्रेम नहीं हो जाता। इस प्रेमके मूल कारण बहुधा दो ही होते हैं—रूप और गुण। कभी कभी लोग एक दूसरेका अलौकिक सौन्दर्य देखकर परस्पर मुग्ध हो जाते हैं और कभी कभी गुण। किसी भी कारणसे पहले आकर्षण उत्पन्न होता है और बादको वे एक दूसरेको प्रेम करने लगते हैं। प्रेमके बाद जब विवाह होता है, तब अपने वैवाहिक सम्बन्धके कारण वे एक दूसरेको पहलेसे भी अधिक चाहने लगते हैं और इस प्रकार उनका प्रेम यहां तक बढ़ जाता है, कि वे “एक प्राण दो देह” का प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित करने लगते हैं।

दाम्पत्य-प्रेमका भी सन्तान पर गहरा प्रभाव पड़ता है, इसलिये उत्तम सन्तानकी इच्छा रखनेवाले दम्पतियोंमें प्रेमका होना अनिवार्य बतलाया गया है। बिना प्रेमके सन्तान अच्छी नहीं हो सकती। इसीलिये डाक्टर फाउलरने कहा है, कि जिनमें आन्तरिक प्रेम हो, उन्हींको विवाह बन्धनमें आबद्ध होना चाहिये—जिनमें प्रेम न हो वे विवाह किंवा सहवास न करें।

~मनचाही सन्तान~

यहां पर हम अपने पाठकोंको यह भी बतला देना चाहते हैं, कि प्रेम और विषय-वासना दोनों पृथक पृथक पदार्थ हैं। युवावस्थामें अधिकांश युवक जिस प्रेमके कारण दीवाने हो जाते हैं, वह बहुधा प्रेम नहीं—विषय-वासना ही हुआ करती है। प्रेम बहुत ऊँचे दरज्जेकी चीज़ है। यह जहाँ होता है, वहां आत्म-त्याग, उदारता, निःस्वार्थता, सहिष्णुता आदि महान और स्वर्गीय भावोंका साम्राज्य होता है, किन्तु जहाँ विषय-वासना होती है, वहां इनका पता भी नहीं लगता। वहां छलकपट, स्वार्थ और असत्यकी ही लीला दृष्टिगोचर होती है। सन्तानको उत्तम बनानेके लिये दम्पतियोंमें नैसर्गिक प्रेम होना चाहिये—विषय-वासना नहीं। डाक्टर डाउलरने भी इसी प्रेमकी आवश्यकता बतलाई हैं, न कि विषय-वासनाकी।

पाश्चात्य देशोंमें प्रेमके नाम पर जितने विवाह होते हैं, उनमेंसे अधिकांश विषय-वासनाके ही कारण होते हैं। इसका सबसे जबर्दस्त प्रमाण यह है, कि विवाहके बाद वहाँ दम्पतियोंमें दाम्पत्य-प्रेमकी वृद्धि न होकर बहुधा सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक) की नौबत आ पहुंचती है। नैसर्गिक प्रेम निःस्वार्थ होता है, अतएव उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती है, किन्तु विषय-वासनाके कारण प्रेमका जो

ढकोसला खड़ा किया जाता है, वह स्वार्थमय होनेके कारण ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों उसमें शिथिलता आती जाती है।

नैसर्गिक प्रेम और विषय-वासनाके सम्बन्धमें एक बात और भी लक्ष्य करने योग्य है। जो लोग नैसर्गिक प्रेम करते हैं, वे अपने प्रेमीके गुणों पर ही विशेष ध्यान रखते हैं। रूपकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता, किन्तु विषय-वासनाके कारण जो प्रेम होता है, उसमें गुणकी अपेक्षा रूपको ही प्रधानता दी जाती है। यदि मनुष्य गुणवान हुआ, तो ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों उसके गुण बढ़ते जाते हैं। यदि किसी कारणसे उनमें वृद्धि न हुई तो कमसे कम उनके घट जानेका तो भय नहीं रहता, परन्तु रूपवान मनुष्यका रूप और यौवन ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों नाशकी ओर अग्रसर होता जाता है। यही कारण है, कि जो प्रेम विषय-वासनाको लेकर किया जाता है, वह कुछ ही दिनोंके बाद रूप, यौवन किंवा नवीनता नष्ट हो जाने पर लोप हो जाता है।

खैर, विषय-वासना या नैसर्गिक प्रेम—दो मेंसे चाहे जिस बातको लेकर पाश्चात्य देशोंमें विवाह होता हो

किन्तु यह तो निर्विवाद है, कि वहांके स्त्री पुरुष एक दूसरे पर मुग्ध हुए बिना विवाह नहीं करते, परन्तु भारतमें ऐसा नहीं है। यहांकी परिस्थिति ठीक इसके विपरीत है। पाश्चात्य देशोंमें जहाँ पहले प्रेम और फिर विवाह होता है, वहां भारतवर्षमें पहले विवाह और बादको प्रेम होता है। हम पहले ही कह चुके हैं, कि यह प्रेम किसी सम्बन्ध किंवा रूप अथवा गुणके आकर्षण बिना नहीं होता। हमारे देशमें विवाह होनेके पहले प्रायः इस बातका पूरा पूरा पता नहीं चलता, कि लड़कीमें कितना रूप या कितने गुण हैं। इन बातोंका वास्तविक पता तो विवाह होनेके बाद ही चलता है, अतएव पाश्चात्य देशोंमें विवाहके पहले ही दम्पतियोंमें रूप या गुणके कारण जो आकर्षण या प्रेम हो जाता है, वह हमारे देशमें नहीं उत्पन्न हो पाता। यहां पति और पत्नी—वर और वधू—विवाहके पहले एक दूसरेका मुँह भी नहीं देख पाते। ऐसी अवस्थामें विवाहके पहले ही उनमें किसी प्रकारका प्रेम हो जाय और विवाह होते ही उस प्रेमके कारण वे उत्तम सन्ततिको जन्म देने लगें—इस बातकी तो आशा ही कैसे की जा सकती है?

हमारे यहां दाम्पत्य-प्रेमका सबसे पहला श्रीगणेश

वैवाहिक सम्बन्धसे होता है। जब वर और वधूको यह मालूम हो जाता है, कि हम दोनों एक दूसरेके जीवन-सङ्गी हैं--हम दोनोंका विवाह हो गया है, तब सर्वप्रथम उनके हृदयमें दाम्पत्य-प्रेमका अङ्कुर फूटना आरम्भ होता है, परन्तु हम यह कहे बिना नहीं रह सकते, कि अशिक्षा और वर्त्तमान दूषित वायु-मण्डलके कारण इस समय नव-दम्पतियोंके हृदयमें उच्च विचार उत्पन्न होनेके बदले प्रायः विषय-वासनाकी ही तरंगे उछलने लगती हैं। विवाहके पहले हीसे यदि वे वयस्क हुए, तो अपनी वासना-तृप्तिके सुख-स्वप्न देखने लगते हैं। यौवनकालमें प्रत्येक स्त्री और पुरुषकी यही अवस्था होती है। उनके हृदयमें रात दिन वासनाकी आग जला करती है। विवाह होनेके बाद यदि वर-वधूने एक दूसरेको रूपवान पाया, तो मानो उनकी उस अग्निमें आहुति पड़ जाती है। फिर उनकी तबियत हाथमें नहीं रहती। देशमें अशिक्षाका इतना प्राबल्य है, कि बिवाहका वास्तविक उद्देश्य, सन्तान, नैसर्गिक प्रेम आदि बातोंका किसीको ज्ञान ही नहीं होता। यदि सौभाग्यवश शिक्षित होनेके कारण किसीको कुछ ज्ञान हुआ भी, तो वह इस समय उसे ताक पर रख देता है। कुछ दिनों तक अबाध रूपसे उस वासनाकी तृप्ति

की जाती है। अन्तमें जब शक्ति क्षय हो जाती है, इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, हौसले पस्त हो जाते हैं, तब उनका ध्यान उस ओरसे हटकर अन्यान्य बातोंकी ओर आकर्षित होता है।

जबतक उपरोक्त अवस्था रहती है, तबतक नव-दम्पति इतने अन्ध हो जाते हैं, कि एक दूसरेके गुण दोषपर उनका ध्यान ही नहीं जाता, किन्तु कुछ दिनोंके बाद जब उधरसे विरक्ति होती है, तब वे एक दूसरेके गुण दोषोंकी आलोचना करने लगते हैं। यदि सौभाग्यवश स्त्री और पुरुष— दोनोंमें कुछ गुण हुए और उनकी प्रकृति एक दूसरेसे मिल गयी, तब तो उनका शेष जीवन सानन्द व्यतीत हो जाता है, अन्यथा वे एक दूसरेसे अलग हो जाते हैं या विरक्त भावसे जीवन बिता देते हैं।

यह हमारे देशवासियोंके दाम्पत्य-प्रेमकी रूपरेखा है। हमारे यहां विवाह होने पर पहले पहल जो प्रेम उत्पन्न होता है, उसे प्रेम न कह कर विषय-वासना ही कहना होगा। इस वासनाका क्षय होनेपर, यदि एक दूसरेकी प्रकृति मेल खा जाती है और वे निस्वार्थ भावसे एक दूसरेको चाहने लगते हैं, तो उनमें नैसर्गिक प्रेमका उदय होता है। उत्तम सन्तानके लिये यही नैसर्गिक प्रेम

आवश्यक होता है। यही प्रेम सन्तानको सुन्दर और सद्गुणी बनाता है, परन्तु यह दुर्भाग्यकी ही बात कही जायगी, कि अधिकांश दम्पति ऐसा प्रेम उत्पन्न होनेके पहले ही विषय-वासनाके कारण या तो दर्जनों बच्चोंको जन्म दे चुके होते हैं या अपनी शक्तिको यहां तक क्षय कर चुके होते हैं, कि उनमें इस समय सन्तानोत्पादनकी क्षमता ही नहीं रह जाती। यदि इस वासनासे रहित प्रेमके साथ साथ पहलेका सा रूप हो, पहले की सी जवानी हो, पहले की सी उमङ्ग हो, पहले का सा बल-वीर्य हो, तो वे देखकर चकित हो उठेंगे, कि उन्हें जो सन्तान उत्पन्न हुई है, वह सीमातीत सुन्दर और सद्गुण सम्पन्न है। नैसर्गिक प्रेम, रूप और यौवनको पाकर बच्चोंको गुलाबकी तरह सुन्दर, सुकुमार और हँस-मुख बना देता है।

देशकी प्राचीन प्रथाओंका बदल देना किसीके सामर्थ्यकी बात नहीं। न कोई प्रथा एक दिनमें बनती है न कोई एक दिनमें बदली ही जा सकती है। यदि कोई प्रथा समाजके लिये हानिकर होती है, तो वह आप ही धीरे धीरे बदल जाती है। सन्तानकी दृष्टिसे हमारे देशकी बर्त्तमान वैवाहिक प्रथा लाभदायक नहीं है।

प्रेम होनेके बाद जो विवाह किये जाते हैं, वे सन्तानकी दृष्टिसे बहुत अच्छे होते हैं। यद्यपि जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, अनेक प्रेमी अपनी विषय-वासनाको ही प्रेमके नामसे सम्बोधित करते हैं, किन्तु जो लोग ऐसा करते हैं, वे संसारको नहीं बलिक अपने आप हीको ठगते या धोखा देते हैं। विवाहके बाद पति-पत्नीमें; जब अनबन हो जाती है * या जब बुरी सन्तान उत्पन्न होती है, तब उन्हें इसका फल हाथोहाथ मिल जाता है।

डाक्टर फाउलरका कथन है, कि प्रेम ही वह वस्तु है जो माता पिताके शारीरिक और मानसिक गुणोंको सन्तानमें हस्तान्तरित करती है। प्रेमका मस्तिष्क, स्नायुमण्डल और शरीरके अन्यान्य यन्त्रोंसे घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस प्रकार माता पिताके वीर्य, विचार, कार्य किंवा मनोभावोंका सन्तान पर प्रभाव पड़ता है, उसी तरह प्रेमका भी प्रभाव पड़ता है। यदि प्रेम नैसर्गिक हुआ, तो सन्तान उत्तम होती है और प्रेमकी ओटमें वासना

---

* डाक्टर फाउलर कहते हैं, कि अपने चालीस वर्षके अनुभवसे मैं यह बात कह सकता हूं कि विषय-वासनाके कारण बारम्बार जो संयोग किया जाता है, वही बिवाहित स्त्री पुरुषोंको एक दूसरेसे अलग करने—उनमें अनबन करानेका कारण होता है।

छिपी हुई रहती है, तो सन्तानमें भी उसी तरहकी वासना, छलकपट और स्वार्थ-बुद्धिका आधिक्य होता है। डाक्टर फाउलरने इस सम्बन्धमें कई उदाहरण अङ्कित किये हैं। पाठकगण यदि निम्नलिखित उदाहरणों पर ध्यान देंगे, तो उन्हें हमारे कथनकी यथार्थता पर विश्वास होगा और वे यह बात अच्छी तरह समझ जायँगे, कि सन्तान पर दाम्पत्य-प्रेमका भी प्रभाव कुछ कम नहीं पड़ता।

(१) एक दिन डाक्टर फाउलर अपनी स्त्रीके साथ घूमने निकले। रास्तेमें दो बच्चों पर उनकी दृष्टि पड़ी। ये बहुत ही सुन्दर, हँस-मुख और हृष्ट-पुष्ट थे। उन्हें देखकर डाक्टर फाउलरकी पत्नीको उनके माता पिताको देखनेकी इच्छा हो आई। बच्चोंसे उनका नाम व पता पूछ कर वे उनसे मिले। मिलने पर उन्होंने देखा कि माता पितामें किसी प्रकारका सौन्दर्य न था, किन्तु उन दोनोंमें परस्पर इतना प्रेम था, कि कभी किसीने किसीको एक कटुवचन तक न कहा था। दोनों एक प्राण दो देहके उदाहरण हो रहे थे। इसीलिये स्वयं सुन्दर न होने पर भी उनके बच्चे सीमातीत सुन्दर थे।

(२) एक बार एक स्त्री अपने चौदह वर्षके बच्चेको डाक्टर फाउलरके पास जांच करानेके लिये ले गयी। स्त्री

स्वयं बहुत ही हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर थी, किन्तु उसका वह बच्चा दुबला पतला और बेवकूफ सा दिखाई देता था। माता और पुत्र दोनोंकी परीक्षा करने पर डाक्टर फाउलर को मालूम हुआ, कि वह स्त्री स्वस्थ और सुन्दर होने पर भी उसमें पतिके प्रति प्रेमका अभाव था। उसके मस्तिष्कमें उस प्रेमका विकास ही न हुआ था। फलतः इसी प्रेमाभावके कारण उसकी सन्तान सौन्दर्य, स्वास्थ्य और बुद्धि आदि गुणोंसे वञ्चित रह गयी थी।

(२) इसी प्रकार एक हृष्ट-पुष्ट महिला अपनी सोलह वर्षकी कन्याको डाक्टर फाउलरके पास ले गई थी। उसका कहना था, कि इस लड़कीको कोई जरा भी कुछ कहता या उलाहना देता है, तो यह रो पड़ती है। सदा उदास और खिन्न रहती है। बाइबलको छोड़ और कोई पुस्तक नहीं पढ़ती। डाक्टर फाउलर मस्तिष्क-विद्याके पण्डित थे। उन्होंने उस लड़कीका मस्तिष्क देखा, तो उन्हें मालूम हुआ, कि उसमें दृढ़ता, प्रेम और अवलोकन-शक्तिका अभाव था। लड़कीका मस्तिष्क ऐसा क्यों हो गया, इस सम्बन्धमें पूछताछ करने पर उसकी माताने बतलाया, कि मेरे पतिका स्वभाव बहुत ही बुरा था। गर्भावस्थाके समय में उसके व्यवहारसे

बहुत ही दुःखित रहती थी। अक्सर निराशाके कारण रोया करती :और दिल बहलानेके लिये बाइबल पढ़ा करती। डाक्टर फाउलरने निर्णय किया, कि दाम्पत्य-प्रेमके अभाव और माताकी मनःस्थितिके ही कारण कन्याका मस्तिष्क ऐसा हो गया था।

पहले उदाहरणसे यह अच्छी तरह जाना जा सकता है, कि दाम्पत्य-प्रेमके कारण सन्तान किस प्रकार उत्तम हो सकती है और दूसरे व तीसरे उदाहरणसे इस बात पर प्रकाश पड़ता है, कि माता पिताकी शारीरिक अवस्था अच्छी होने पर भी यदि उनमें दाम्पत्य-प्रेमका अभाव होता हैं, तो सन्तानकी शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ विकृत हो जाती हैं। विषय-वासनाका प्रभाव तो इससे भी अधिक भयङ्कर होता है। वैज्ञानिकोंने इसके भी अनेक उदाहरण संग्रह किये हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये दो एक नीचे दिये जाते हैं :--

(१) रोमका बादशाह नीरो अपनी क्रूरता और कुटिलताके लिये सुप्रसिद्ध है, किन्तु उसने यह सब गुण अपने माता पिताकी ही ओरसे विरासतमें पाये थे। उसकी माता एग्रीबीना परम विषयी और दुर्गुणोंकी खानि थी। पिता अहिनोबार्बस भी वैसा ही था। उसने न जाने

कितनी हत्यायें की थीं। उसकी विषय-वासना तो इतनी प्रबल थी, कि उसने अपनी माता और बहिनको भी न छोड़ा था। माता पिताकी इस विषय-वासनाके ही कारण नीरो मनुष्य होने पर भी मनुष्यतासे रहित था।

(२) एक मनुष्य राजनैतिक क्षेत्रमें बहुत बड़ा आदमी था, किन्तु उसका चरित्र अच्छा न था। १४ वर्षकी अवस्थामें अपने चचाकी लड़कीसे व्याह कर उसने पिताका स्थान प्राप्त किया था। उसकी बहिनें भी व्यभिचारिणी थीं। यहां तक कि व्याहके पहले ही उन्हें बच्चे हो गये थे। ६० वर्षकी अवस्थामें भी यह मनुष्य कुटनखाने चलाता था। इसके यह दुर्गुण कई पुस्त तक बच्चोंको विरासतमें मिलते गये। इसके लड़केका लड़का जेल गया और वहां आग लगाने पर स्वयं भी जल मरा। पाँचवीं पुस्तमें भी एक ऐसा सपूत निकला था, जो घरमें चार चार स्त्रियाँ मौजूद होने पर भी ६५ वर्षकी अवस्थामें एक दुश्चरित्रा स्त्रीके साथ कहीं भाग गया था। यह सब और कुछ नहीं, विषय वासनाका घोर परिणाम था।

इन उदाहरणोंसे पाठकगण अच्छी तरह समझ गये होंगे, कि सन्तान पर दाम्पत्य-प्रेमका भी यथेष्ट प्रभाव पड़ता है। संसारमें पद पद पर इसके उदाहरण मिल

सकते हैं। संक्षेपमें अब हम इतना ही कहना चाहते हैं, कि दाम्पत्य-प्रेमसे बच्चे देवता बन जाते हैं। दाम्पत्य-प्रेमका अभाव होनेसे बच्चे मनुष्यत्वसे भी वञ्चित रह जाते हैं और विषय-वासना होने पर वे निरानिर राक्षस बन जाते हैं। यह अब माता पिताके अधिकारकी बात है, कि चाहे वे अपनी सन्तानको राक्षस बनायें, चाहे देवता बनायें और चाहे उन्हें मनुष्यत्वसे भी वञ्चित कर दें।

१६

सन्तान पर कौलिक गुण दोषका प्रभाव।

"The fundamental character, disposition of an individual may be inherited as much as are his physical and intellectual qualities."
—Dr. Barnad Hollender. *

संसारमें हम यह एक साधारण नियम देखते हैं, कि कि पशु, पक्षी, कीट पतङ्ग, लतावृक्ष आदि सभी जड़ और चेतन पदार्थ अपने ही समान जड़ या चेतन पदार्थोंको जन्म देते हैं। जो जैसा होता है, उससे वैसी ही चीज

---

* जिस प्रकार माता पिताकी ओरसे शारीरिक और बुद्धि विषयक गुण बच्चोंको विरासतमें मिलते हैं, उसी तरह उनका चालचलन और स्वभाव भी उन्हें बिरासतमें मिलता है।

—डाक्टर बरनाड हौलेण्डर।

उत्पन्न होती है। मानव समाजमें भी यही बात पाई जाती है। माता पितामें जो गुण या दोष होते हैं सन्तानको भी वही विरासतमें मिलते है। शारीरिक और मानसिक गुण किंवा शक्तियोंके अतिरिक्त माता पिताका चालचलन, उनका स्वभाव और उनके रोग भी बच्चोंको विरासतमें मिलते हैं। वैज्ञानिकोंने यह भी सिद्ध किया है, कि यह बातें बच्चोंमें पुस्त दर पुस्त उतरती चली जाती हैं। कभी कभी कोई गुण या दोष बीचकी दो चार पुस्तोंमें नहीं भी दिखाई देता, किन्तु इसके बाद वह फिर फूट निकलता है। अनेक रोग तो ऐसे भी होते हैं, जो सात पुस्त तक बच्चोंको विरासतमें मिलते चले जाते हैं। यदि बीचमें इनको बढ़नेका कोई कारण न मिला, तो यह घटते घटते निर्मूल हो जाते हैं और यदि बढ़नेका कारण मिल गया, तो यह ऐसा उग्ररूप धारण करते हैं, कि मनुष्यका सर्वनाश ही हो जाता है।

प्रत्येक जाति अपने बच्चोंको अपना ही सा चेहरा विरासतमें देती है। स्वभाव और गुण भी इसी तरह विरासतमें उतरते हैं। आइरिश लोग कुछ क्रोधी स्वभावके होते हैं अतः यह गुण पुस्त दर पुस्त उनकी सन्तानमें उतरता चला जाता है। फ्रान्सवासियोंकी प्रकृति कुछ

लोभी और मिलनसार होती है। इटलीके लोग गान-विद्यामें निपुण होते हैं। अंग्रेज अभिमानी होते हैं। इसी तरह भारतमें भी वंशगत गुण दोष या स्वभावके ऐसे ही अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। पारसियोंमें उदारता, मुसलमानानोंमें धर्मान्धता और हिन्दुओंमें नम्रता व सन्तोष इसी कारणसे दिखाई देता है। बङ्गालियोंमें सङ्गीत-प्रेम, गुजरातियोंमें वाणिज्य-बुद्धि, मारवाड़ियोंमें संचय-शीलता आदि बातें उन्हें वंशपरम्परासे ही विरासतमें मिलती है।

अङ्गोंकी बनावट, दांतोंका आकार, केशोंका रङ्ग, गोरा या सांवलापन, गति या चालढाल आदि अनेक बातें बच्चोंको इसी तरह विरासतमें मिलती हैं। जिन्दगी या आयुष्य भी इसी तरह विरासतमें मिलता है। किसी किसी वंशके मनुष्य इसी कारणसे दीर्घायु किंवा अल्पायु हुआ करते हैं। हां, यदि माता पिता इन बातोंमें कोई परिवर्त्तन करना चाहें तो इस पुस्तकमें बतलाये हुए मनोबलवाले सिद्धान्तके सहारे इसमें परिवर्त्तन कर सकते हैं। यदि अनजानमें भी माता पिताकी मनःस्थिति किसी कारणसे बदल जाती है, तो उसके कारण भी इस विरासतके काममें बाधा पड़ जाती है। किन्तु वैसे—साधारण अवस्थामें—सब बातें इसी नियमके अनुसार बच्चोंको

विरासतमें मिलती है और “आत्मनो जायते पुत्रः” की कहावत चरितार्थ होती है।

ख़ैर, बच्चोंको माता पिताकी ओरसे जहां तक अच्छी चीजें विरासतमें मिलती है, तहांतक किसीको उसमें आपत्ति नहीं हो सकती। यदि माता पिता अपने बच्चोंको अपना रूप सौन्दर्य, अपनी शक्ति, अपना बाहुबल, अपनी बुद्धि, अपनी सुशीलता आदि आदरणीय चीजें विरासतमें दे सकें, तो यह बहुत ही आनन्दकी बात है। जिस प्रकार धनीमानी लोग अपने नौनिहालोंके लिये विपुल सम्पत्ति विरासतम छोड़ जाते हैं और उससे उनका सितारा चमक उठता है, उसी तरह उपरोक्त गुण भी विरासतम पाकर बच्चे निहाल हो जाते हैं। धनकी अपेक्षा इन गुणोंका मूल्य कहीं अधिक है, अतएव प्रत्येक माता पिताकी ओरसे बच्चोंको ऐसे गुण अधिकसे अधिक तादादमें मिलते रहें, तो वह सबसे अधिक प्रशंसनीय कहा जा सकता है।

किन्तु यह बड़े खेदकी बात है, कि :अधिकांश माता पिताओंकी ओरसे बच्चोंको ऐसे आदरणीय गुणोंकी अपेक्षा दुर्गुण और रोग ही विरासतमें अधिक मिलते हैं, जो उनका सर्वनाश कर देते हैं। इन दुर्गुणोंके कारण उन्हें

अपने जीवनमें कभी भी सफलता नहीं मिलती। रोगोंके कारण उनकी शरीर श्रृङ्खला—उनकी काठी ऐसी कमजोर हो जाती है, कि जीवन-संग्राममें क्षण भरके लिये भी उनके लिये ठहरना कठिन हो जाता है। जीवनमें पद पद पर आनेवाली कठिनाइयोंसे टक्कर लेनेकी उनमें क्षमता ही नहीं रह जाती। जो माता पिता अपने बच्चोंको ऐसे दुर्गुण या ऐसे रोग विरासतमें देते हैं, वे चाहें जितना धन छोड़ जायँ, चाहे जितनी कीर्त्ति छोड़ जायँ, चाहे जितनी जमीन जायदाद छोड़ जायँ, किन्तु वह सभी बेकार है। बच्चोंको दुर्गुण और रोग विरासतमें मिलनेसे उन्हें जो हानि होती है, उसका बदला इन पदार्थोंसे क्या कभी चुक सकता है ! *

माता पिताओंको चाहिये कि अपने बच्चोंके लिये धन दौलत या जमीन जायदाद छोड़ जानेके लिये अधिक

---

*"The child who inherits from its parents a frail and feeble constitution, incompetent to cope with the exgencies of life, has an evil heritage for which no amount of money, good name, or worldly wealth can possibly compensate." —J. H. KELLOGG M. D.

चिन्ता न करें, किन्तु उन्हें सद्गुण और स्वास्थ्य विरासतमें देनेके लिये सदा सचेष्ट रहें। सद्गुण और स्वास्थ्य-सम्पन्न बच्चोंको धनकी कमी न रहेगी, किन्तु स्वास्थ्य-हीन बच्चे धन ही लेकर क्या करेंगे? बिना स्वास्थ्यके धनका उपभोग भी नहीं हो सकता और यदि बच्चोंमें कोई दुर्गुण हुआ, तो वे वह लाखोंकी दौलत देखते देखते स्वाहा कर देंगे। नीचे हम कतिपय हानिकर बातोंका उल्लेख कर रहे हैं, जो बच्चोंको माता पिताकी ओरसे विरासतमें मिलती हैं। माता पिताको सन्तान उत्पन्न करनेके पहले एक बार अच्छी तरह देख लेना चाहिये, कि उनमें कोई ऐसी बात तो नहीं है, जो बच्चोंको विरासतमें मिलकर उनका अनिष्ट साधन करे। यदि कोई वैसी बात दिखाई दे, तो यथा सम्भव उसे निर्मूल करनेके बाद ही सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये। बच्चोंको निम्नलिखित बातें विशेष रूपसे विरासतमें मिलती हैं :—

काठी—काठी किंवा शरीरकी गठन कमजोर होनेसे बच्चोंको अपने जीवनमें पद पद पर कठिनाईका सामना करना पड़ता है और पर मुखापेक्षी होना पड़ता है। जिन माता पिताओंकी शारीरिक शृङ्खला या काठी अच्छी न हो, उन्हें गर्भाधानके पहले और गर्भावस्थामें

व्यायाम, ब्रह्मचर्य, संयम, मनोबल आदि साधनों द्वारा इस त्रुटिको दूर करनेकी भरसक चेष्टा करनी चाहिये।

क्षय—क्षयकी बीमारी बच्चोंको बराबर विरासतमें मिलती है। जिसके माता पिताकी मृत्यु इस रोगसे होती है, उसे सदैव यह रोग होनेकी सम्भावना बनी रहती है। अतएव जिन्हें यह रोग हो अथवा जिनके फेफड़े कमजोर हों, उन्हें—यदि वे अपने वंशमें इस रोगका बीज बो जाना नापसन्द करते हों—सन्तानोत्पत्तिके कार्यसे दूर ही रहना चाहिये।

दुर्बल आमाशय व हृत्पिण्ड—अन्न पचानेवाले यन्त्रको आमाशय और हृदयको हृत्पिण्ड कहते हैं। शरीरमें यह दोनों यन्त्र बहुत ही महत्वपूर्ण है। आमाशय कमजोर होनेसे सदा बदहजमी और कब्जियतकी शिकायत बनी रहती हैं और हृत्पिण्ड दूषित होनेसे रक्तकी गति बराबर नहीं हो पाती। कहना व्यर्थ है, कि इनसे बच्चोंका जीवन भाररूप हो सकता है और वे असमयमें ही मृत्युकी गोदमें सो सकते हैं।

स्नायुओंकी विशृङ्खलता—हमारे समूचे शरीरमें स्नायु किंवा ज्ञानतन्तुओंका जाल बिछा हुआ है। इन स्नायुओंके ही कारण मनुष्यके स्वभाव और गुण

दोषोंमें विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यदि माता पिताकी ओरसे दृढ़ और स्थिर स्नायु विरासतमें मिलते हैं, तो बच्चे दृढ़ और शान्त प्रकृतिके होते हैं। यदि माता पिताके स्नायु विश्रृङ्खलित और उत्तेजित होते हैं; तो बच्चोंका स्वभाव तामसी, अस्थिर और चिड़चिड़ा होता है। भांग, तम्बाकू, अफीम, गाँजा आदि नशीली चीजोंके सेवनसे माता पिताके स्नायु विश्रृङ्खलित हो जाते हैं और बच्चोंको वही स्नायु विरासतमें मिलने पर उन्हें मूर्च्छा, मिरगी आदि भयंकर रोग हो जाया करते हैं।

उन्माद—उन्माद या पागलपनका रोग भी बच्चोंको विरासतमें मिलता है। जिन लोगोंके मस्तिष्क-में कोई विकार हो, जो सनकी हों, जिन्हें कोई मानसिक रोग हो या जो नशीली चीजोंका व्यवहार करते हों, उन्हें इनसे मुक्त हुए बिना सन्तान न उत्पन्न करनी चाहिये, क्योंकि यही सब बातें उन्माद उत्पन्न करती हैं।

रुचि—खान पान किंवा अन्यान्य विषयोंकी ओर जो रुचि होती है, वह भी बच्चोंको विरासतमें मिलती है। जिनकी रुचि अच्छी न हो उन्हें सन्तान उत्पन्न करनेके पहले उसे सुधार लेना चाहिये, ताकि बच्चोंको वह विरासतमें न मिल सके।

विषय-वासना—अनेक बार विषय-वासना भी बच्चोंको माता पिताकी ओरसे विरासतमें मिलती है। जिसकी विषय-वासना प्रबल होती है, वह बहुधा चरित्र-हीन या व्यभिचारी हो जाता है। ऐसे बच्चोंसे माता पिताके नाममें बट्टा लगनेके सिवा और कोई फल नहीं होता, किन्तु यह भी हमें न भूलना चाहिये, कि बच्चोंकी इस प्रकारकी नीच प्रकृति प्रायः उनके माता पिताकी ही ओरसे विरासतमें मिलती है। इसके लिये कुसङ्गको दोष दिया जा सकता है, किन्तु उसे प्रधानता नहीं दी जा सकती। "उत्तम जाकी प्रकृति है, का करि सकै कुसङ्ग, चन्दन विष व्यापै नहीं, लपिटे रहत भुजङ्ग।"

बच्चोंको विरासतमें मिलनेवाले गुण दोषोंके सम्बन्धमें हम अब और अधिक नहीं कहना चाहते। किन्तु इतना अवश्य कहेंगे, कि प्रत्येक माता पिताको अपने बच्चोंको अच्छीसे अच्छी चीज विरासतमें देनेके लिये सदा तैयार रहना चाहिये। यदि वे अपने बच्चोंको अच्छी बातें और अच्छे गुण विरासतमें नहीं दे सकते, तो समझना चाहिये, कि उन्हें सन्तानके हिताहितका कुछ भी विचार नहीं है। ऐसे लोगोंको तो सन्तानोत्पादनके कार्यमें हाथ ही न डालना चाहिये। बच्चोंको दुःखमय

जीवन व्यतीत करनेके लिये उत्पन्न करना कहाँका न्याय है? ऊपर ऐसे अनेक रोगोंका वर्णन किया गया है जो बच्चोंको विरासतमें मिलते हैं। उन्हें इन रोगोंसे बचाना और स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करना प्रत्येक माता पिताका परम कर्त्तव्य है। इस पुस्तकके सोलहवें अध्यायमें हम इसके लिये अपील भी कर चुके हैं। ऊपर भी बहुत कुछ कहा गया है। प्रत्येक माता पिताको अपने बच्चोंके हित पर ध्यान रख, इस सम्बन्धमें अपना कर्त्तव्य स्थिर करना चाहिये।

२०

सन्तान पर गर्भावस्थाका प्रभाव।

यों तो बीजाणुका आकार इञ्चका दो सौ चालीसवां हिस्सा भी नहीं होता और उसके हजारों अणु नख-दर्पण पर आसानीसे रक्खे जा सकते हैं, परन्तु इस क्षुद्रातिक्षुद्र पदार्थमें ही एक बड़ेसे बड़ा जीवन उत्पन्न करनेकी शक्ति रहती है। इसीके भीतर एक नवीन जीवनका सारतत्व और सिद्धान्त भरा रहता है। इसीमें भिन्न भिन्न प्रकारकी ऐसी शक्तियां भरी रहती हैं, जिससे कोई पण्डित होता है, तो कोई मूर्ख, कोई शिल्पी होता है, तो कोई कारीगर। इसीके भीतर कुछ ऐसे भी परमाणु भरे होते हैं, जिनकी प्रबलतासे कोई स्वस्थ और निरोग होता है, तो कोई क्षय रोग, जड़ता और विकलाङ्गता आदि रोगोंसे संसारमें बिलकुल अनुपयुक्त सिद्ध हो जाता है। इन्हीं बीजाणुमें ऐसा भी विकार

रहता है, जिससे कोई संयमी होता है, तो कोई शराबी और पेटू। व्यक्तिविशेषका संयमी और सात्विक होना या विलासी किंवा स्त्रैण बन जाना, भविष्यमें मान, सम्मान अर्जन करना या मुर्दोंका सा जीवन धारण करना—यह भी माता पिताके बीजाणु पर ही निर्भर करता है। बीजाणु सभी भले बुरे गुणोंका आदि कारण होता है, इसलिये यह माता पिताकी इच्छा पर निर्भर करता है, कि वे अपने बीजाणुकी सेवा करके चाहे जैसी सन्तान उत्पन्न कर लें।

जिस समय बीजाणु गर्भाशयमें सञ्चारित होता है, उसी समयसे उसमें जान पड़ जाती है। इसलिये ऐसा अनुमान करना गलत नहीं कहा जा सकता, कि गर्भसञ्चारके पहले ही बीजाणु और पुष्पमें जान रहती है, नहीं तो कभी गर्भ नहीं रह सकता था, परन्तु जब गर्भ स्थिर हो जाता है, तभी नवीन आत्माके जीवनको स्थायित्व प्राप्त होता है। इसी नवीन आत्माके भीतर एक नये व्यक्तिके शरीर और आत्माके सभी तत्व रक्खे होते हैं, उसीके भीतर शारीरिक और मानसिक सभी शील स्वभावोंका भी अङ्कुरोद्भव हो जाता है।

नवीन जीवनके पहले भी जो एक चैतन्य पदार्थ रहता

है, उसीको आत्मा कहते हैं—यह आत्मा अक्षर है। इस अक्षर आत्माके साथ क्षर—शरीरका सम्मेलन स्नायविक प्रणाली द्वारा होता है। स्नायुओंकी अद्भुत प्रणाली द्वारा शरीरके बिचार और कार्य प्रणालीका प्रभाव आत्माके ऊपर पड़ता है और आत्मा भी इस स्नायविक श्रृङ्खला द्वारा ही अपना शरीर-विकास करती है। जन्मोद्भवके पहले आत्मा शरीरके सहयोगसे माता-पिताके दिये हुए अभ्यासों और चरित्रोंको प्राप्त करती हैं और ये ही स्वभाव और चरित्र अनेक परिमाणमें जन्मके बाद स्फुटित होते हैं और जीवन भर मनुष्यके साथ जुड़े रहते हैं।

मनुष्य केवल एक जड़ पदार्थको ही यदि जन्म देता, तब तो कोई विशेष चिन्ता और फिक्रकी बात न थी, क्योंकि जड़के प्रति सावधानी और असावधानीकी विशेष कोई आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु चूंकि शरीरके साथ एक चैतन्य पदार्थ—आत्मा भी जन्म ग्रहण करती है—जिसको भला बुरा ग्रहण करनेकी शक्ति है, इसीलिये सन्तानोत्पादनका विषय बहुत ही महत्वपूर्ण समझा जाता है और इसी कारण माता पिताको विशेष सावधानीसे रहनेकी आवश्यकता बतायी जाती है।

भ्रूण और माताके बीच कोई स्नायविक सम्बन्ध न होनेके कारण माताके रक्तसे ही भ्रूणका पोषण होता है। माताके रक्त द्वारा उसके चरित्र और अभ्यासोंका असर भ्रूणके चरित्र और स्वभाव पर पड़ता हैं।

ऐसी अवस्थामें माताका प्रधान कर्त्तव्य है, कि गर्भावस्थाके समयमें वह अपने कार्य और चिन्ताओंके अभ्यासोंको उचित पथपर परिचालित करनेके अतिरिक्त अपने पथ्यके उचित होनेपर भी ध्यान रक्खे। इस अवस्थामें उसका खाया हुआ आहार केवल उसीका रक्त नहीं तैयार करता, बल्कि उससे बच्चेका भीं रक्त तैयार होता है और वह रक्त स्नायविक प्रणाली द्वारा समस्त शरीरमें सञ्चारित :होकर बालककी स्नायविक प्रणाली और मांसपेशियोंकी शृङ्खलामें प्रवेश करता है। इस प्रकार बालकके शारीरिक और मानसिक सभी अवयव माताके उस खाये हुए भोजनसे प्रभावित होते हैं।

पुरुष और स्त्रीके दैनिक विचार और कार्योंका प्रभाव उनकी पोषण करनेवाली प्रणालियोंके साथ साथ उनके रक्त पर भी पड़ता है। इस प्रकार माता पिताकी पोषण प्रणालियां और रक्त बच्चेकी भी स्नायविक प्रणालियों और चरित्र पर प्रतिक्रिया करती है। यह

दावेके साथ कहा जा सकता है, कि मनुष्यके प्रत्येक रक्त-बिन्दुसे भी उसका स्वभाव और चरित्र पहचाना जा सकता है।

उदास, चिड़चिड़े और डरपोक स्वभाववाली माता अपनी शारीरिक श्रृङ्खलासे निकले हुए प्रत्येक रक्त-बिन्दु पर अपने इन स्वभावोंका प्रभाव डालती है; माताका रक्त बच्चेके शरीरमें भी चलाचल करता है, इसलिये उसके रक्तमें भी उन स्वभावोंका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। जन्मके बाद ये ही दूषित रक्त बालकके चरित्र और स्वभाव को अप्रीतिकर बना डालते हैं।

यह सभीका मत है, कि गर्भावस्थामें माताका प्रधान आहार शाक सब्जी और फल है; परन्तु यह भी बिलकुल परिमित परिमाणमें। अंगूर, कदली, पिच आदि फल खाये जायं, तो खाते समय उनके छिलके भी सार पदार्थके साथ साथ खाना चाहिये।

गर्भावस्थामें स्त्रियोंको पाखाना साफ न होनेके कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ता है, परन्तु इस उपायसे अर्थात् फलोंके साथ उनका छिलका भी खानेसे यह कष्ट दूर हो सकता है। गर्भिणीके लिये सबसे अच्छा खाद्य चक्कीके आटेकी रोटी है। परन्तु यह भी अल्प परिमाणमें ही

खाना चाहिये, क्योंकि इसमें भी यह दोष है, कि हड्डियोंको यह अधिक कड़ी बना देती है, जिसके कारण प्रसवके समय कष्ट हो सकता हैं। शुद्ध और पवित्र रक्तसे ही बच्चेकी ठीक तरहसे वृद्धि होती है, इसलिये माताको मांस, मसाला, चाय, काफी और शराब आदि दूषित और गर्म पदार्थ कभी न सेवन करने चाहियें। क्योंकि इन सब पदार्थोंसे शुद्ध और पवित्र रक्त नहीं तैयार होता। ऐसा कोई भी पदार्थ न सेवन करना चाहिये, जिससे उत्पन्न हुए रक्तकी तासीर गर्म और उत्तेजक हो।

स्त्रियोंका यह लौकिक मत है, कि गर्भावस्थामें गर्भिणीको साधारण आहारसे दुगुना तिगुना आहार करनेकी आवश्यकता पड़ती है। यह एक बड़ी भूल है; इसके कारण गर्भिणियोंको बहुत शारीरिक कष्ट भोगना पड़ता है। स्वस्थ स्त्रीको (गर्भावस्थाके पहले महीनों-में) साधारण भोजनसे अधिक आहार करनेकी कोई भी जरूरत नहीं पड़ती और न नाना प्रकारकी खट्टी मीठी चीजोंके लिये वह लालायित ही रहती हैं। भोजनकी अनियमित सामग्रियोंको प्राप्त करने और अधिक परिमाणमें खानेकी यह उत्कृष्ट अभिलाषा गर्भिणीकी विशृङ्खलित स्नायुशृङ्खलासे उत्पन्न होती है। गर्भाशयके बच्चेसे

इसका कोई सरोकार नहीं होता। इसलिये अधिक आहार न ठूंसकर गर्भावस्थाके नियमोंको उचित रूपसे पालन करना चाहिये, जिससे स्नायुश्रृङ्खलाका गोलमाल दूर हो सके।

यदि कोई स्त्री मनचाही सन्तान उत्पन्न करना चाहती हो, तो उसे इसी पुस्तकके संयमी जीवन नामक ६ वें अध्यायमें बतलाये हुए नियमोंका पालन करना चाहिये।

इस अवस्थाका पेय पदार्थ केवल जल है।

प्रत्येक माता पिताको समझ रखना चाहिये, कि अनुचित और खराब भोजन, अधिक भोजन, द्रुत-भोजन, गर्म-भोजन, गर्म-पान और अपाच्य भोजन (जैसे खट्टा, मीठा, तीता आदि) एवम् तेलदार, चर्बीदार, (रसदार जैसे—मांस, मछली) आदि चीजोंके सेवनसे :डिस्पेप्सिया रोगकी उत्पत्ति हो सकती है—उसके साथ साथ उसके बड़े बड़े भयङ्कर उपसर्ग भी पल्ला पकड़ ले सकते हैं। माताको ये रोग होनेसे क्षीणायु बच्चेको भी ये रोग होना अत्यन्त स्वाभाविक है। बच्चेके लिये यह रोग जितना भयंकर और घातक है, उतना शायद ही दूसरा कोई रोग होगा। क्षयकास, वात और जड़ता आदि रोगोंकी तरह डिस्पेप्सिया भी रक्तके सम्बन्ध द्वारा पुश्त दर पुश्त तक

चलता रहता है। यही एक यथेष्ट कारण है, जिससे माता अपनी सन्तानका भविष्य अन्धकारमय न बनानेके उद्देश्यसे अपने पथ्य और पेयको उचित और नियमित कर सकती हैं।

उचित आहारके बाद दूसरा महत्वपूर्ण विषय शुद्ध हवा और रोशनी है। माताको हर वक्त और हर ऋतुमें काफी परिमाणमें हवा मिलनी चाहिये। खास कर सोनेके समय। माताके रहनेके कमरेमें धूपका पूरा प्रसार होना चाहिये। खिड़कियों पर पर्दे या खड़खड़ी लगाकर कभी हवा और रोशनीका पथ बन्द न करना चाहिये। कितने ही आदमी अपने स्वास्थ्यकी अपेक्षा घरके कारपेट और असबाब पत्रका अधिक ख्याल रखकर खिड़की और दरवाजों पर पर्दें, चिक या फूलोंके गमले आदि लगाकर घरको अन्धकारमय बना रखते हैं। यह एक सांघातिक भूल है। यह तो सभी नित्य प्रति देखते हैं, कि जो पौधा सूर्यकी धूप, हवा और रोशनीमें लगाया जाता है, वह हराभरा, जोरदार और सुहावना होता है; परन्तु जो पौधा अन्धकार और वायुहीन स्थानमें लगाया जाता है वह दुबला पतला, मुर्झाया हुआ और पीले रङ्गका होता है। उसकी तरफ देखनेकी

भी इच्छा नहीं होती। यही नियम कम या अधिक परिमाणमें मानव सङ्गठनमें भी प्रयुज्य है। जिस बालकका वायु-मण्डल रोशनी और हवादार होता है, वह हर्षित और प्रफुल्ल रहता है, स्वस्थ और निरोग रहता है; परन्तु जिस बच्चेकी माता अन्धकारमय वायु-हीन कोठरीमें बन्द रहना पसन्द करती है, वह बच्चा विकृताङ्ग, पाण्डु, झुका हुआ और दुबला पतला होता है। सिर्फ गर्भिणी माताको ही नहीं, प्रत्येक मनुष्यके लिये खुली हवा और खुले प्रकाशमें रहना प्रकृतिका निर्देश है।

गर्भावस्थाके इन नव महीनोंमें स्नान कभी भी बन्द न करना चाहिये। स्नानका सबसे अच्छा समय प्रातःकाल है, जिस समय शरीर और मन पूर्ण स्वस्थ और चङ्गा रहता है। स्नान बहुत अधिक देरतक करनेकी आवश्यकता नहीं; केवल उतना ही समय उसमें लगाना चाहिये जितने समयमें शरीरकी पूरी सफाई की जा सके। स्नान कर शरीरको सूखे कपड़ेसे अच्छी तरह पोंछ लेनेके बाद थोड़ी देरतक धूपमें खड़ा होना चाहिये, जहाँ शुद्ध हवा भी मिल सके। इस प्रकारके जलीय, रौद्रीय और वायवीय स्नानके बाद पन्द्रह बीस मिनट तक बिछौने या आराम कुर्सीपर विश्राम करना चाहिये।

फिर यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि इस अवस्थामें स्त्रीके कपड़े ढीले होने चाहियें, किसी प्रकारका दबाव और खिंचाव न होना चाहिये; परन्तु साथ ही इसपर भी ध्यान रखना चाहिये कि सर्वाङ्ग ढका हो; और कपड़ोंसे शरीर सदा गर्म रहे।

गर्भिणीके लिये सुनिद्रा विशेष आवश्यक है। प्रति दिन सोने और उठनेका एक समय निश्चित कर लेना चाहिये। नियमित रूपसे उसी समय पर सोना और उठना चाहिये। बहुत गुदगुदे बिछौने पर न सोना चाहिये। साथ ही सोनेका कमरा बड़ा, सुहावना और हवादार होना चाहिये।

इन उपरोक्त नियमोंका पालन करनेसे माताके विचार और कार्यका अच्छा अभ्यास बँध सकता हैं, जिससे बच्चेके स्वास्थ्य-सम्पन्न, सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट होनेके सिवा सच्चरित्र और प्रतिभान्वित होनेकी भी आशा की जा सकती है।

स्त्रीकी गर्भावस्था दो भागोंमें विभक्त की जा सकती है—पहली चार महीनेकी और दूसरी पाँच महीने की। हम पहले ही बतला चुके हैं, कि चार महीनेकी पहली अवस्थामें माताके शारीरिक अभ्यास और कार्यका प्रभाव भ्रूणके

ऊपर पड़ता है और पाँच महीनेकी पिछली अवस्थामें माताके मानसिक विचार और स्वभावोंका प्रभाव पड़ता है। इसलिये पहली अवस्थामें शारीरिक कार्योंपर जोर व ध्यान देना चाहिये और पिछली अवस्थामें मानसिक कार्यों पर।

प्रारम्भिक तैयारीकी अवस्थामें कठिन मानसिक परिश्रम और मस्तिष्क शक्तिकी चालना करना जैसे आवश्यक है वैसे ही, इस अवस्थाके बाद, अर्थात् गर्भ-सञ्चारके होते ही, सभी प्रकारके मानसिक परिश्रमोंका त्याग कर देना भी आवश्यक है। गर्भावस्थाके पहले चार महीने तक किसी प्रकारका मानसिक परिश्रम, चिन्ता या भावनाको पास न आने देना ही अच्छा है, फिर गर्भावस्थाकी दूसरी अवस्थामें अर्थात् पाँचवें महीनेसे मानसिक परिश्रम आरम्भ करना चाहिये।

पहले चार महीनेमें शारीरिक व्यायाम नियमित रूपसे करना चाहिये। सबसे अच्छा व्यायाम भ्रमण है। सभी समाजोंमें स्त्रियोंके स्वतन्त्र भावसे बहिर्भ्रमणका उपदेश समर्पित नहीं हो सकता, विशेष करके हिन्दू-समाजमें पर्दानशीनीकी जैसी कड़ी व्यवस्था है, उससे हिन्दू रमणीके लिये—चाहे वह उच्च शिक्षित ही क्यों न हो—अबाध गतिसे दो चार मील तक टहल आना सम्भव नहीं।

परन्तु अन्यान्य समाजोंमें जिनमें पर्दा-नशीनी नहीं है—वे वहिर्भ्रमणकी व्यवस्थासे लाभ उठा सकतीं हैं और हिन्दू-महिलायें भी घण्टे दो घण्टे उद्यानमें—जो कि एक मकानसे सटा हुआ होना आवश्यक है—वायु सेवन करके शरीरको हरा भरा कर सकती हैं। भ्रमण करते समय उच्च और भविष्यके आशापूर्ण विचारोंसे मनको सदा अन्यमनस्क रखना चाहिये, जिससे भ्रमण करनेकी थकावटका अनुभव न हो सके। भ्रमण करते समय अकड़कर सिपाहीकी तरह चलना चाहिये—मुर्देकी तरह लटपटाते हुए नहीं। अर्थात् इस भावसे चलना चाहिये, जिससे शरीरके समस्त अवयवों पर परिश्रम पड़े। भ्रमणका अभ्यास लगा लेने पर इस चार महीनेके समयमें—धूप गर्मी और वर्षा—चाहे कुछ भी हो कभी भ्रमणसे विरत न होना चाहिये। यदि नियमित रूपसे भ्रमणकी व्यवस्थाका पालन किया जाय तो उससे माताके स्वास्थ्यकी उन्नति हो सकती है और बच्चे पर भी उसका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ सकता है।

जो स्त्रियाँ भ्रमण नहीं कर सकतीं अथवा नहीं करना चाहतीं उनके लिये एक दूसरी व्यवस्था दी जा सकती हैं। वे सभी प्रकारके मानसिक परिश्रमोंको त्यागनेके साथ ही

अपने उन सभी दुर्गुणोंको त्यागनेकी चेष्टा कर सकती हैं, जिन दुर्गुणोंको वे अपनी सन्तानोंको देना नहीं चाहतीं। यदि वे चिड़चिड़े स्वभावकी हों, तो उन्हें अपने स्वभावको बदल कर सदा हँस-मुख और प्रसन्न रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इसी प्रकार और भी अप्रीतिकर और अवाञ्छनीय दुर्गुण जो उनमें हो, उन्हें भी त्याग देना चाहिये।

माता पिताके मस्तिष्कमें यह बात अच्छी तरहसे घुसा देनेके लिये हम फिर भी उल्लेख कर देना चाहते हैं, कि गर्भावस्थाकी अवधि और बच्चेके पोषणकी अवधिमें कभी भूलकर भी सहवास नहीं करना चाहिये। यही प्रकृतिका नियम है—ईश्वरका आदेश है और पृथ्वीके सभ्य समाजोंके अतिरिक्त और कहीं भी इस नियमका व्यक्तिक्रम नहीं होता। पशुओंमें यह घृणित कार्य नहीं होता—वर्बर जातियोंमें भी नहीं होता—जहां इस नवीन सभ्यताका प्रसार नहीं हुआ है, वहां कहीं भी नहीं होता। इस प्रकारकी कामुकताका जो परिचय देते हैं—पशुसे भी उनकी तुलना नहीं हो सकती। माता पितासे हमारा यह अनुरोध है, कि आप इस अवस्थामें ऐसा कदर्य कार्य कभी भी न करें, तबतक अपने शरीर कलुषित न करें, तबतक अपनी पवित्र आत्माको घृणित न बनावें,

जबतक एक नवीन आत्माका आपके शरीरमें वास है, जबतक वह बिलकुल असहाय भावसे आपके ऊपर निर्भर करता है। ऐसा न कर आप मीठी मीठी प्रेमपूर्ण बातें कीजिये। चेष्टा और उद्योगसे एक दूसरेके प्रति अपना अनुराग प्रकट कीजिये और प्रेममय चुम्बनसे अपने हृदयको खोलकर एक दूसरेके सामने रख दीजिये। आपके इस प्रकारके प्रेमपूर्ण व्यवहारका बालकके ऊपर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ेगा।

गर्भावस्थाका पाँचवां महीना आनेपर माताको मानसिक परिश्रम और चिन्ता पर अधिक जोर देना चाहिये। गत अध्यायोंमें बतलाये हुए सभी विचारों और उपदेशोंका इस अवस्थामें भी पालन करना चाहिये। माता पिता अपनी सन्तानको लोहार, बढ़ई, शिल्पी, कारीगर, औपन्यासिक, वक्ता यहाँ तक कि मन्त्री या राजा जो कुछ बनाना चाहते हों, उनको उसी पद और व्यवसायके अनुसार उन्हें आचरण करना चाहिये और उसी प्रकारका विचार उनको अपने मनमें रखना चाहिये। ऐसा होनेसे बालकोंके शरीर और मनमें उसी प्रकारका संस्कार बना रहेगा और बड़ी उम्र होनेपर वे संस्कार चेष्टा करनेपर प्रकट हो सकेंगे।

मनचाही सन्तान

गर्भावस्थामें बच्चे पर माताकी ही चिन्ता और कार्यका प्रभाव प्रत्यक्ष रूपसे पड़ता है। पिताका प्रभाव परोक्ष रूपसे पड़ता है। इस अवस्थामें पिताका अधिक कुछ कर्त्तव्य नहीं है, उसे केवल समय समय पर अपनी स्त्रीके साथ अच्छे अच्छे विषयों पर जिनको वे सन्तानको देना चाहें--आलोचना करनी चाहिये। स्त्रीको उन्हीं कार्योंमें प्रवृत्त रखना चाहिये, जो बच्चेके लिये आशाप्रद हों। स्त्रीमें कोई दुर्गुण हो, तो उसको प्रेमपूर्ण उपदेश देकर या अन्य किसी परोक्ष चेष्टासे दूर करानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकारकी चेष्टा और उद्योगसे बच्चेका संस्कार अच्छे और वाञ्छनीय गुणोंकी तरफ होगा। यदि लापरवाही करके कोई चेष्टा न की जायगी, तो बालकोंमें बर्बरताके संस्कार उत्पन्न होने अपरिहार्य हैं। केवल दो पथ हैं—एक ऊपरका और दूसरा नीचेका। जो ऊपरको न चढ़ सका वह नीचेको अवश्य ही गिरेगा--त्रिशंकुकी तरह कोई आकाश पातालके बीचमें नहीं रह सकता।

इस अवस्थामें माता पिताको—विशेष करके माताको चाहिये, कि किसी कठिन उद्विग्नतासे मनको कभी अशान्त न करें, नहीं तो इस प्रकारकी अनुचित चिन्ता और उद्विग्नतासे बालकका रक्त दूषित हो जाता है और जीवन भर

वह नाना प्रकारके रोग शोकका शिकार बना रहता है। अपनेमें यदि कोई रोग हो, तो उसके लिये चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं। हाँ, ईश्वरकी दया पर भरोसा रख सदा अपने मनको प्रसन्न बनाये रखनेसे कुछ उपकार हो सकता हैं। मनुष्यको किसी भी कार्यमें हतोत्साह होकर बैठ भी नहीं जाना चाहिये, बल्कि ईश्वर पर भरोसा रख प्रसन्न चित्तसे उद्योग करते रहने और अपनी सफलताकी आशा बनाये रखनेसे बहुत बड़ा लाभ हो सकता है।

सन्दिग्ध चेता माता पिताओंके मनमें विश्वास उत्पन्न होनेसे बच्चेका भ्रौणिक जीवन कितने आश्चर्यरूपसे प्रभावित हो सकता है, इसको अच्छी तरह समझा देनेके लिये हम यहाँ कुछ दृष्टान्त उद्धृत करते हैं :—

सुप्रसिद्ध डाक्टर जान कावेन लिखते हैं, कि एक नया पर सुज्ञ इञ्जिनियर अभी हाल ही कार्य-क्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ था, कि कम्पनीकी तरफसे कोई बड़ी कल बनानेके लिये उसको नियोग पत्र मिला। अपने नियोक्ताओंको अपने कामसे सन्तुष्ट करनेके लिये इञ्जिनियरको बड़ी चिन्ता लगी हुई थी। इस लिये रात दिन वह उसी कार्यमें लगा रहता था। फुरसतके समय भी वह अपनी स्त्रीके साथ इसी

विषयकी आलोचना किया करता था। स्त्रीके गर्भसे जब एक कन्या उत्पन्न हुई तब बड़ी होने होनेपर देखा गया, कि उसके मनमें भी कल-पुरजे बनाने और नाप जोख करनेका संस्कार भरा हुआ है। उसका झुकाव कल कारखाने चलानेकी तरफ था, परन्तु उसके माता पिता कन्याको ऐसा करने देनेको इच्छुक न थे—उनकी इच्छा थी, कि सर्वसाधारण स्त्रियोंकी तरह वह भी उद्देश्य-हीन भावसे जीवन व्यतीत करे। परन्तु मैं यदि उस कन्याका पिता होता तो उसको अवश्य ही इञ्जिनियरिङ्गकी ओर प्रोत्साहित करता। क्योंकि उसी ओर उसकी शक्ति परिचालित होनेपर उसका जीवन सफलता-मण्डित हो सकता था। क्योंकि उसी कार्यके लिये उसको एक विशेष प्रतिभा या संस्कार प्राप्त हुआ था। कितने ही लोग इस पेशेको स्त्री प्रकृतिके विरुद्ध बतलायेंगे; परन्तु यह तभी तक स्त्री प्रकृतिके विरुद्ध है जब तक हम पुरानी लकीरके फकीर हैं। अगर हम लकीरके फकीर न बनकर प्रतिभाके नियम पर ध्यान दें और कन्याकी योग्यताके ऊपर ख्याल रक्खें, तब हम कभी नहीं कह सकते, कि यह स्त्री-प्रकृतिके विरुद्ध है। जिसमें जो कार्य करनेकी शक्ति है—वह वही काम करे। इसमें अनुकूलता और प्रतिकूलता

कैसी? कोई कोई कहेंगे कि यह घृणित काम है—परन्तु क्या बर्त्तन धोने और जूठा उठानेसे भी यह खोटा काम है! "स्त्रीकी पोशाक कल-कारखानेके कामके अनुपयुक्त हैं।" हाँ, अनुपयुक्त हैं, परन्तु व्यवसायके अनुसार पोशाक कर लेनेसे यह असुविधा भी दूर हो सकती है और करनेसे स्वास्थ्य भी अच्छा रह सकता है।

ये सब तर्क फजूल हैं, परन्तु एक आपत्ति बड़ी महत्वपूर्ण है और वह यह है, कि स्त्री अपने ध्येय और आदर्शसे च्युत हो सकती है। स्त्री प्रेम-रूपिणी है—निस्पृह प्रेम ही उसके जीवनका सर्वोच्च आदर्श है। मातृरूपमें वह पालन करती है, भार्य्यारूपमें आनन्द वर्द्धन करती है और शिक्षक रूपमें प्रेम पूर्वक शिक्षा और आदेश देती है। इस महान आदर्शसे उसको च्युत करके क्या कल-कारखानेकी जघन्यताके भीतर लाकर खड़ा करना अच्छा होगा? हम भी यह नहीं चाहते, कि स्त्रियोंकी ऐसी आदर्श भ्रष्टता हो, क्योंकि ऐसा न होनेमें ही संसारका मङ्गल है, परन्तु दुर्भाग्यवश अधिकाँश स्त्रियोंकी ही ऐसी शोचनीय अवस्था हो रही है, कि उनको स्वयं हाथ पैर चलाकर खानेके सिवा जीविकाका कोई उपाय ही नहीं रहता। कई देशों और समाजोंमें बहुत सी कन्यायें सारा जीवन अविवाहित

ही रह जाती हैं। उन्हें स्वयं उद्योग न करनेके सिवा दूसरा कोई सहारा ही नहीं रहता। भारतमें भी हिन्दू-समाजके भीतर लाखों विधवायें हैं, जिनमें अधिकांश निस्सहाय और परमुखापेक्षी हैं। उनके लिये यदि कोमल स्वभावोंके नष्ट होनेके भयसे रोजीकी कोई व्यवस्था न की जाय तो समाज और जातिको कहां तक हानि या लाभ हो सकता है यह भी एक विचारणीय विषय है। जिस स्त्रीको औद्योगिक कार्य करनेकी आवश्यकता नहीं उसको जबर्दस्ती कल-कारखानेमें भेजनेको कोई नहीं कहता, परन्तु जो अभाववश इन पेशोंको अख्तियार करें, उन पर नाक भौं सिकोड़ना और घृणा करना भी उचित नहीं।

अस्तु, हमारे कहनेका आशय यह है, कि जो स्त्रियाँ अभाववश—या अन्य किसी कारणसे—औद्योगिक काम करना चाहें वे अपनी प्रतिभा और योग्यताके अनुसार कार्य-क्षेत्र निश्चित करके सम्मानपूर्वक कर सकती हैं। कोई उनको नीच दृष्टिसे देख नहीं सकता। और यदि कोई स्त्री गर्भावस्थाके संस्कार तथा पितृ-मातृ प्रदत्त पुरुषोचित गुणोंको प्राप्त होनेसे कोई पुरुषोचित कार्यमें अपनी शक्तिको नियोजित करती है, तो इसका यह अर्थ भी नहीं हो सकता कि यह अपने स्त्रियोचित प्रेम

और कोमलता आदि गुणोंको दूरकर देती है, जो स्वभावज गुण होते हैं वे व्यवसाय और वृत्तिके ग्रहणसे दूर नहीं हो सकते।

पिता माताकी दुष्प्रवृत्तियोंसे बालकोंका चरित्र कहां तक प्रभावित होता है, इसके कई उदाहरण पिछले अध्यायों-में दिये जा चुके हैं। इस सम्बन्धमें और भी असंख्य दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। परन्तु ऐसा करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक मनुष्य अपने अड़ोस पड़ोसका पारिवारिक रहस्य जाननेकी चेष्टा करे, तो इस बातका प्रमाण उसको हाथों हाथ मिल जायगा, कि "आत्मनो जायते पुत्रः" यह उक्ति अक्षरशः सत्य है। पुत्र माता पिताके प्रत्येक गुणोंका प्रतिबिम्ब होता है। माता पिता गर्भाधानके पूर्व जैसे अपना जीवन व्यतीत करते हैं, माता गर्भावस्था और स्तनंधयावस्थामें जैसे अपने जीवनको परि-चालित करती है, उन्हीं सब अभ्यासोंका बालक प्रति-बिम्ब होता है। प्रत्येक माता पिता यदि अपने अपने जीवनके साथ अपनी सन्तानोंके जीवनकी तुलना करें, तो उन्हें पता लग जायगा, कि मन वचन और कर्मसे बालक उन्हींके प्रतिरूप है।

जिन माता पिताओंका इस बात पर विश्वास जमें

कि पुत्र अपने माता पिताके चिन्ता और कार्यका अधिकारी है उन्हें इस पुस्तकमें बतलाई हुई विधियोंका अक्षरशः पालन करना चाहिये, ताकि उनकी सन्तानें स्वस्थ सुन्दर और बुद्धिमान हो सकें। परन्तु जिन माता पिताओंको हमारी बातोंपर विश्वास न हो वे अपनी पुरानी प्रथाके अनुसार चलकर उसके परिणामकी परीक्षा कर सकते हैं।

ऐसे तो शायद ही कोई माता पिता होंगे जो सुन्दर सुश्री और बुद्धिमान पुत्र नहीं चाहते हों, परन्तु ऐसा कोई हो, तो उसको इस अवस्थाके अनुसार चलनेकी आवश्यकता नहीं।

ऐसे माता पिताओंको भी यह व्यवस्था माननेकी आवश्यकता नहीं, जो अपने लड़कोंके भविष्यत सुख स्वाच्छन्द्यकी फिक्र नहीं करते, जो अपने ही सुख और स्वार्थको सब कुछ समझते हैं, जो सन्तान नहीं चाहते—चाहते हैं, कामलालसाकी तृप्ति। ऐसे माता पिताओंके लिये उपदेशका मूल्य कुछ भी नहीं हैं। वे भी यथेच्छ जीवन-यापन कर, उसका परिणाम देख सकते हैं।

क्रोधी माता भी अपने स्वभावको विना बदले ही सन्तान उत्पन्न करके उसका परिणाम देख सकती है। इस

स्वभावके प्रतिबिम्बका एक अच्छा दृष्टान्त अमेरिकाके एक ग्राममें मिला था। एक किसान अपनी स्त्रीसे सर्वदा झगड़ा तकरार किया करता था। उसकी स्त्री जब गर्भवती थी, उस समय भी उसने झगड़ा करके पांच महीने तक उससे वार्त्तालाप ही बन्द कर दिया था। उस गर्भसे जो बच्चा उत्पन्न हुआ वह जब बड़ा हुआ तब उसमें एक विचित्र विलक्षणता देखी गयी। वह बालक सबके साथ हँसता बोलता, परन्तु पिताकी गोदमें जाते ही मौन धारण कर लेता। पिताने बहुत प्रयत्न किया, कि बालक उससे बोले और बात चीत करे, परन्तु बालक किसी तरह पितासे बोलता न था। बहुत कष्ट होनेपर सिर्फ लम्बी सांस लेता था। उसे डाक्टरको दिखाने पर पता लगा कि पिताको देखकर उसकी वाक्य-शक्ति ही लोप हो जाती है।

झूठ बोलनेका भी बालकोंके स्वभावपर विचित्ररूपसे प्रभाव पड़ता है। छोटेसे बड़े तक सभी झूठ बोलते हैं, किन्तु माता पिता भूलसे भी जो झूठ बोलते हैं उसका सन्तान पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

केनेजमें एक लड़का था। बहुत होशियार न होने पर भी उसके मनमें एक संस्कार उत्पन्न हो गया था, कि

पिता माताके स्वभावसे ही बालक अवगुण सीखते हैं। एक दिन उसके पिताने झूठ बोलनेके कारण उसको एक घरमें बन्द कर रक्खा। बालकने अवरोधसे छूटने पर पितासे जाकर पूछा—"पिताजी! मेरी छोटी उम्रमें क्या आप झूठ बोलते थे?"

पिता अपने विवेककी ताड़नावश इतस्ततः कर रहे थे, परन्तु बालकने फिर वही प्रश्न किया—"पिताजी! आप क्या मेरे बचपनमें झूठ बोलते थे?"

"नहीं बेटा, मैं झूठ नहीं बोलता था।"

"माता मेरे बचपनमें झूठ नहीं बोलती थी?"

"मैं कह नहीं सकता, तुम उससे पूछ सकते हो।"

बालक—"आपलोगोंमेंसे कोई अवश्य ही झूठ बोलता था, नहीं तो मैं झूठ बोलना सीखता कैसे?"

माता पिताके भ्रान्तिपूर्ण जीवनसे सन्तानके ऊपर कैसा प्रभाव पड़ सकता है, इसका पता नीचेके दृष्टान्तसे भी लग सकता है। एक स्त्री लिखती हैं :—

"स्वस्थ और निरोग माता पितासे उत्पन्न होनेके कारण स्वभावतः मैं स्वस्थ और निरोग थी। सौभाग्यवश मुझे पति भी निरोग ही मिले थे। जिस समय मेरा विवाह हुआ, मेरी अवस्था २५ वर्षकी थी और उनकी अवस्था

३० वर्ष की। हम दोनों ही पूर्ण निरोग और शक्तिशाली थे, परन्तु हमने अपनी शक्तिका सद्व्यवहार नहीं किया। धनवान होनेकी लालसा हम दोनों हीमें बड़ी उत्कट थी। अतएव बहुतसे खेत खरीद कर हमलोग और खेती करने लगे। एक वार ही साधारण किसानकी तरह हमलोग शारीरिक परिश्रम करने लगे। उस समय भी मैंने अपने परिश्रमको न घटाया, जिस समय मैं गर्भवती थी। प्रसवके कुछ दिन पहले हीसे मेरे शरीरमें स्फोटक, व्रण आदि निकलने लगे और हाथ पैरकी गांठोंमें दर्द पैदा होने लगा। मैं समझी, कि गर्मीके कारण ऐसा होता है, परन्तु जब मुझे दो जोड़ बच्चे उत्पन्न हुए तब मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गया, क्योंकि वे दोनों ही क्षीणकाय थे और उनका सारा शरीर स्फोटक व्रणसे भरा हुआ था। परीक्षा करने पर मालूम हुआ, कि वे व्रण—अनियमित जीवनसे उत्पन्न हुए हैं। पुत्र उत्पन्न करनेकी तो मुझे उत्कट अभिलाषा हुई थी, परन्तु धनकी लालसाने मेरे मातृ-भावको नष्ट कर दिया था। परन्तु ईश्वरकी कृपा हुई, वे अभागे जीव कष्ट सहनेके लिये अधिक दिन न रह सके। चार महीना जाते न जाते चिर विश्रामके लिये चले गये। मैंने सोचा, ईश्वरकी इच्छा ही ऐसी थी, उसने ऐसे अयोग्य

पुत्र मुझे दिये और उसीने उनको छीन लिया। इसमें दुःख किस बातका जब कि इसमें मेरा कोई हाथ नहीं। इसके बाद तीन चार पुत्र और उत्पन्न हुए, परन्तु उनकी भी वही अवस्था हुई।

आखिरकार मैं सारा कामकाज छोड़कर अपनी वृद्धावस्थाका सम्बल—एक दीर्घायु सन्तान प्राप्त करनेकी इच्छासे अपने जीवनको नियम-बद्ध करनेकी चेष्टा करने लगी। इसी समय मुझको अपनी एक आत्मीयाकी रुग्नावस्थामें उसकी सेवा सुश्रूषाके लिये उसके यहाँ जाना पड़ा। वह भी गर्भवती थी, मुझे भी छठवां गर्भ था। मैं अपना अधिकांश समय रोगिनीके ही तत्वावधानमें लगाती थी और जो समय बचता था उसमें यही बात सोचती थी, कि कौन सा ऐसा कारण है, कि इस महिलाके जो बच्चे उत्पन्न होते हैं, वे सुन्दर बलवान और दीर्घायु होते हैं और मुझे एक दो नहीं पांच पांच पुत्र उत्पन्न हुए और सभी जन्म-रोगी होकर मरते गये। मैं मन ही मन यह प्रश्न करती थी कि ईश्वरको तो सभी न्याय परायण कहते हैं, तो क्या मैं उसका कोई नैतिक नियम भङ्ग करती हूँ, जिसके लिये वह मुझे ऐसा कड़ा दण्ड देता है। धीरे धीरे मेरे मनमें यही विश्वास दृढ़ हो गया, कि यह विश्व ब्रह्माण्ड प्रकृतिके

एक निश्चित नियम और ईश्वरके एक दृढ़ आदेशके अनुसार चलता है। जो मनुष्य इस प्राकृतिक नियम और नैतिक आदेशकी अवहेलना करता है, उसको अवश्य ही उसका फल भोगना पड़ता है। निदान मेरे प्रसवका समय आ पहुंचा। इस बार ईश्वरकी कृपा और मेरे सौभाग्यवश जो पुत्र हुआ उसकी सुन्दरता और निरोगिता देखकर मैं मुग्ध हो गयी। आज भी वह बालक स्वस्थ सबल होकर जीता है और अपने वृद्ध माता पिताका सम्बल हो रहा है।”

यदि माता पिता सुन्दरताके दुश्मन हों और ऐसा चाहते हों, कि उनकी सन्तान सुन्दर न हो, तो उन्हें कला-कौशलकी चीजें और प्राकृतिक सौन्दर्यका परिहार करना चाहिये। गन्दे और मैले कुचैले स्थानमें नीरव जीवन व्यतीत करना चाहिये। मत्स्य मांसादि गर्म भोजन खाना चाहिये। अँधेरे और वायु-हीन स्थानमें रहना चाहिये। कपड़े कसे पहनना चाहिये, विशेष कर माताकी चोली कसी हुई होनी चाहिये। इस प्रकारका संयम हीन-जीवन धारण करनेसे बालक केवल कुरूप ही नहीं होते, अधिकांश अवस्थामें विकृताङ्ग भी होते देखे जाते हैं। शौकीन माताके सभी चाल चलन और पहनावोंकी अपेक्षा उसकी

चोलीका गर्भस्थ सन्तान पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। चोलीके बन्द और बटनसे माताका पेट कसा होनेके कारण शरीरके रक्तकी गति रुक जाती है। इसलिये बच्चेकी रक्त-नालीमें भी गोलमाल पैदा हो जाता हैं। सभी अङ्ग प्रत्यङ्गमें रक्त अबाध गतिसे पहुंचने नहीं पाता। इससे सन्तान विकृताङ्ग होती है, किसीका सिर बड़ा होता है, किसीकी गर्दन, किसीके कन्धे। क्षीणायु और दुर्बल तो ऐसे होते हैं, कि हवासे भी उड़ जायँ। प्राचीन कालके रूमियोंको कसे कपड़े पहननेके अवगुण मालूम थे, इसीलिये उन्होंने चोली करसेट आदि कसे पोशाक पहननेकी बड़ी मुमानियत की थी। इसके लिये एक कड़ा कानून भी पास हुआ था।

यदि कोई माता अपनी सन्तानको तम्बाकू सेवी और नशेखोर बनाना चाहते हैं, तो उन्हें स्वयं शराब, गांजा, तम्बाकू आदि नशैली चीजोंका व्यवहार कर परिणाम देख लेना चाहिये। ऐसे माता पिताके बच्चे बचपनसे ही नाना प्रकारके नशेके आदी हो जाते हैं। प्रतिदिन यह बात देखनेमें आती है, प्रत्येक परिवार और अड़ोस पड़ोसमें इसका दृष्टान्त मिल सकता है, परन्तु जो माता पिता किसी नशेके अभ्यस्त नहीं होते उनके बच्चे अनेक प्रलोभन देनेपर

भी सहसा यह गन्दी चीजें व्यवहार करनेका साहस नहीं कर सकते।

यदि माता पिता कामुक और विलासी सन्तान उत्पन्न करना चाहते हों, तो उन्हें स्वयं विलासमय जीवन यापन करना चाहिये--मूल्यवान भोजन, गर्म पान (पेय पदार्थ) —शराब तम्बाकू आदि और अत्यधिक कामचालना करने और संयम-हीन जीवन बितानेसे जो सन्तान उत्पन्न होगी वह अवश्य ही कामुक और विलासी होकर रहेगी। वयः प्राप्त होनेके पहले ही इनकी काम-वृत्ति उत्तेजित हो जायगी और नाना प्रकारके अवैध उपायोंसे उसकी निवृत्ति करनेकी चेष्टा करने लगेंगे। यदि आप किसी स्कूलके अनुभवी और सतर्क अध्यापकसे इस विषयमें पूछें तो पता लग सकता है, कि अधिकांश बालक ही इस दोषके दोषी पाये जाते है। इस प्रकार आत्मक्षय करते करते वे नाना रोगोंके शिकार बनते हैं—कोई उन्मादग्रस्त पागल होता है, कोई क्षयरोगी होता है, कोई वातग्रस्त होता है। इस प्रकार दिन प्रतिदिन देश रोग शोककी आवास-भूमि बनता जाता है।

परन्तु अनेक बार माता पिताकी विलासिताके परिणाम-स्वरूप आत्मक्षयकी प्रवृति बच्चोंमें ठीक बचपनकी ही

अवस्थासे नहीं उत्पन्न होती। परन्तु जीवनकी परिणत अवस्थामें उसका विकास होता है। यह प्रवृत्तिकी उत्तेजना स्फोटककी तरह कभी न कभी प्रकट होकर ही रहती है। नीचेके एक दृष्टान्तसे यह विषय साफ हो सकता है :—

एक महिलाने बड़े प्रेमसे एक वकीलके साथ ब्याह किया। ब्याह करने पर उसे मालूम हुआ कि वकील साहब अपने पिताकी भांति कुछ दुर्व्यसनी थे। उसने उन्हें उन दुर्व्यसनोंसे मुक्त करनेके लिये बड़ी चेष्टा की, पर कोई फल न हुआ। कुछ दिनोंके बाद वह गर्भवती हुई और उसने एक पुत्रको जन्म दिया। पुत्र बड़ा ही सुन्दर और होनहार मालूम होता था। मेधावी भी वैसा ही था। यथा समय वह खूब पढ़ाया लिखाया गया। उन्नीस वर्षकी अवस्था तक उसमें कोई दोष न आया। बादको पिताका दोष असर करने लगा और धीरे धीरे वह कुपंथकी ओर अग्रसर होने लगा। माता उसे सुधारनेकी चेष्टा करती, उसे उपदेशपूर्ण पत्र लिखती, पर कोई फल न होता। जब जब उसे माताका पत्र मिलता, तब तब वह अपने कुकर्मोंके लिये लज्जित होता, कई दिनों तक घरसे बाहर न निकलता, पश्चाताप करता, रोता, प्रतिज्ञा करता, परन्तु बादको फिर ज्योंका त्यों हो जाता। बात

दर असल यह थी, कि यह दोष उसे अपने पिताकी ओरसे वीरासतमें मिला था और हजार शिक्षित होने पर भी वह उससे मुक्त होनेमें असमर्थ था।

यदि कोई माता पिता चाहें, कि उनकी सन्तान नैतिक और मानसिक-शक्तिमें हीन और जड़ प्रकृतिकी हो, तो उन्हें गर्भावस्थामें कई एक खराब पथ्य—जैसे खराब भोजन, खराब पान, अन्धेरे और वायु-विहीन घरमें शयन और काम-वृत्तिका अत्यधिक परिचालन अवश्य करना चाहिये, ताकि वे मनोवाञ्छित सन्तान प्राप्त कर सकें। यह जानी हुई बात है, कि जो लोग शराब, मांस, अफीम, गाँजेका अत्यधिक व्यवहार करेंगे उनकी सन्तानें कम या अधिक परिमाणमें अवश्य ही जड़ बुद्धिकी होगी।

यदि कोई माता पिता चोर, डाकू और खूनी सन्तान चाहते हैं, तो उन्हें वैसे ही स्वभावों और कार्योंकी गर्भके समय आलोचना करनी चाहिये। उन्हें सर्वदा किसी न किसी वस्तुको ऐंठ लेने, किसीके मार डालने, किसीका घर जला देनेको फिक्रमें रहना चाहिये। इस प्रकारकी चेष्टा और उद्योगसे अवश्य ही प्रत्याशित फल लाभ होगा। कहते हैं, कि किसी कारणवश एक माताने अपने गर्भस्थ शिशुको हत्या कर डालनेका प्रयत्न किया परन्तु उसका

यत्न सफल न हुआ। नियमित समय पर उसको एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र जब पाँच वर्षका हुआ तभी उसके मस्तिष्कमें खूनकी धुन समा गयी। जब कभी वह किसी साथीको अकेले पाता, उसको मार डालनेकी चेष्टा करता। उसका ऐसा भीषण स्वभाव देखकर माता पिताको सर्वदा उसपर कड़ी दृष्टि रखनी पड़ती थी।

एक उच्च अदालतमें दर्शक और वकील उत्कण्ठित होकर बैठे थे। कठघरेमें एक फांसीका कैदी खड़ा था। विचारकने अपना विचार सुनाते हुए उठकर कैदीसे पूछा—"अभियुक्त! क्या तुम कोई ऐसा प्रमाण दे सकते हो, कि जिससे तुम्हें फाँसीकी सजा न मिले?"

उस अभागे कैदीने जो एक हृष्ट-पुष्ट और बलवान युवक था—अपनी भुजायें उठाकर कहा—"मैं अपराधी हूं और अवश्य ही अपराधका फल मुझे भोगना पड़ेगा। मेरा सारा जीवन ही पाप और अत्याचारसे परिपूर्ण है। मैंने कितनी चोरी, डकैती और जुआचोरी की है, इसकी गणना नहीं हो सकती। अन्तमें मैने खूनसे भी अपना हाथ कलङ्कित किया है, परन्तु वास्तविक न्याय यदि किया जाय तो इन अपराधोंके लिये मैं दायी नहीं हो

सकता। क्योंकि मैंने इन अपराधोंको स्वेच्छापूर्वक नहीं किया है। मेरे भीतर—मेरी स्नायुश्रृङ्खलाके भीतर जो विजातीय पदार्थ—विजातीय प्रवृत्ति घुसाई गयी थी, वह कभी मुझको चैन न लेने देती थी, सर्वदा ही मुझको बुरे रास्ते पर खींचा करती थी, पापके लिये प्रोत्साहित किया करती थी। मैंने कितना ही चाहा, कितना ही प्रयत्न किया, ईश्वरसे कितनी प्रार्थनायें कीं, कि इन प्रवृत्तियोंसे मेरी रक्षा हो। इनके प्रभावसे मैं बच जाऊँ, परन्तु मेरा किया एक न हुआ। आज यहाँ मैं फांसीके कठघरे पर हूँ, परन्तु न्यायतः मुझको यहाँ नहीं आना चाहिये था। आना चाहिये था किसको? मेरे माता पिताको, जिन्होंने ये दुष्प्रवृत्तियां मेरी अस्थिमज्जामें भर कर संसारमें पाप करनेके लिये मुझे छोड़ दिया था। मुझे अपने पापके विरुद्ध इतना ही कहना है—चाहे आप लोग सुनें या न सुनें। अब मैं आपके आदेशके लिये प्रस्तुत हूं।

प्रत्येक अपराधी इस प्रकारका तर्क उठा सकता हैं और अनेक अंशमें उसका यह तर्क न्याय सङ्गत भी है—सत्य भी है, परन्तु शायद ही कोई ऐसे विचारक हों, जो इस प्रकारके तर्क पर ध्यान दें, परन्तु वास्तवमें यह बात ठीक है। पुत्रके अपराधके लिये माता पिता ही जिम्मे-

दार होते हैं और उन्हींको इसके लिये दण्ड मिलना चाहिये ।

प्रत्येक माता पिताको चाहिये, कि अपने मान सम्मान, इज्जत और यश अपयशपर ध्यान रख, अपने दायित्वकी गम्भीरताको समझ कर काम करें ।

२१

सन्तान पर स्तनंधयावस्थाका प्रभाव।

बच्चे जिस अवस्थामें माताके स्तनोंका दूध पीते हैं, उस अवस्थाको स्तनंधयावस्था कहते हैं। यह पहले ही बतलाया जा चुका है, कि बालकमें सफलतापूर्वक प्रतिभाका समावेश करनेके लिये माता पिताको प्रारम्भिक अवस्थासे ही उद्योग करना होता है। गर्भावस्थामें वह उद्योग पूर्णरूपसे कार्यमें परिणत करना चाहिये और पालन पोषण करनेकी पूरी अवस्था तक अविराम गतिसे उसीके लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये। प्रत्येक बालकके चरित्रकी नींव प्रारम्भिक अवस्थामें पिताके स्वभाव और कार्यके आधार पर ही पड़ जाती है। गर्भावस्थामें वही

नींव बढ़ती है और स्तनंधयावस्थामें वह पूर्ण प्रतिष्ठित और दृढ़ होती हैं। इन तीनों अवस्थामें कभी उद्योग छोड़ देने पर सभी बना बनाया काम मिट्टी हो सकता है। इसलिये स्तनंधयावस्थामें भात्रोंको सन्तान पर जो प्रभाव पड़ता है, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। निम्नलिखित विचारों और उपदेशों पर ध्यान देनेसे माताओंको सुन्दर, बलवान, बुद्धिमान और गुणवान पुत्र उत्पन्न करनेके कार्यमें बहुत सहायता मिल सकती है। जो मातायें किसी शारीरिक अयोग्यतासे सन्तान-पालन नहीं कर सकतीं अथवा किसी मानसिक विकारवश यह महान कार्य करना नहीं चाहतीं, उनके लिये यह प्रकरण नहीं लिखा जाता।

पहली किस्मकी अयोग्यता यदि उचित जीवन यापन और प्रतिकारकी चेष्टा करने पर भी दूर न हो, तो उसके लिये विशेष कुछ कहना नहीं है, परन्तु जो स्त्रियाँ शक्ति रहते सन्तान पालनसे जी चुराती हैं अथवा इसके लिये जितना चाहिये उतना यत्न नहीं करतीं, हमारी समझमें उनके मस्तिष्कमें अवश्य ही कोई ऐसा विजातीय गुण है, जो उनकी आत्माको मनुष्य-समाजसे च्युत कर रहा है। इस महान और पवित्र कर्त्तव्यका भार केवल माता पर ही

रहना ईश्वरका—धर्मका आदेश है। जो माता शक्ति रहते—छातीमें दूध रहते दूध पिलानेका भार किसी दूसरे पर छोड़ देती हैं, कहना चाहिये कि मातृ-भाव और नारीत्वका उसमें लेशमात्र भी नहीं है। वे आस्तिक—ईश्वर विश्वासी होनेका भी अधिकार नहीं रखतीं।

वास्तवमें यह बहुत विचित्र बात है, कि जो कर्त्तव्य मनुष्य पर प्रकृतिके द्वारा दृढ़तापूर्वक न्यस्त होता है, जिसके साथ कितने ही सुखपूर्ण और आनन्ददायक भाव विजड़ित रहते हैं, उसे स्वेच्छापूर्वक पैरोंसे ठुकरा कर एक भिन्न व्यक्तिके कन्धे पर लाद दिया जाता है। इसका परिणाम, जो माता और सन्तान दोनों हीको भोगना पड़ता है, वह भी कम शिक्षाप्रद नहीं हैं, तब भी लोगोंकी आँखें नहीं खुलतीं।

सन्तान-पालनकी अवस्थामें माताको जो सुख, जो आनन्द और स्वास्थ्य प्राप्त होनेकी सम्भावना रहती है, वह किसी भी दूसरी अवस्थामें नहीं रहती।

परिहार्य और अपरिहार्य कारणोंसे जब माता सन्तानको दूध पिलानेका भार एक द्वितीय व्यक्ति पर छोड़ देती है, तब वह अपनी सन्तानके स्थायी रूपसे चरित्र-गठनका अवसर भी हाथसे खो देती है। उस अवस्थामें बालक

अपरिचित धात्रीके दूधके साथ जो विजातीय द्रव्य ग्रहण करता है, उसका प्रभाव उसके चरित्र पर अवश्य ही बड़ा खराब पड़ता है।

सन्तान पालनकी अवस्थामें माताका प्रभाव शिशुके ऊपर कितना पड़ता है, इसको बहुत कम ही लोग हृदयङ्गम कर सकते हैं। कितने ही तो यहां तक कहनेको तैयार हो जाते हैं, कि कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और पड़ता भी है, तो बहुत ही साधारण, किन्तु यह ठीक नहीं। सन्तान पर इस अवस्थामें भी प्रभाव पड़ता है, और यह भी अन्यान्य अवस्थाओंके प्रभावोंकी भांति असाधारण होता है।

सुप्रसिद्ध डाक्टर कावेन इस प्रभावका एक उदाहरण देते हैं। वे लिखते हैं. कि मुझे एक बच्चेकी चिकित्सा करनेका अवसर मिला था, जो अपनी माताका दूध पीते ही उल्टी करके बेहोश हो गया था। मैंने अनुसन्धान करके पता लगाया, कि बच्चेकी माताने दूध पिलानेके कुछ ही समय पहले एक पड़ोसीसे बहुत झगड़ा किया था और क्रोधित अवस्थामें ही बच्चेको दूध पिलाया था। बच्चा स्तनको मुखसे लगाते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ा था। मैंने निश्चय किया कि क्रोधके भीषण आवेशके

कारण माताका दूध अवश्य ही विषाक्त हो गया था। उस विषाक्त दूधको पीकर बच्चा मरा नहीं यही खैर हुई। बहुत समय ऐसे भी दृष्टान्त सुननेमें आते हैं, कि क्रोधके आवेशमें कितने ही लोगोंका प्राणान्त तक हो जाता है। कितने ही लोग सर्वदाके लिये विकारग्रस्त हो जाते हैं और कितने ही बच्चे माता पिताके रूक्ष और चिड़चिड़े स्वभावके कारण सारा जीवन मूर्च्छा, गश आदि बड़े बड़े रोगोंके द्वारा कष्ट पाते रहते हैं।

इसी प्रकार माताकी प्रत्येक दिनकी मानसिक अवस्थाका प्रभाव कम या अधिक परिमाणमें बच्चेके शरीर और मन पर पड़े बिना नहीं रहता। यदि माता पहलेकी दोनों अवस्थाओं अर्थात प्रारम्भिक और गर्भाधानकी अवस्थाओंमें अपना स्वभाव खिन्न, उदास, हतोत्साह और चिड़चिड़ा बनाये रखे और स्तनंधयावस्थामें भी वह उन अभ्यासोंका त्याग न करके उसी प्रकारकी मानसिक विकारकी अवस्थामें बच्चेको दूध पिलाया करे, तो यह ध्रुव निश्चय है, कि बच्चेके दांत उठनेके समय तक माताके सभी दुर्गुणोंकी छाप बच्चेके मस्तिष्कमें पड़ जायगी और उसका भविष्य जीवन भी माता हीकी तरह अन्धकारमय हो जायगा।

इसी प्रकार दुःख, शोक, पीड़ा, यन्त्रणा, चिन्ता और भय आदि सभी प्रकारके आवेशोंका प्रभाव बच्चेकी स्नायविक श्रृङ्खला और उससे होकर मानसिक श्रृङ्खला पर अपरिहार्य रूपसे पड़ता है। जिस तरह माताकी विचार प्रणालीसे बच्चेका चरित्र प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार माताके खाये हुए भोजनसे भी बच्चेकी शारीरिक वृद्धि और स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है। चूंकि शारीरिक स्वास्थ्यके साथ मानसिक श्रृङ्खलाका अविच्छिन्न सम्बन्ध है, इसलिये भोजनका प्रभाव बच्चेके चरित्र पर भी पड़े बिना नहीं रहता। गरिष्ट आहार भोजन करनेसे बच्चेको उदरामय, उदरशूल, आमाशय, ज्वर आदि रोग अक्सर हुआ करते हैं।

नशेदार और चाय आदि गर्म पेय पदार्थोंका पान तो सर्वदा ही वर्जनीय हैं। विशेष करके दूध पिलानेकी अवस्थामें माताको कभी भी इन चीजोंका व्यवहार नहीं करना चाहिये। इन पदार्थोंके पीनेसे कभी कभी माताका दूध बढ़ता है सही, परन्तु उसके साथ ही साथ बच्चेकी आपद भी बढ़ती रहती है। इस प्रकारके बढ़ाये हुए दूधके पीनेसे बच्चे कुछ दिन तक खूब मोटे ताजे देख पड़ते है, परन्तु दो चार वर्ष बीतते न बीतते उन्हें नाना प्रकारके चर्मरोग

और उनसे भी भयानक रोगोंका शिकार बनना पड़ता है। डाक्टर ट्रेसी इसका एक उदाहरण देते हुए लिखते हैं, कि मुझे एक बच्चेके कठिन रोगकी चिकित्सा करनी पड़ी थी, जो कि माताकी शराबखोरीके कारण उत्पन्न हुआ था। वह पोर्टर और ऐल नामक शराब बहुत पिया करती थी। इन शराबोंके पीनेसे बच्चा कुछ दिन तक बहुत वर्द्धनशील और मोटा ताजा रहा, परन्तु थोड़े ही दिन बाद उसकी अवस्था इतनी खराब हुई, कि उसके जीवनकी आशा सभीको त्याग देनी पड़ी थी।

उच्च विचारकी महिलायें जो प्रारम्भिक और गर्भाधानकी अवस्थाके बताये नियमोंका विधिपूर्वक पालन कर चुकी हैं और जो अन्ततक नियमपूर्वक सन्ततिशास्त्रके नियमोंका पालन करना चाहती हैं, उन्हें चाहिये कि जीवनयापनका जो प्रकृत नियम इस पुस्तकमें बतलाया गया है, उसका विधिपूर्वक पालन करें।

इस अवस्थामें भी उन्हें भोजनके सम्बन्धमें पूरी सावधानी रखनी चाहिये। केवल सादा और रुचिपूर्ण आहार ग्रहण करना चाहिये और आहारका समय भी नियमित और निर्दिष्ट होना चाहिये। अपने और बच्चेकी सुख शान्तिके अनुरोधसे उन्हें रसना-तृप्ति-कर पदार्थोंके लिये

लालायित नहीं रहना चाहिये, क्योंकि इससे बच्चे और माता दोनोंको ही रोग और अशान्ति भोगनी पड़ती है।

दूध पिलानेकी इस अवस्थामें माताको उन्हीं गुणोंको आयत्त करनेका अभ्यास करना चाहिये, जिन गुणोंसे बच्चेके प्रतिभाशाली होनेकी सम्भावना बतलायी गयी है। दूध पिलानेका नवसे लेकर बारह महीनेका यह समय माताके लिये अन्तिम सुयोग है, जिसमें वह बच्चे पर चाहे जैसा प्रभाव डाल कर, उसे चाहे जिस चरित्रके सांचेमें ढाल सकती है। इसके बाद माताका भी प्रत्यक्ष प्रभाव जाता रहता है। इसलिये सन्तानका हित चाहनेवाली प्रत्येक मातायें समझ सकती हैं, कि इस समयका महत्व कितना अधिक है। "संयमी जीवन" और "गर्भावस्थाके प्रभाव" प्रभृति अध्यायोंमें जिन नियमोंके पालनका निर्देश किया गया है, इस अवस्थामें भी उन्हीं नियमोंका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

यदि माता पुत्रको शिल्पी, लेखक, वक्ता, सम्पादक या मानसिक शक्ति सम्पन्न बनाना चाहती हो, तो उसे उसी प्रकारका अभ्यास और चिन्ता करनेके बाद प्रतिदिन और प्रत्येक बार बच्चेको दूध पिलाना चाहिये। दूध पिलानेके ठीक पहले और पिलाते समय मानसिक अवस्था

खूब शान्त और पवित्र रखकर उन्हीं गुणोंका अभ्यास और मनन करना चाहिये जो कि वह अपनी सन्तानको देना चाहती है। नहाने, खाने और सोनेकी तरह उन गुणोंके अभ्यास करनेका समय भी नियमित और निर्दिष्ट होना चाहिये और ठीक उसके बाद ही दूध पिलानेका समय निर्दिष्ट रहना चाहिये। यह पहले ही समझा दिया गया है, कि माताके दूध द्वारा माताकी मानसिक अवस्था-की प्रक्रिया स्तनमें आरम्भ होती है और वहाँसे कई रक्त और दूध मिश्रित गोलियोंके सहारे बच्चेकी मस्तिष्क प्रणालीमें प्रवेश कर, वहां भी वह वही कार्य करती है, फलतः बच्चेमें भी माताके उन समस्त विचारों और गुणोंका समावेश हो जाता है।

पहली दोनों अवस्थाओंकी तरह दूध पिलानेकी अवस्थामें भी माता और बच्चेको खुली हवामें रहना चाहिये। Imp दैनिक व्यायाम जारी रखना चाहिये। स्नान कभी एक दिनके लिये भी बन्द नहीं रखना चाहिये। ढीले और आरामदायक कपड़े पहनना चाहिये। सदा प्रफुल्ल और प्रसन्न रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये, संसर्ग निर्दोष और आनन्ददायक होना चाहिये। पवित्र वायुका सेवन, पवित्र जलका पान और फल मूलादि निरामिष

~मनचाही सन्तान~

आहार और पतिके साथमें सन्तानके वाञ्छित गुणोंके सम्बन्धमें आलोचना और मनन इन सभी कार्योंकी नियमित व्यवस्था होनी चाहिये। कभी उस निर्दिष्ट व्यवस्थाका :व्यतिक्रम न होना चाहिये। इस अवस्थामें भी—दोनों अवस्थाओंकी तरह—सभी प्रकारकी नशीली चीजोंका सम्पूर्ण परित्याग करना चाहिये। चाय, काफ़ी, चटपटी और मसालेदार चीजें, सभी प्रकारकी दवा और सबके ऊपर पति सहवास सम्पूर्ण वर्जन करना चाहिये। इन व्यवस्थाओंका सफलतापूर्वक पालन करनेसे बालकके चरित्र पर जैसे आश्चर्य रूपसे प्रभाव पड़नेकी सम्भावना रहती है, वैसे किसी भी दूसरे उपाय और विधिसे नहीं रहती।

इस अवस्थामें बच्चेको नियमित समय पर दूध पिलाना, सर्वदा गर्म और आरामसे रखना शाम सवेरे खुली हवामें लेकर टहलना, उसकी इच्छानुसार निद्रामें बाधा न देना, रोज नहलाना, किसी प्रकारका पदार्थ या ठण्डा शरबत कभी न पिलाना और कोई अर्कदार दवा न खिलाना परम कर्त्तव्य है। नवसे लेकर बारह महीनों तक इन कर्त्तव्योंका पालन करनेके बाद अन्तमें धीरे धीरे बच्चोंको दूध छुड़ा देना चाहिये।

~ मनचाही सन्तान ~

दूध छुड़ानेके साथ ही साथ इस प्रकरणका वक्तव्य भी शेष हो जाता है, परन्तु बच्चेके भविष्य तत्वावधानके लिये यहां कई और बातें भी बतला देना हम उचित समझते हैं।

दस वर्षकी अवस्था तक बच्चेके हाथमें किताब न देनी चाहिये। बच्चेका यह दस वर्षतकका समय केवल पढ़ने, सोने, खाने और कसरत करनेके लिये ही छोड़ रखना चाहिये। हाँ, यदि इन कामोंके साथ बच्चेके शरीर या मन पर बोझ डाले बिना ही चरित्र गठनकी शिक्षा दी जा सके, तो वह अनुचित नहीं कहा जा सकता।

इस अवस्थामें सभी प्रकारकी बुद्धि—तीक्ष्णता और धूर्तताके लक्षणोंको रोकना चाहिये। मानसिक और आध्यात्मिक विभागकी प्रगतिको रोककर बच्चेकी सारी शक्ति भरसक उसकी शारीरिक वृद्धिमें ही लगानी चाहिये। मीठा मसालेदार और चटपटा भोजन न देकर दस वर्षतक बिलकुल सादा भोजन देना चाहिये। किसी प्रकारकी दवा या अर्क भी न पिलाना चाहिये। कुसंसर्गसे सदा दूर रखना चाहिये। बच्चेकी पोशाक शरीर-शास्त्रकी विधिके अनुरूप होनी चाहिये। यह देखकर आश्चर्य होता है, कि बहुतसे माता पिता भीषण शीतमें स्वयं सिरसे

पैरतक गर्म कपड़ेसे ढके रहते हैं, परन्तु अपनी ही तरह बच्चोंको भी कपड़े पहनानेकी परवाह नहीं करते। खान, पान और वसन भूषण प्रत्येक बातमें आवश्यकता केवल इतनी ही है, कि माता पिता बच्चेकी आवश्यकता समझकर तुरन्त व्यवस्था करें। यदि इन कर्त्तव्योंका समुचित पालन किया जायगा, तो सन्तान पर इस अवस्थामें भी इच्छित प्रभाव डालनेमें सीमातीत सफलता प्राप्त होगी।

२२

सन्तानपर गृह-शिक्षाका प्रभाव।

मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये माता पिताको किस अवस्थामें क्या करना चाहिये, यह पिछले अध्यायोंमें अच्छी तरह बतलाया गया है। मान लीजिये कि किसी सन्तानको आप वैज्ञानिक बनाना चाहते है। इसके लिये आपको (सन्तानके माता पिताको) गर्भाधानके पहलेसे ही तैयारी करनी होगी। वैज्ञानिक बातोंके पठन-पाठन और मनन आदि कार्योंसे अपने हृदयको प्रभावित करना होगा। गर्भाधानके समय भी इन बातोंका ध्यान रखना होगा। इसके बाद गर्भावस्थामें माताको इन्हीं सब कार्यों द्वारा उस सन्तान पर प्रभाव डालना होगा। यदि यह सब काम यथाविधि किये गये, तो इसमें कोई

सन्देह नहीं, कि जो सन्तान उत्पन्न होगी वह वैज्ञानिक ही होगी। उसका झुकाव विज्ञानकी ही ओर होगा और यदि वयस्क होने पर उसे अवसर दिया जायगा, तो वैज्ञानिक कार्यों द्वारा ही वह अपने जीवनको सफलता-मण्डित बनायेगी।

परन्तु यह ध्यान रखनेकी बात है, कि बच्चेका जन्म होनेसे ही माता पिताके कर्त्तव्यकी इतिश्री नहीं हो जाती। किसान अच्छी जमीन देखकर यथा समय उसमें अच्छेसे अच्छा बीज बोता है। बोनेके कुछ ही दिनों बाद जमीन-से लहलहाते हुए नेत्र रञ्जक पौधे निकल आते हैं। जमीन जल, वायु, ऋतुकाल और बीजका संयोग होने पर जो काम होना चाहिये, वह पूरा हो जाता है, परन्तु पौधे निकल आनेके बाद यदि एक किसान समुचित परिचर्या न करे और हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाय, तो इसमें कोई सन्देह नहीं, कि एक दाना भी उसके हाथ न लगे और उसकी सारी मेहनत बरबाद हो जाय। वह जिन दानोंकी आशा करके बीज बोता है, वह दाने पौधेमें ही छिपे रहते हैं, परन्तु यदि किसान उन पौधोंके पीछे कुछ परिश्रम न करे, तो वह दाने या तो उत्पन्न ही न हों या किसी न किसी तरह नष्ट ही हो जायें। ठीक यही बात सन्तानके

सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये। पिता किसान है। माता खेत है। रज-वीर्य बीज है और सन्तान पौधा। आप जिस इच्छासे—जिस गुणवाली सन्तान उत्पन्न करेंगे, वह गुण सन्तानमें जन्मसे ही विद्यमान रहेगा, किन्तु यदि जन्मके बाद आप कुछ चेष्टा न करेंगे, तो वह गुण विकसित न हो सकेगा और यदि विकसित होगा तो शायद इस प्रकार विरूप हो जायगा, कि उससे आपको सन्तोष न होगा।

बात यह है, कि सन्तानको मनपसन्द बनानेके लिये उसमें जिन गुणोंका बीज बोया जाय, उन गुणोंको पूर्ण रूपसे विकसित करनेके लिये उसके जन्मके बाद भी कुछ चेष्टा की जाय। बिना इस चेष्टाके संभव है, कि वे गुण अपने आप विकसित न हों और ज्योंके त्यों दबे या छिपे ही पड़े रह जायँ। उन्हें विकसित करनेके लिये कुछ न कुछ चेष्टा अवश्य ही करनी होती है। इसी चेष्टाका नाम 'शिक्षा' है।

यहां हम अपने पाठकोंको बतला देना चाहते हैं, कि हमारे मस्तिष्कमें जो शक्ति या जो गुण बीज रूपसे विद्यमान रहते हैं, शिक्षासे केवल उन्हींका विकास होता है। हमारे मस्तिष्कमें जिन शक्तियोंका बीज नहीं होता, वह

शक्तियां शिक्षासे उत्पन्न नहीं होतीं। एक उदाहरणसे यह बात अधिक स्पष्ट हो सकती है। किसी पाठशालामें जाइये। आप देखेंगे कि एक दर्जेमें तीस लड़के हैं। उन सबोंको एक साथ ही सब विषयोंकी समान शिक्षा दी जाती है। फिर भी कोई किसी विषयमें तेज है, तो कोई किसी विषयमें। यह वैषम्य क्यों? जब सब लड़कोंको समान रूपसे शिक्षा दी जाती है, तब सबोंको एक समान तेज होना चाहिये, किन्तु होता यह है, कि जिसके मस्तिष्कमें जो शक्ति अधिक होती है, वह उस विषयमें तेज निकलता है। जिसमें जो शक्ति कम होती है, उसे उस विषयकी शिक्षा देने पर भी उसका ज्ञान नहीं होता। ध्यान रहे, यदि आपने एक सन्तानमें किसी खास गुणका बीज बोया है, अथवा उसने कोई खास गुण आपसे विरासतमें पाया है, तो शिक्षा देने पर वह अवश्य खिल उठेगा। यदि उसमें उस गुणका बीज नहीं बोया गया, किंवा विरासतमें भी उसने वह गुण नहीं पाया, तो हजार चेष्टा करने पर भी वह उसमें निपुणता न प्राप्त कर सकेगा। बच्चोंको स्कूलमें भेजनेसे या उन्हें पढ़ाने लिखानेसे उनके मस्तिष्कमें जो शक्तियाँ छिपी रहती हैं, उनका केवल विकास भर होता है—कोई नयी शक्तियां उत्पन्न नहीं होतीं।

~मनचाही सन्तान~

'शिक्षा' क्या चीज है, यह अब शायद पाठकोंको बतलाना न होगा। सन्तानको मनपसन्द बनानेका काम तबतक अधूरा ही कहा जायगा, जबतक समुचित शिक्षा द्वारा उसके समस्त गुण और समस्त संस्कार परिस्फुटित किंवा विकसित न कर दिये जायँ। जिन माता पिताओंने मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेकी चेष्टा की हो, गर्भाधानके पहले, गर्भाधानके समय और गर्भावस्था एवम् स्तनंधयावस्थामें किसी खास बातको अपना लक्ष्य बनाया हो, उन्हें स्तनंधयावस्थाके बाद उसमें छिपे हुए उन गुणोंको विकास देनेके लिये उसकी शिक्षा दीक्षाका भी प्रबन्ध करना होगा। समुचित शिक्षा दिलाने पर अपनी सन्तानमें वे वही मनपसन्द गुण, वही मनपसन्द बातें खिली हुई पायेंगे, जिनके लिये उन्होंने एक समय बहुत सी तैयारियां की थीं और बहुत कुछ कष्ट उठाया था।

शिक्षा दो प्रकारकी है—एक गृह-शिक्षा और दूसरी स्कूली शिक्षा। गृह-शिक्षा घरमें आरम्भ होती है और उस समय तक चलती है, जबतक बच्चे बड़े होकर स्कूल नहीं जाने लगते। गत अध्यायमें दस वर्षकी अवस्था तक बच्चोंको स्वच्छन्द विचरण करनेकी सलाह दी गयी है। अतएव यही गृह-शिक्षाका समय समझना चाहिये।

बादको बच्चे स्कूल भेजे जा सकते हैं या किसी अन्य प्रकारसे उन्हें अक्षर-ज्ञान दिलाया जा सकता है।

बच्चोंके लिये सबसे बड़ी स्कूल 'माता' है। बच्चे जिस समय दूध पीते हैं, उस समयसे लेकर जबतक वे बाहरी दुनियाकी बातें समझने योग्य नहीं होते, तबतक वे अधिकांश बातें अपनी मातासे ही सीखते हैं। पिताके आचार विचारोंका भी प्रभाव पड़ता है, परन्तु माताके समान नहीं। इस अवस्थामें माता जो कुछ करती है, कहती है, सोचती है—उन समस्त बातोंको बच्चे मूक भावसे ग्रहण करते चले जाते है। प्रत्येक माता पिता अपने बच्चोंके गुण दोषकी आलोचना कर इस सिद्धान्तकी वास्तविकता समझ सकते हैं।

यह एक बहुत ही साधारण बात है, कि जिन बच्चोंके माता पिता विवेकी और सभ्य होते हैं और घरमें सभ्यतापूर्वक बातें करते हैं, उनके बच्चे भी वैसी ही भाषाका प्रयोग करना सीखते हैं—वे भी बात चीतके समय 'आप' और 'जी' आदि सम्मान सूचक शब्दोंका प्रयोग करते हैं, किन्तु जो माता पिता बेहूदे होते हैं और बोलचालमें विवेकसे काम नहीं लेते, उनके बच्चे भी भद्दी और असभ्य भाषाका व्यवहार करना सीखते हैं। न केवल बोलचाल ही,

बल्कि माता पितामें छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े जो कुछ गुण दोष होते हैं, वे सभी इसी प्रकार बच्चे सीख लिया करते हैं। माता पिता सिखायें या न सिखायें—चाहे तो मना भी करें, परन्तु अपनी अनुकरण शक्तिके कारण बच्चे जो कुछ देखते या सुनते हैं; वे वह अवश्य करने लगते हैं। इस समय उनका मस्तिष्क बहुत ही ग्रहणशील और कोमल होता है, अतएव जिन बातोंका उसपर एक बार प्रभाव पड़ जाता है, वे फिर ब्रह्माकी लकीर हो जाती हैं। चेष्टा करने पर भी फिर वे नहीं मिट सकतीं।

मनचाही सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको शिक्षाका यह सिद्धान्त ध्यानमें रख, बच्चेकी बाल्यावस्थामें ऐसा एक भी काम न करना चाहिये, जिससे बच्चों पर अनिष्ट प्रभाव पड़े। साथ ही बच्चेमें उन्होंने जिस गुणोंका बीज बोया हो, उन गुणोंका विकास करनेके लिये भी सदा चेष्टा करते रहना चाहिये। बच्चोंके सामने सदा ऐसी ही बातें और ऐसे ही काम करने चाहियें, जिससे उनकी उन गुणोंकी ओर अभिरुचि और प्रगति हो। स्कूल कालेजमें अक्षर-ज्ञान सिखाते समय, शिक्षाका विषय पसन्द करते समय या शिक्षाके बाद व्यवसायकी चर्चा छिड़ने पर भी इसी बात पर ध्यान रखना चाहिये और बच्चे किसी

समय भी निर्दिष्ट पथ छोड़कर इधर उधर न भटकने लगें, इसके लिये सतर्क रहना चाहिये। इस बातके लिये भी कम सावधान न रहना चाहिये, कि किसी भी समय बच्चे कुसङ्ग या खराब सोहबतमें न पड़ जायें। फारसीमें एक कहावत है, कि "तुख्मे तासीर सोहबते असर" अर्थात् बीजके अनुसार गुण और सोहबतके अनुसार असर हुए बिना नहीं रहती, परन्तु हमारा कहना तो यहां तक है, कि सोहबतकी असरसे तुख्मकी तासीर भी गायब हो जा सकती है। भलेसे भले माता पिताके बच्चे खराब सोहबतमें पड़कर देखते देखते चौपट हो जाते हैं और तुख्मकी तासीर कोई काम नहीं आती। माता पिताने गर्भाधानके पहले, गर्भाधानके समय और गर्भावस्था तथा स्तनंधयावस्थामें बच्चे पर प्रभाव डालनेकी जो कुछ चेष्टा की होगी और उसमें चाहे जितने गुणोंका बीज बोया होगा, किन्तु कुसङ्ग उन सबोंको क्षण भरमें धो बहायेगा और अपना रङ्ग ऐसा पक्का चढ़ा देगा, कि फिर हजार चेष्टा करने पर भी छूटना असम्भव हो जायगा। बच्चोंको इससे बचानेके लिये सदा सावधान रहना चाहिये, और उनकी प्रकृति ऐसी बना देनी चाहिये, कि उन पर कुसङ्गका रङ्ग ही न चढ़ सके।

~मनचाही सन्तान~

शिक्षाके सम्बन्धमें माता पिताओंको बहुत सी सूचनायें दी जा सकती हैं। यह बहुत विस्तृत और महत्वपूर्ण विषय है, किन्तु इसकी पर्याप्त विवेचनाके लिये स्वतन्त्र पुस्तकें होनी चाहियें। यहां हम केवल इस विषयका दिग्दर्शन भर कराया चाहते थे। यदि माता पिता हमारे कहनेका तात्पर्य समझ कर बच्चोंके छिपे हुए संस्कारोंको विकसित करनेके लिये, उनकी समुचित शिक्षाका भी प्रबन्ध करेंगे, तो उन्हें अपने यत्नमें अवश्य सफलता प्राप्त होगी। शिक्षाका प्रबन्ध न करने पर सारी मेहनत बेकार जा सकती है, बच्चोंमें बोया हुआ बीज विना खिले ही पड़ा रह सकता है और समस्त संस्कार निष्फल जा सकते हैं। यदि माता पिता इसे नापसन्द करते हों, तो उन्हें अपना यह अन्तिम कर्त्तव्य पालन करनेके लिये सदा कटिबद्ध रहना चाहिये।

(मन चाही सन्तान) 24/7/96

उपसंहार।

मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये जितनी बातें आवश्यक थीं, वे सभी हम बतला चुके। हमने इसके लिये किशोरावस्थासे ही तैयारी करनेका आदेश दिया है। उस समय शारीरिक और मानसिक तप द्वारा हमने शारीरिक और मानसिक शक्ति सम्पादन करनेकी सलाह दी है। इसके बाद हमने बतलाया है, कि यदि मनचाही सन्तान उत्पन्न करनी हो, तो सन्तानकी ही दृष्टिसे विवाह करना चाहिये। विवाहके बाद भी स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करना मना है। उस समय भी जीवन संयममय होना चाहिये। इसके बाद गर्भाधान, गर्भावस्था, स्तनंधयावस्था, बाल्यावस्था—प्रभृति भिन्न भिन्न अवस्थाओंके कर्त्तव्य हमने अंकित किये हैं। हमारा विश्वास है, कि यदि इस प्रकार जीवन-नौका सञ्चालित की जायगी, तो इष्ट-सिद्धिमें कुछ भी कठिनाई न होगी और प्रत्येक मनुष्य मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकेगा।

परन्तु यहां पर एक प्रश्न उत्पन्न हो सकता है। हमने मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके लिये किशोरावस्थासे ही तैयारी करनेकी सलाह दी है, परन्तु प्रत्येक मनुष्यके लिये यह सम्भव नहीं। बहुधा विवाह हो जानेके बाद युवावस्थामें ही मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा होती है। कभी कभी तो कई बच्चे उत्पन्न हो जानेके बाद यह अभिलाषा उत्पन्न होती है। ऐसी अवस्थामें हमारी सलाहके अनुसार कैसे काम किया जा सकता है?

~मनचाही सन्तान~

इस सम्बन्धमें हम अपने पाठकोंको बतला देना चाहते हैं, कि भावी माता पिताको अपनी किशोरावस्थासे लेकर सन्तानकी बाल्यावस्था तक जिन नियमोंके पालनका आदेश दिया गया है, वे नियम बहुत ऊँचे दरज्जेके हैं। यदि इनमेंसे प्रारम्भिक नियमोंके पालन करनेका समय निकल गया हो, तो किसीको हताश न होना चाहिये। यदि विवाह हो गया हो, कुछ बच्चे भी उत्पन्न हो चुके हों और उस समय मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा हो, तो उसी समयसे संयमी जीवन और गर्भाधानकी तैयारी प्रभृति अध्यायोंमें बतलाये हुए नियमोंका पालन कर इसके लिये अग्रसर होना चाहिये। मनचाही सन्तानका उत्पन्न होना विशेष प्रकारकी मनःस्थितिसे ही सम्भव है। इसलिये, जिस समय इसके लिये उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो, उसी समयसे इसके लिये चेष्टा कर, सफलता प्राप्त की जा सकती है।

इससे अधिक हमें अब और कुछ नहीं कहना है। खोज करने पर सभी आवश्यक बातें पाठकोंको इस पुस्तकमें मिल सकेंगी। खोजनेवालेको सभी कुछ मिल सकता है। करनेवाला सभी कुछ कर सकता है। आवश्यकता है केवल अध्यवसायकी—सच्ची लगनकी। जो चेष्टा करेगा उसे सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

"जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी ढूंढ़न गई, रही किनारे बैठ॥"

समाप्त

जनन-विज्ञान

चालीस चित्रोंसे सुशोभित यह पुस्तक घर घरकी शोभा बढ़ानेकी एक सामग्री है। आजकल स्त्रियां अकालमें ही कालके गालमें चली हैं। वे दुबली पतली, निस्तेज और अल्पायु होती हैं। हजारों का जीवन तो प्रसूति गृह—सौरी घरमें ही नष्ट हो जाता है। क्यां का जीवन सुधर नहीं सकता है ? उन्हें कालके गालसे बचाया नहीं ता है ? —अवश्य बचाया जा सकता है और वे ही उपाय इसमें ये हैं। इसमें विवाहकी आवश्यकता, विवाह सम्बन्ध, सन्तान ा, वन्ध्यत्व और नपुंसकत्व, वन्ध्यत्वसे बचनेका उपाय, नपुंसकता उसके कारण, मनचाही सन्तान, गर्भ-संचार—पुरुषका वीर्य, गर्भ कब है—गर्भ लक्षण, गर्भ-वृद्धि, गर्भपात, गर्भ-रक्षा, गर्भ परीक्षा, गर्भा- के रोग, गर्भिणीका शारीरिक स्वास्थ्य, गर्भिणीका मानसिक स्वास्थ्य, र्भकाल, प्रसूति-गृह, प्रसव—प्रसवकी भिन्न भिन्न अवस्थाएं, जोड़ बच्चे, तान पालन, मनुष्यका शैशवकाल प्रभृति स्त्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले, जननसे सम्बन्ध रखनेवाले,—सभी विषय दे दिये गये हैं। ऊपर लिखे प्रत्येक विषयको इस तरहसे समझाया गया है, इतनी बातें एक एक अध्यायमें बतायी गयी हैं, कि स्त्रियोंके सम्बन्धकी कोई बात बाकी नहीं रह जाती। एक इसी पुस्तकके सहारे आप हजारों स्त्रियोंको कालके गालसे बचा सकते हैं। वैद्य र, दाई और लेडी डाक्टरोंको पैसे न देकर स्वयं ही उनका काम कर कते है। हिन्दी संसारमें इस जोड़की दूसरी पुस्तक नहीं है। हम तो चोट कह सकते हैं, कि यदि आप अपनी गृहस्थीमें सदा आनन्दका रा छूटता देखना चाहते हों; सदा नीरोग, बलिष्ठ, उन्नत सन्तानका खिला भा चेहरा देखना चाहते हों; अपनी हृदय देवीको सदा प्रफुल्ल देखकर

से स्त्रियोंके स्वास्थ्यको निर्मल और दृढ़ रखनेके लिये किन किन बातोंकी आवश्यकता है इसीका प्रतिपादन किया गया है। हमारी अनेक बहिनें कुछ स्वाभाविक लज्जाके वश, कुछ झूठी रीति रिवाजके कारण यौवनारम्भके समय अपने स्वास्थ्यको ठीक रखनेवाले नियमोंकी अवहेलना कर जाती हैं। मासिक धर्मके विषयमें यह बात विशेष रूपसे देखी जाती है। इन दिनोंमें वह अपनी अवस्थाको छिपानेका भरसक यत्न करती है और इस निमित्त एक स्थानमें शान्तिपूर्वक बैठनेकी बजाय नियमानुकूल स्नान, भोजन, चलना, फिरना सभी करती रहती है। मानो यह धर्म कोई परमेश्वर कृत सृष्टि-नियम नहीं वरन् एक प्रकारका पाप है जो कि सब प्रकारसे छुपाना चाहिये। शोक तो इस बातका है, कि बूढ़ी तजुरबेकार मातायें भी अपनी लड़कियोंको इस अवस्थाको छुपानेमें सम्मति और सहायता देती हैं। अतः इस प्रकारकी पुस्तकें जिनमें स्त्रियोंकी प्रत्येक अवस्थामें स्वास्थ्यको ठीक ठीक रखनेके लिये किन नियमोंकी आवश्यकता है—यह बतलाया है—हमारी नारी समाजके लिये युवती और प्रौढ़ा, बाला और वृद्धा, सभीके लिये परम आवश्यक है। पुस्तकमें सामान्य स्त्रियों और विशेष कर गर्भिणी और प्रसूता स्त्रियोंको किस प्रकार अपने स्वास्थ्यको ठीक रखना चाहिये, किन नियमोंसे पालनेके अपना और बच्चोंका स्वास्थ्य ठीक रखा जा सकता है, प्रसवके समय किन बातोंका ध्यान रक्खा जाना चाहिये इन सब ही आवश्यक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तककी एक विशेषता यह है, कि अंग्रेजी पुस्तकका अनुवाद रहने पर भी इसकी लेखनशैलीका ढंग हमारी भारतीय स्त्रियोंकी अवस्था और सामाजिक प्रथाओंके अनुकूल ही रखा गया है। पुस्तक सर्वथा उपयोगी है और हम नारी समाजमें इसका प्रचार चाहते हैं। इस प्रकारकी पुस्तकोंका जितना भी प्रचार हो अच्छा है।

—ज्योति, अगस्त १९२६

काम-विज्ञान

आजकल बाजारमें कोक-शास्त्रके नामसे खूब लूट हो रही है। विज्ञापन-बाजीके सहारे भोले भाले लोग खूब ठगे जा रहे हैं। उनके हाथमें कोक-शास्त्रके नामसे जो पुस्तकें पहुंचती हैं, वे सारहीन, गन्दी और कुमार्गकी ओर ले जानेवाली होती हैं। लोगोंको उनमें एक भी बात ऐसी नहीं मिलती जिससे उनका वास्तविक उपकार हो। इस अभावको दूर करनेके लिये वात्स्यायन मुनिके कामसूत्र, काका पण्डितके कोक-शास्त्र किंवा रति-रहस्य तथा रतिशास्त्र, रतिमंजरी, पंचशायक आदि संस्कृत और अन्यान्य भाषाओंकी अनेकानेक पुस्तकोंके सहारे इस ग्रन्थका प्रणयन किया गया है। इस पुस्तकको काम शास्त्रका निचोड़ कहना चाहिये। प्राचीनकालसे लेकर अबतक काम-शास्त्रके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है, वह सभी इस पुस्तकमें संग्रहीत है। पुस्तक अप-टु-डेट, शिक्षाप्रद और उपादेय है। ३० अध्याय और पूरे ५०० पृष्ठ हैं। बहुत ही मोटे एण्टिक पेपरपर छापी गयी है। अध्यायोंके नाम यह हैं :—

(१) काम-विज्ञानकी आवश्यकता (२) इन्द्रिय परिचालन (३) काम-विज्ञानकी शिक्षा (४) नागरक-वृत्त (५) नायिका निर्णय (६) दाम्पत्य-प्रेम (७) नारी भेद (८) पुरुष भेद (९) नारीचिन्ह विचार (१०) पुरुषचिन्ह विचार (११) ऋतु विचार (१२) विवाह (१३) विवाहका आयोजन (१४) सहवास (१५) प्रकृति निर्णय (१६) प्रीति विधान (१७) सम्बन्ध निर्णय (१८) प्रथम संयोग (१९) स्तम्भन और वाह्यरति (२०) कामोद्दीपन (२१) देशिक उपचार (२४) कलायें (२२) आलिंगन (२४) चुम्बन (२५) नख और दशन प्रयोग (२६) आसन (२७) रति अवसान (२८) गृहिणी कर्तव्य (२९) गृहिणी रक्षा (३०) वेश्यागमन।

इस पुस्तकमें किन किन बातोंका वर्णन है, यह इन अध्यायोंसे जाना जा

की तैयारी (१२) गर्भाधान (१३) गर्भ-सञ्चार (१४) इच्छानुसार पुत्र या कन्या उत्पन्न करनेका तरीका (१५) सुन्दर सन्तान उत्पन्न करनेका तरीका (१६) स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करनेका तरीका (१७) किसी खास गुणवाली सन्तान उत्पन्न करनेका तरीका (१८) सन्तान पर दाम्पत्य-प्रेमका प्रभाव (१९) सन्तान पर कौलिक गुण दोषका प्रभाव (२०) सन्तान पर गर्भावस्थाका प्रभाव (२१) सन्तान पर स्तनंधयावस्थाका प्रभाव (२२) सन्तान पर गृह शिक्षाका प्रभाव।

पुस्तक कितनी उपयोगी और उपादेय है, यह इस विषय सूचीसे जाना जा सकता है। मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक गृहस्थको—प्रत्येक माता-पिता—प्रत्येक दम्पतिको यह पुस्तक एक बार अवश्य पढ़ना चाहियें। मोटे ऐण्टिक पेपर पर छपी हुई, ३५० पृष्ठकी दलदार पुस्तक, दर्शनीय कवर, सुन्दर छपाई मूल्य केवल २॥) रुपये। रेशमी जिल्द ३) रुपये।

छप रही है ! **छप रही है !!**

सृष्टि-विज्ञान।

यह पुस्तक बच्चोंके लिये लिखी गयी है। इसे 'काम-विज्ञानकी पहली पोथी' कहना चाहिये। बच्चे जिस समय किशोरावस्थामें पदार्पण करते हैं, उस समय माता पिताकी ओरसे काम-विज्ञानकी शिक्षा न मिलनेके कारण बुरी आदतोंमें पड़कर अपना सर्वनाश कर लेते हैं। यह पुस्तक ऐसे बच्चोंको खतरेकी सूचना देती है। उन्हें निर्दोषभावसे फल-फूल और पशु-पक्षियोंके दाम्पत्य-जीवनकी कथा द्वारा सृष्टिके गूढ़ तत्वोंका रहस्य बतलाती है और वीर्य-रक्षा करनेका आदेश देती है। लेखनशैली इतनी उत्तम है, कि